हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना द्वारा भारत में सशस्त्र
क्रान्ति के प्रयत्नों के सम्बन्ध में लेखक के संस्मरण

सिंहावलोकन

(तीसरा भाग)

सिंहावलोकन

(तीसरा भाग)

हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना द्वारा भारत में सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्नों के सम्बन्ध में लेखक के संस्मरण ।

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ
की ओर से

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

मेरे यह संस्मरण अपने उन साथियों की स्मृति मे समर्पित है जिनके प्रति विश्वास से और जिनके सहयोग के भरोसे अपने देश की जनता के लिये मनुष्यता के अधिकार पाने के संघर्ष मे मृत्यु का भय भी रुकावट न डाल सका था।

और

अपने आज के उन साथियों को जो पहले किये जा चुके प्रयत्नों में असफलता के अनुभवो के बावजूद और भविष्य मे भय और आशङ्कायें देख कर भी जनहित के लिये अपना सर्वस्व बाजी पर लगाने में नहीं झिझक रहे हैं। अपने यह अनुभव उनके लिये उपयोगी हो सकने के विश्वास में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यशपाल

भूमिका

'सिंहावलोकन' के पहले दो भागो के प्रकाशन के समय भूमिका के रूप कुछ लिख चुका हूँ। तीसरे भाग में यह संस्मरण समाप्त हो रहे हैं। समाप्ति के समय भी कुछ कहना संगत जान पड़ रहा है।

पहली बात है इन संस्मरणों के क्षेत्र और रूप के सम्बन्ध मे। अधिकांश पाठको की धारणा रही है कि मैं आपबीती या अपनी कहानी लिख रहा हूँ। हि०स०प्र०स० के सम्बन्ध मे मेरे संस्मरण, मेरी या मेरे साथियो की आपबीती जरूर है परन्तु मेरी सम्पूर्ण आपबीती इन संस्मरणों मे नही आ सकती, आनी भी नहीं चाहिये। महत्त्व हि०स०प्र०स० आन्दोलन के लिये किये प्रयत्नों का है। उन प्रयत्नो का महत्त्व इसलिये नहीं कि वह किसी व्यक्ति विशेष के अनुभव हैं। हि०स०प्र०स० से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ऐसी घटनाओं का उल्लेख इन संस्मरणो मे है जो मेरे व्यक्तिगत अनुभव तो नहीं हैं परन्तु उनका सम्बन्ध मुझ से है क्योंकि मैं हि०स०प्र०स० के संगठन के अन्तर्गत था। अब भी कभी स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयत्नो का इतिहास ब्योरे से लिखा जायेगा, यह उल्लेख उपयोगी हो सकेंगे। अनेक अनुभव ऐसे भी रहे हैं जिनका हि०स०प्र०स० के लक्ष्य और क्षेत्र से सम्पर्क नही था। उनका उल्लेख आन्दोलन के इतिहास के प्रसंग में अनुपयुक्त होता इसलिये मैंने उन्हे इन संस्मरणो मे नहीं लिखा है।

घटनाओ के विवरण मे दृष्टिकोण का महत्त्व बहुत अधिक रहता है; बल्कि दृष्टिकोण ही वास्तविक चीज होती है। अंग्रेजी साम्राज्यशाही के समर्थक लेखको द्वारा लिखे गये भारत के अतीत के इतिहास को, तटस्थ इतिहासकारो द्वारा लिखे उस काल के इतिहास की और अपने अतीत गौरव के अन्धाभिमानी भारतीय इतिहास लेखको द्वारा लिखे इतिहासो की तुलना से दृष्टिकोण का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। सम्भव है, अहिंसात्मक क्रान्ति की सफलता का गौरव करने वाले इतिहास लेखक हि०स०प्र०स० के आन्दोलन को विपथगामी हिंसा के प्रयत्न ही समझें। उदाहरणतः १९३१-३२ मे यू० पी० पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल हालिन्स ने भी अपनी पुस्तक No Ten Commandments में चन्द्रशेखर आजाद की शहादत का वर्णन एक दुस्साहसी अपराधी के पुलिस से लड़ाई मे जूझ जाने वाले के रूप में ही किया है। मैंने प्रयत्न किया है कि उन प्रयत्नों से सम्बद्ध घटनाओ से अपने ममत्व को दूर रख कर, इन वृत्तातो और अनुभवो को तथ्यो के रूप मे लिखा जाय ताकि पाठक हमारी न्यूनताओं विवशताओं को भी समझ सकें।

इन संस्मरणो के पिछले दो भागो से हि०स०प्र०स० से व्यक्तिगत रूप से सम्बद्ध और परिचित अधिकांश लोगो का संतोष हुआ है, इस बात से मैं भी सतुष्ट हूँ। सभी का सतोष हो सकेगा, ऐसी आशा न मैंने की थी, न मुझे है। बुद्ध ने भी सर्वजनहिताय, सर्वजन सुखाय कहने का साहस नहीं किया था। उन्हें बहुजनहिताय बहुजनसुखाय कह कर ही सतुष्ट होना पड़ा था क्योकि कुछ लोगो का स्वार्थ और तृप्ति न्याय और सत्य के विरोधी भी हो सकते हैं। इस सत्य को मानना ही पड़ेगा और सत्य की रक्षा के लिये उसी के अनुसार आचरण भी करना पड़ेगा। आत्मतुष्टि के लिये घटनाओ और व्यक्तियो को काल्पनिक रूप और रग देने से जिनका प्रयोजन पूरा होता है, उन्हें मैं सतुष्ट नहीं कर सकता।

जहाँ तक बन पड़ा, घटनाओं का उल्लेख प्रमाण सहित करने का प्रयत्न किया है परन्तु अतीत की बातें लिखते समय और हो सकता है आज की भी अनेक वास्तविकताओ का वर्णन करते समय अदालती प्रमाण जुटा सकना सम्भव न हो। विवेक सच्चाई को परख सकता है और सच्चाई का अपना भी बल होता है। यदि मैंने वास्तविकता के साथ न्याय नहीं किया है और कुछ लोगो का दावा है कि वे वास्तविकता को अधिक जानते हैं या अधिक सच्चाई से पेश कर सकते हैं तो उन्हे भी अवसर है कि विचार और परख के लिये ऐतिहासिक तथ्यों को पाठको के सम्मुख रखें। सत्यान्वेषी श्रोता या पाठक विवेक से सत्य और असत्य की परख स्वय भी कर सकते हैं, इसी विश्वास के आधार पर मैं संस्मरणो के इन तीनों भागों को पाठको को सौंप रहा हूँ।

इन सस्मरणो के विलम्ब से प्रकाशित होने के कारण कुछ बाद के प्रसग भी इनमे आ गये हैं। फिर भी इन संस्मरणों के प्रकाशित हो जाने का यदि कोई उपयोग है तो उसका श्रेय उन लोगो को है जो मुझे इन्हें लिख डालने के लिये प्रेरित करते रहे हैं। सबसे अधिक श्रेय है प्रकाशवती को जिनकी दृष्टि मे इन संस्मरणो के ठीक से लिखे जाने का बहुत महत्त्व रहा है।

८ फरवरी, १९५५ यशपाल

चौथे संस्करण मे जहाँ तहाँ शब्दो मे कुछ परिवर्तन किये गये हैं या कुछ पंक्तियाँ बढ़ाना उचित जान पड़ा। उसका प्रयोजन स्पष्टता रहा या बाद मे जागी स्मृति या प्राप्त सूचना रही। पुस्तक के मूल तत्त्व या भाव मे परिवर्तन नहीं आया है।

फरवरी १९७६

यशपाल

प्रसंग-क्रम

सिंहावलोकन

दल की रक्षा के लिये आजाद के प्रयत्न

४ सितम्बर, १९३० के दिन, दोपहर समय भैया आजाद ने दिल्ली की बम फैक्टरी में हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की केन्द्रीय समिति को भंग कर दिया। केन्द्रीय समिति को तोड़ देने की मजबूरी का मूल कारण मुझे गोली मारने के निर्णय का बदल दिया जाना ही था। यह निर्णय बदल देने से दो समस्याएँ ऐसी उठ खड़ी हुई थीं जिनके कारण दल को एक बार तोड़ देना अनिवार्य हो गया। एक समस्या यह थी कि पंजाब में धन्वन्तरी और सुखदेवराज मुझे दण्ड न दिये जाने का क्या कारण बताते? यदि वे कहते कि यशपाल पर लगाये गये आरोप गलत थे तो यह बात उनके प्रति साथियों के भरोसे विश्वास को समाप्त कर देती क्योंकि आरोप उन्होंने ही लगाये थे। यदि यह कहा जाता कि यशपाल ने अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगी है तो एतराज हो सकता था कि क्षमा मांगने का अवसर तो सजा निश्चित करने से पहले दिया जाना चाहिये था। तिस पर मैं यह अपमान कैसे सह लेता कि मैंने क्षमा मांग ली है। क्षमा मांगने का अर्थ होता अपराध को स्वीकार करना। इस स्थिति में मुझ पर आरोप लगा कर, मुझे गोली मार देने की मांग करने वालों का और मेरा, एक साथ काम कर सकना सम्भव नहीं रहा।

दूसरी जटिल समस्या थी, केन्द्रीय समिति द्वारा मुझे गोली मार दिये जाने के निर्णय का भेद खुला कैसे? केवल केन्द्रीय समिति का ही कोई सदस्य यह भेद खोल सकता था। जब तक यह पता न लग जाता कि किस सदस्य ने ऐसा किया है, सभी पर सन्देह किया जा सकता था। एक संदिग्ध आदमी को अपने बीच रख कर तो केन्द्रीय समिति चल नहीं सकती थी।

मैं उस समय किसी भी अवस्था में भेद देने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के नाम बताने के लिये तैयार नहीं था। मैं न केवल नाम बताने के लिये तैयार नहीं था बल्कि परिस्थिति का इशारा कर और अनुमान कर सकने का भी अवसर न बनने देना चाहता था।

दल की रक्षा के लिये आजाद के प्रयत्न

४ सितम्बर, १९३० के दिन, दोपहर समय भैया आजाद ने दिल्ली की बम फैक्टरी में हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की केन्द्रीय समिति को भंग कर दिया। केन्द्रीय समिति को तोड़ देने की मजबूरी का मूल कारण मुझे गोली मारने के निर्णय का बदल दिया जाना ही था। यह निर्णय बदल देने से दो समस्याएँ ऐसी उठ खड़ी हुईं थीं जिनके कारण दल को एक बार तोड़ देना अनिवार्य हो गया। एक समस्या यह थी कि पंजाब में धन्वन्तरी और सुखदेवराज मुझे दण्ड न दिये जाने का क्या कारण बताते? यदि वे कहते कि यशपाल पर लगाये गये आरोप गलत थे तो यह बात उनके प्रति साथियों के भरोसे-विश्वास को समाप्त कर देती क्योंकि आरोप उन्होंने ही लगाये थे। यदि यह कहा जाता कि यशपाल ने अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगी है तो एतराज हो सकता था कि क्षमा मांगने का अवसर तो सजा निश्चित करने से पहले दिया जाना चाहिये था। तिस पर मैं यह अपमान कैसे सह लेता कि मैंने क्षमा मांग ली है। क्षमा मांगने का अर्थ होता अपराध को स्वीकार करना। इस स्थिति में मुझ पर आरोप लगा कर, मुझे गोली मार देने की मांग करने वालों का और मेरा, एक साथ काम कर सकना सम्भव नहीं रहा।

दूसरी जटिल समस्या थी, केन्द्रीय समिति द्वारा मुझे गोली मार दिये जाने के निर्णय का भेद खुला कैसे? केवल केन्द्रीय समिति का ही कोई सदस्य यह भेद खोल सकता था। जब तक यह पता न लग जाता कि किस सदस्य ने ऐसा किया है, सभी पर सन्देह किया जा सकता था। एक संदिग्ध आदमी को अपने बीच रख कर भी केन्द्रीय समिति चल नहीं सकती थी।

मैं उस समय किसी भी अवस्था में भेद देने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के नाम [illegible] के लिये तैयार नहीं था। मैं न केवल नाम बताने के लिये तैयार नहीं था [illegible] को उलझा कर ठीक अनुमान कर सकने का भी अवसर न देने [illegible]।

उस समय मन में विचार न मेरा और दल का भला चाहने वालों के प्रति मेरा पूर्ण सन्तोष था। फिर भी कुछ बातें तो बहुत साफ थीं। उदाहरणतः मेरा कानपुर से दिल्ली लौटते ही प्रकाशवती का बम फैक्टरी से हटा ले जाना। यह स्पष्ट था कि सूचना मुझे कानपुर में ही मिल गयी होगी। आजाद को धोखे में रखने के लिये मैंने कह दिया था कि मुझे तो इस निर्णय का पता दिल्ली में ही लग चुका था। दिल्ली में यदि कोई भेद दे सकता था तो केवल कैलाशपति परन्तु आजाद को सन्देह वीरभद्र पर ही था। इसका कारण था वीरभद्र ने केन्द्रीय समिति में इस निर्णय का कुछ विरोध किया था परन्तु दूसरों के जोर देने पर वह चुप रह गया था। आजाद को वीरभद्र पर सन्देह तो था पर प्रमाण न होने से उसके विरुद्ध कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। अब उन्हें इस बात से तो सन्तोष था कि दल एक उपयोगी विश्वस्त आदमी को मार डालने की भूल से बच गया परन्तु इस बात का खेद भी कम नहीं था कि केन्द्रीय समिति पर भी पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता।

वीरभद्र के काम के औचित्य या अनौचित्य पर शायद मैं तटस्थ रूप से विचार न कर सकूँ। यह तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि दल का निर्णय चुपके से मुझे बता कर दल को केन्द्रीय हानि या भयंकर भूल से बचाने की अपेक्षा उसे केन्द्रीय समिति में ही इस निर्णय का विरोध करना चाहिये था। यह प्रश्न भी हो सकता है कि दल की भूल सामने आ जाने पर भी यदि वीरभद्र भेद खोल देने के अपराध के लिये दण्ड का अधिकारी था तो केन्द्रीय समिति के आरोप लगा कर समिति को भ्रम में डालने वाले क्या उससे कहीं अधिक अपराधी नहीं थे? ऐसी अवस्था में कौन किसे और किस-कि को दण्ड देता।

मुझे गोली मारने का निर्णय बदल देने से धन्वन्तरी और सुखदेवराज तो असन्तुष्ट थे ही परन्तु निर्णय जिस तरह बदला गया उससे स्वयं मुझे भी सन्तोष नहीं हुआ। मैं चाहता था कि मेरा जितना अपमान हुआ है, उसका पूरा प्रतिशोध हो। मुझसे बिना कुछ जवाब-तलब किये वैसा निर्णय कर देने या उसे स्वीकार कर लेने से मुझे आजाद के प्रति भी शिकायत थी। अब धन्वन्तरी ने पंजाब जाकर साथियों से कहना शुरू किया कि मेरे क्षमा माँग लेने के कारण आजाद ने निर्णय बदल दिया है तो मैंने अपने क्षमा माँग लेने की बात का विरोध तो किया ही साथ ही यह भी कहा कि दल का निर्णय बदल देने वाला आजाद कौन होता है? एक व्यक्ति दल का निर्णय कैसे बदल सकता है? ऐसा निर्णय हुआ ही नहीं था सब झूठ था।

उपरोक्त स्थिति आजाद से कही गयी तो उनके गुस्से का क्या ठिकाना था। तर्क या नियम के रूप में तो मेरी बात ठीक हो सकती थी परन्तु वास्तविकता यह थी कि

उस समय आज़ाद के प्रति सब साथियों का विश्वास और आदर ही दल का एक मात्र आधार और अनुशासन रह गया था। हम सभी लोग सशस्त्र थे। एक-दूसरे के प्रति क्रोध की भी कोई सीमा नहीं थी। फिर भी हम लोगों ने जो एक-दूसरे पर चोट नहीं की, इसका एक कारण तो यह था कि हम लोग निजी मानापमान की अपेक्षा उद्देश्य को बड़ा समझते थे और दल की भावना के प्रति यथासम्भव अनुशासन निबाहना भी कर्त्तव्य समझते थे। दल का एकमात्र प्रतीक उस समय आज़ाद का निर्णय ही था पर अकेले कोई भी निर्णय कर सकने की क्षमता और आत्म-विश्वास आज़ाद में न था।

आज़ाद उस समय स्वयं बड़ी कठिन बल्कि दयनीय स्थिति में थे। वे किसी को भी छोड़ देने के लिये तैयार नहीं थे। दूसरे सभी लोगों की ख़ातिर मुझे छोड़ने के लिये भी तैयार नहीं थे इसलिये उन्होंने सब झगड़ों को समाप्त करने के लिये दल को ही तोड़ दिया। प्रयोजन था कि हम नये सिरे से, नये आधार पर बन सकें। दल तोड़कर भिन्न-भिन्न प्रान्तों को शस्त्र बांटते समय उन्होंने एक बराबर का पूरा हिस्सा मुझे भी दिया, हालांकि उस समय मैं किसी प्रान्त का प्रतिनिधि नहीं था। इसे आज़ाद की मनमानी कहा जा सकता था परन्तु उनके प्रति आदर के कारण किसी ने इस पर आपत्ति नहीं की। आज़ाद ने सभी को अपने-अपने भाग में स्वतन्त्र रूप से काम करने के लिये कह दिया। साथ ही यह भी आश्वासन दिया कि किसी को उनकी सहायता की आवश्यकता होगी तो जो हो सकेगा, वे करेंगे।

मुझसे आज़ाद ने कहा कि सब लोगों को अपनी-अपनी जगह काम करने दो। हम दोनों अलग से रह कर कुछ करें। इन झगड़ों का निपटारा ऐसे ही हो सकता है। इससे मेरा मन तो सन्तुष्ट नहीं हो गया पर दूसरा उपाय भी नहीं था। कुछ दिन में लाहौर से समाचार मिला कि धन्वन्तरी और सुखदेवराज ने नहर के किनारे अब्दुल अज़ीज़ पर, जिस समय वह नहर की ओर से मोटर से आ रहा था, गोली चला दी है। इस घटना में अब्दुल अज़ीज़ को चोट भी नहीं आयी परन्तु आक्रमण करने वाले भी नहीं पकड़े जा सके। इस आक्रमण की योजना के सम्बन्ध में धन्वन्तरी ने लाहौर में मुझसे भी बात की थी। मैंने उसी समय कह दिया था कि योजना में अपने प्राण बचाने की बात पर इतना महत्व दिया जा रहा है कि इसकी सफलता में सन्देह है। आज़ाद से भी मैंने यही कहा था। उन दिनों अपने अपमान की चिढ़ और फिर आगे बढ़कर अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पा लेने की भावना मन में उग्र होने के कारण मेरे सोचने के ढंग में एक कड़ुआहट आ गयी थी। मेरी बात ठीक होने पर भी दूसरों को उसमें ईर्ष्या और दूसरों का तिरस्कार अधिक जान पड़ता था। स्वभावतः ही ऐसी बात पर ध्यान देने की उत्सुकता दूसरों को न होती थी। इसके अलावा मेरे कुछ [illegible]

से दन म फूट ही बढ़ती इसलिये यह भी उचित न ग

दिल्ली उस फैक्टरी मे बनाया गया बहुत सा ि था। फैक्टरी मे सुविधा और अवसर होन पर मैंन ह हम लोगो ने पिक्रिक एसिड को रत मे दबा कर ऽ समय मे बहुत छोटे आकार परन्तु बहुत अधिक ब यानपुर या जबलपुर छावनी म कुछ डाइनामाइट भी जान म आजाद न सुझाव दिया कि वाइसराय की स प्रयत्न असफल हो गया तो क्या, वही काम दूसरी व

नत वहा जिस तरीके म अर्थात् रेल लाइन के बिजली के तार गाड़कर हम एक बार विस्फोट दुबारा काम मे लान म हमारी योजना घटना से प हमारी खिल्ली मात्र उड़ कर रह जायगी। व कोई और ढग सोचना चाहिये।

आजाद को हसराज वायरलैस की बात याद वाइसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट करने की हम लोगों ने हसराज को दिल्ली बुलवाया था। अ- की गली क मकान म हमे डेढ़ गजा और पाच ग चिंगारी उत्पन्न करन क चमत्कार दिखा रहा था, ट हसराज जेबी बैटरी के मेल म बाल जैसे महीन महीन तार म बैटरी का बल्ब बधा रहता था। दूसर ही रहता। यह दूसरा तार बल्ब पर जोड दने मे ब जाने पर इतना तो हम भी कर लत थे। हसराज तार को बल्ब से स्वय न छुआ कर, एक छोटी सी श यह शीशी बल्ब के समीप पहुचने पर बल्ब जल उठत स्वय किरण या लहर द्वारा हो जाता था। इस शीशे कुछ दवाइया मिलाकर घोल लेता था।

हसराज इस चमत्कार का वैज्ञानिक कारण ब मिश्रण से भरी उसकी शीशी के चारो ओर वाता ऐसी लहरें उत्पन्न हो जाती हैं जो बल्ब और तार यह थी कि शीशी का प्रभाव हसराज के ही हाथ नहीं। हम लोगों के हाथो यह काम न हो सकने

रिसीवरी से उत्पन्न होने वाली लहरें खास-खास दिशाओं में चलती हैं। वह उस दिशा को खोज लेता है, हम नहीं खोज सकते। हंसराज जिस शक्ति से बिजली की लहर की दिशा खोज लेता था, यह वह बताता नहीं था। उसका उत्तर था —बस मुझे पता लग जाता है। वातावरण में बिजली की लहरों की दिशा भापने के लिये विशेष यन्त्र होते हैं। संसार भर के वैज्ञानिक इन्हीं यन्त्रों से यह काम करते हैं। कोई भी व्यक्ति जो इन यन्त्रों का प्रयोग जानता है, यह काम कर सकता है। अपने शरीर या कल्पना से कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं कर सकता। हंसराज का दावा था कि वह यह काम कर सकता था या वह स्वयं वैसा यन्त्र था।

हंसराज स्वयं उत्पन्न की हुई बिजली की लहरों के चमत्कार के अतिरिक्त हमें सम्मोहन या मेस्मरिज्म के चमत्कार भी दिखाया करता था। उसके इन चमत्कारों में अधिकांश हाथ की सफाई ही थी परन्तु हम चक्कर में जरूर आ जाते थे। दो बार अर्थात् नवम्बर १६२६ में, वाइसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट की तैयारी के समय, और लाहौर में साथियों को जेल से छुड़ाने की योजना के समय भी, हंसराज से धोखा खा चुके थे लेकिन फिर भी आज़ाद को उसकी याद आई कि यदि किसी चामत्कारिक ढंग से हम वाइसराय पर आक्रमण कर सकें तो इसका प्रभाव बहुत ही व्यापक होगा। आज़ाद के लिये यह कहना कि स्वयं खतरा सिर पर लिये बिना वाइसराय की जान ले सकने की आशा में उन्होंने ऐसी बात सोची होगी, उन्हें गलत समझना है। अभिप्राय था कि यदि अंग्रेज सरकार हमारे आक्रमण के साधन का रहस्य जान नहीं पायेगी तो और भी अधिक आतंकित और चिंतित होगी युद्ध में गुप्त साधन या शस्त्र का बहुत महत्त्व होता है।

आज़ाद ने यह तर्क भी दिया कि इससे पूर्व हंसराज अपने प्रति सन्देह होने के भय से और अपने आपको संकट में न डालने के लिये हमें चराता रहा होगा। अब इन्द्रपाल की करतूत से वह डर ही गया है। उसे सन्देह मात्र के भय का कारण या सन्देह से बचे रहने की आशा नहीं रह गयी। आज़ाद ने कहा—तुम एक बार हंसराज को खोजकर उससे फिर मिलो। यदि वह हमें अपने वायरलेस का साधन दे सके तो हम उसकी प्राण-रक्षा के लिये उसे देश से बाहर भिजवाने का प्रबन्ध करने के लिये भी तैयार हैं। हंसराज का सूत्र लायलपुर में उसके घर से ही मिल सकता था। वहाँ मेरे लिये खतरा था। आज़ाद ने कहा,—इस काम के लिये जैसे भी हो तुम एक बार और कोशिश करो।

धन्वन्तरी, सुखदेवराज और कैलाशपति ने मुझ पर फिजूलखर्ची करने का आरोप भी लगाया था। उस बात से खिन्न होकर मैंने निश्चय किया था कि मैं भविष्य में अपने या प्रकाशवती के निर्वाह के लिये न तो दल के पैसे पर और न दल के प्रबन्ध पर निर्भर

करूँगा। बता चुका हूँ, १६२६ में वायसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट की आयोजना ओखला के समीप करते समय यह भी खयाल आया था कि घटना के बाद दिल्ली की ओर रेल का फाटक बन्द मिलेगा हम मथुरा ही भाग न चले जायें। इस विचार से मथुरा का कुछ परिचय पाने के लिये मैं कई बार श्रद्धालु बनिये के रूप में मथुरा-वृन्दावन हो आया था।

आचार्य जुगलकिशोर इस समय उत्तर-प्रदेश के कांग्रेसी मन्त्रिमंडल में हैं। उन दिनों वे प्रेम महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे। प्रसंग आ चुका है आचार्य जी लाहौर में हमारे नेशनल कालेज में भी प्रिंसिपल रह चुके थे। मैं दो-तीन बार प्रेम महाविद्यालय जाकर उनसे मिल आया था और उनसे कुछ सहायता भी मिली थी। जुगलकिशोर जी की आचार्य कृपलानी से विशेष आत्मीयता थी। कृपलानी जी उन दिनों और बाद में भी बहुत दिनों तक इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रधानमंत्री थे। गांधी जी पर उनका विशेष विश्वास और प्रभाव भी था। आचार्य जी की मार्फत कांग्रेस के प्रधानमन्त्री से परिचय हो सकता था। इस मार्ग से राष्ट्रीयता की भावना रखने वाले सम्पन्न क्षेत्र में हमारी पहुँच हो सकती थी। इससे आर्थिक सहायता मिलने की सम्भावना तो हो ही सकती थी, साथ ही यह भी खयाल था कि कभी गांधी जी से भी दो दो बातें हो सकें और उन्हें अपनी विचारधारा और ईमानदारी से परिचित कराकर यह अनुरोध करें कि वे कम से कम क्रान्तिकारियों के विरुद्ध वक्तव्य देना छोड़ दें।

आचार्य जुगल किशोर जी की मार्फत कृपलानी जी से परिचय हो गया अर्थात् कृपलानी जी को यह आशंका न हुई कि मैं खुफिया पुलिस का आदमी हो सकता हूँ। सुना था, बनारस विश्वविद्यालय या पटना में पढ़ाते समय कृपलानी जी क्रान्तिकारियों से कुछ सहानुभूति भी रही थी। पहले अवसर पर कृपलानी जी से केवल परिचय भर पा लिया था, अधिक बात नहीं कर पाया। उन दिनों १६२६ के अक्टूबर में आल इंडिया कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक दिल्ली में, उस समय की केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी प्रेज़ीडेंट विट्ठलभाई पटेल के बँगले पर हो रही थी। मैं और भगवती भाई उन दिनों श्रद्धानन्द बाजार के बगल की गली में रहते थे। हमने सोचा,यदि इस समय आल इंडिया कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के अधिवेशन में जाकर कृपलानी जी की मार्फत दूसरे प्रभावशाली लोगों से भी परिचय पा सकें तो उपयोगी होगा। इस प्रयोजन से शुद्ध खद्दरधारी खयालीराम जी गुप्त से खूब सफेद खद्दर का कुर्ता धोती और टोपी ले ली और अंडी की चादर ओढ़ कर कुर्ते के नीचे धोती में पिस्तौल खोंसे, कांग्रेसी नेताओं की तरह चमड़े का एक बेग हाथ में लटकाये टाँगे पर सवार होकर विट्ठलभाई की कोठी पर पहुँचा। भगवती भाई ने सलाह दी कि आडम्बर करने की जरूरत नहीं।

तुम मोटर-साइकिल पर सूट पहन कर पत्र सम्वाददाता के रूप में जाओ। मुझे उनकी सलाह ठीक न जची।

कांग्रेस की तिरंगी पट्टियां लगाये स्वयंसेवकों ने मुझे कोठी के फाटक पर रोक लिया। उन्हें बहुत समझाया कि कृपलानी जी ने आवश्यक कार्य के लिये मुझे बिहार से बुलाया है पर स्वयंसेवकों ने एक नहीं सुनी। लौट आना पड़ा। परास्त होकर भी मन में अच्छा ही लगा कि हमारी कांग्रेस ने स्वयंसेवकों में काफी अनुशासन दृढ़ता आ गयी है। लौटने पर भगवती भाई ने कहा,—"तुमसे पहले ही कहा था कि सूट पहन कर मोटर साइकल पर जाओ।" दूसरी बार हैट और सूट में मोटर साइकल पर गया। कांग्रेस स्वयं सेवकों ने न केवल पूछताछ ही नहीं की वरिक रास्ते में बेपरवाही से खड़े अपने साथियों को मेरे हटने के लिये डांट कर रास्ता साफ करा दिया।

मैं दोपहर के भोजन के लिये कार्यकारिणी की बैठक स्थगित होने के समय गया था। कृपलानी जी से अनुरोध किया कि कुछ लोगों से परिचय करा दें। कोठी के बरामदे में सामने ही खड़े दिखायी दिये पंजाब के प्रसिद्ध नेता डाक्टर गोपीचंद जी भार्गव। कृपलानी जी उनसे परिचय कराने लगे। मैंने उत्तर दिया, "डाक्टर साहब मुझे पहचानते हैं।" डाक्टर साहब जरा मुस्करा दिये और आगे बात से बचने के लिये भीतर चले गये। समीप ही सुभाष बाबू खड़े थे। कृपलानी जी ने उनसे परिचय कराया। सुभाष बाबू का चेहरा खिल उठा। मुझे दोनों बाहों में लेकर आत्मीयता से मिले और बोले, " किसी समय जरा अच्छी तरह से बात हो।" मेरे दो बार आने के चक्कर में भोजन अवकाश का समय बीत चुका था। अधिवेशन दुबारा आरम्भ होने की घंटी बज रही थी। अधिवेशन में उस समय सुभाष बाबू को ही बोलना था। अवसर की बात, उसी सध्या उन्हें आवश्यक कार्य से कलकत्ते भी लौट जाना था। फरारी में उनसे फिर मुलाकात नहीं हो सकी। उसके बाद मुलाकात हुई १९४० में, जब उन्हें कांग्रेस के प्रधान पद से त्यागपत्र दे देना पड़ा था और वे फारवर्ड ब्लाक का सगठन करने में लगे हुए थे। उस समय सुभाष बाबू युवक कांग्रेस का उद्घाटन करने लाहौर जा रहे थे और मैं लाहौर के प्रेस कर्मचारियों की कान्फ्रेंस का उद्घाटन करने उसी गाड़ी से लाहौर जा रहा था। सुभाष बाबू को मुझे पहचानने में कठिनाई नहीं हुई पर फारवर्ड ब्लाक का कार्यक्रम मुझे ठीक नहीं जच रहा था।

१९३० सितम्बर में जब अपने ठहरने और निर्वाह की व्यवस्था के उपाय के लिये आचार्य जी के यहां वृन्दावन गया तो कृपलानी जी से भी मुलाकात हो गयी मैंने उन्हें वाइसराय की स्पेशल की घटना की बात याद दिलाकर कहा," देखिये, हम कुछ न कर सके हों ऐसी बात नहीं। हमारा उद्देश्य तो भगत सिंह के अदालत में दिये बयान के रूप में सबके सामने है। हमारे इस उद्देश्य से आपको आपत्ति है? गांधी जी ने

व्यर्थ मे हमारी निन्दा का प्रस्ताव लाहौर काग्रेस मे रखा। इसकी क्या जरूरत थी? गाधी जी के प्रस्ताव को पास होने मे कितनी कठिनाई हुई। आप स्वय समझ सकते है कि जनता की भावना क्या है। आपको तो हमारी सहायता करनी चाहिये।"

कृपलानी जी की जैसी आदत है उन्होंने कहा, "अपना लेक्चर तुम रहने दो। यह बताओ कि चाहते क्या हो?"

उत्तर दिया,—"आपकी मार्फत हम केवल आर्थिक सहायता की ही आशा कर सकते हैं।"

कृपलानी जी ने हामी भरी कि यदि हम इस बात का आश्वासन दे कि भविष्य मे हम कोई हिसात्मक घटना नही करेंगे तो वे हमारे सब साथियो के साधारण गुजारे के *लिये आर्थिक सहायता की जिम्मेदारी ले लेने के लिये तैयार है।*

मुझे यह शर्त कुछ अजीब-सी लगी। हम जो काम कर सकने के लिये सहायता चाहते थे कृपलानी जी वही काम न करने की शर्त लगा रहे थे। मैने उत्तर दिया, "छिपे रह कर केवल पेट भर लेना तो बडी भारी समस्या नही है। हमलोग कही भी छोटी-सी मनियारी या पान की दुकान करके या किसी कारखाने मे मजदूरी या मुशी की नौकरी करके पेट पाल ले सकते है। सहायता की जरूरत तो अपना आन्दोलन चलाने के लिये ही है।"

इस पर कृपलानी जी बिगड उठे, "तुम लोगो के सिर पर तो शहीद बनने का जुनून सवार है। हमारा-तुम्हारा कोई सहयोग नही हो सकता।"

तर्क करने से कोई लाभ नही था पर इतना मैने भी कह ही दिया, "आचार्य जी, यह कोई बहुत बुरा जुनून तो नही है।"

बाद मे जुगलकिशोर जी ने बताया कि कृपलानी जी मेरे लिये सदेश दे गये है कि मैं कभी मेरठ जाऊ तो वहाँ गाधी आश्रम म उनसे मिल सकता हू। उसके कई दिन बाद मेरठ जाने का अवसर हुआ तो गाधी आश्रम का भी चक्कर लगा लिया। कृपलानी जी उस समय वहा नही थे। आजकल (१९५२) उत्तर प्रदेश सरकार के यातायात विभाग के मत्री विचित्र नारायण जी शर्मा मिले। उन्होने परिचय पाकर बताया कि कृपलानी जी मेरे लिये एक लिफाफा छोड गये है। लिफाफा ले जाकर एकान्त मे खोला। उसमे सौ-सौ रुपये के दो या तीन नोट थे और साथ ही एक पुर्जा था—For personal needs (निजी आवश्यकता के लिये)। अर्थात् कृपलानी जी यह नही चाहते थे कि *उनका दिया रुपया हमारे हिसात्मक आन्दोलन मे लगे। यह कैसे हो सकता था। हम* स्वय ही उस आन्दोलन के लिये जिन्दा थे।

इस बार वृन्दावन जाने का प्रयोजन यह था कि स्वय हमराज की खोज मे जाने

से पहले प्रकाशवती को कुछ दिन के लिये किसी सुरक्षित स्थान में छोड़ आऊं। प्रकाशवती को घर से आये केवल पांच ही मास हुए थे। अभी तक व पार्टी के स्थानों ही में रही थी या एकाध बार हम से सहानुभूति रखने वालों के यहां। अभी उन्हें फरारी का अनुभव कम ही था। बाद में तो वे फरार रहते नाम बदल कर अध्यापिका का काम करके अपना निर्वाह भी करने लग गयी। वृन्दावन में प्रेम महाविद्यालय कांग्रेसी असहयोगियों का अड्डा था। वैसे भी वह अंग्रेजी शासन के पुराने विद्रोही राजा महेन्द्र प्रताप सिंह की जागीर थी और शायद शिक्षा के काम के लिये एक ट्रस्ट के हवाले कर दी जाने के कारण ही जब्त नहीं हुई थी। परन्तु खुफिया पुलिस की नजर इस संस्था पर अवश्य रहती थी। वहां प्रकाशवती का अधिक दिन ठहरना उचित न था।

मौके की बात, आचार्य जुगल किशोर जी के यहां कालिज का पुराना साथी और दोस्त मनोहरलाल खन्ना मिल गया। मनोहर भी हमारे दल के लिये जयचन्द्र जी द्वारा आरम्भ में चुने लोगों में से था। मनोहर को जयचन्द्र जी ने विदेश आने-जाने या विदेशों से शस्त्र मंगा सकने का मार्ग बनाने के लिये कुछ दिन बम्बई और लंका में रहने के लिये भेजा था परन्तु उसे कोई संतोषजनक काम करने का नहीं बताया। मनोहर समय व्यर्थ जाता देख कर अलग हो गया था। जयचन्द्र जी द्वारा दीक्षित परन्तु साथ न रह सकने वाले और भी अनेक साथी हमें बाद में कुछ न कुछ सहायता देते रहे।

मनोहर को फार्मिंग का शौक था। उन दिनों वह बुलन्दशहर जिले में प्रेम महाविद्यालय के गावों और फार्म का मैनेजर बन गया था। उसका दफ्तर या कचहरी कराल गांव में थी। उसने अपने यहां रानी के रहने की सुविधा कर देने का आश्वासन दिया। प्रकाशवती आचार्य जी के यहां आकर रही तो उन्होंने उसे 'रानी' नाम दे दिया था। इसके बाद अपने परिचितों में उसका यही नाम चल पड़ा और अभी तक चला आता है। मनोहर आरम्भ में ही सुरुचि और सलीके का आदमी था। अब गावों और फार्म का मैनेजर होने और बड़ा आदमी समझा जाने के कारण रहता भी साहबी ढंग से था। हैट, ब्रिचिस और घुटनों तक ऊंचे बूट।

बहुत दिनों की तनाव की जिन्दगी के बाद मनोहर के यहां कुछ समय आराम और बेफिक्री से रहने को मिला। मनोहर के पास पिस्तौल और शिकारी बन्दूक का लाइसेंस भी था। उसकी स्थिति भी ऐसी थी कि वहां पिस्तौल को हरदम छिपाये रखने की चौकसी की भी जरूरत न थी। निश्चित, जितना सोया जा सकता सोने, खाने के लिये भी कमी नहीं थी। मैं भी वायसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट के समय पहनी हुई ब्रिचिस और बूट ले आया था। बड़े ठाट से ब्रिचिस, बूट पहन कर बन्दूक लेकर झाड़ियों में शिकार के लिये निकल जाते। शिकार से मतलब कोई चीते,

सुअर का नहीं, यही चिड़ियों का निरापद शिकार। साथ में शिकारी भगी भी रहता। निशाना मेरा खास अच्छा नहीं था। भैया आज़ाद के कहते रहने पर भी कभी अधिक अभ्यास नहीं किया पर इतना बुरा भी नहीं था कि सौ-दो सौ फुट से गिद्ध के आकार की बड़ी चिड़िया को भी न मार सकूं। गाव के समीप तालाबों पर गिद्ध जैसी बड़ी सफेद रंग की खूब बड़ी-बड़ी 'काग' चिड़िया काफी संख्या में थी। उनका रूप और आकार कुछ बगलों जैसा ही था पर बीच में कुछ पंख गुलाबी रंग के भी होने के कारण सुन्दर लगती थीं। स्वभाव से बहुत सुस्त। बन्दूक को देखकर भी उनका मन उड़ जाने को न चाहता। झुण्ड में से एक को गिरा भी लीजिये तो शेष उड़कर दूसरे पेड़ पर बैठ जाती।

अपना निशाना देखने की इच्छा से मैंने एक चिड़िया को गिरा दिया। शिकारी ने जमीन्दारी ढंग से मेरे निशाने की प्रशंसा के पुल बांध दिये। फिर एक और चिड़िया पर बन्दूक चलायी। वह भी गिर गयी। झुण्ड की शेष चिड़िया तो दूसरे वृक्ष पर जा बैठी परन्तु इस चिड़िया के जोड़े ने बहुत विलाप शुरू कर दिया। वाल्मीकि मुनि का श्लोक याद आ गया—"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा" और सचमुच बहुत पश्चात्ताप भी हुआ। विलाप करती चिड़िया का दुख दूर करने के लिये उस पर निशाना लिया तो वह उड़ जाने लगी। दो कारतूस व्यर्थ गये। आखिर अपने सम्मान की रक्षा के लिये और चिड़िया का भी दुख दूर करने के लिये उसे तो मार ही दिया परन्तु साथ ही शिकार का शौक भी समाप्त हो गया।

मनोहर का आस-पास के गाँवों के कुछ जमीन्दारों से परिचय था। उनके यहां भी वह हमें ले जाता और हमारा परिचय अपने रिश्तदारों के रूप में करा देता। मनोहर से पता चला कि बगल से कुछ ही दूर एक गांव में मेरे कालिज के सहपाठी चौधरी रामधनसिंह का मकान था। रामधनसिंह का पता लग जाना तो बहुत ही उपयोगी जान पड़ा। रामधनसिंह भी जयचन्द्र जी द्वारा चुने गये लोगों में से था परन्तु जयचन्द्र जी की ही शिथिलता के कारण निरुत्साहित होकर बैठ गया था। जयचन्द्र जी ने रामधनसिंह को पेशावर के समीप मर्दान में जाकर रहने और सीमा पार के लोगों से सम्पर्क जोड़ने का काम सौंपा था। इससे दो काम हो सकते थे। एक तो उधर से रिवाल्वर-पिस्तौल खरीदे जा सकते थे दूसरे उस रास्ते विदेश, खासकर रूस जाने की भी सम्भावना हो सकती थी।

चौधरी रामधनसिंह बहुत खुलकर आत्मीयता से मिला। बी० ए० पास कर लेने के बाद जमीन जोतने का काम उसे रुचिकर नहीं लगा। मुंशीगीरी भी नहीं करना चाहता था इसलिये कानपुर में चमड़े का काम सिखाने वाले सरकारी स्कूल में जूता बनाने की शिक्षा ले रहा था। रामधनसिंह की यह छोटी सी बात उसकी रूढ़िविरोधी क्रान्तिकारी

मनोवृत्ति की पर्याप्त परिचायक थी। हरियाणा, गुड़गाव और बुलन्दशहर के जाट अपने आपको क्षत्री मानते हैं। गुण-कर्म भी उनके राजपूतों से भिन्न नहीं हैं। एसी अवस्था में रामधनसिंह का जूता बनाने का काम सीखने लगना, उसकी यथार्थवादी और क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का प्रमाण नहीं तो क्या था ?

एक दिन अच्छा परिहास हो गया। रामधनसिंह के पिता रिसाले में सूबेदार हो जाने के बाद पेंशन पाकर घर पर ही रह रहे थे। मैं रामधनसिंह के यहाँ गया तो साहबी ढंग छोड़कर सीधे-सादे कपड़े पहने था। रामधन के पिता सुबह अपनी पेंशन लेने तहसील अर्थात् बुलन्दशहर गये थे। लौटकर बता रहे थे कि तहसील में उन्होंने एक इश्तहार देखा कि जो आदमी लाट साहब की गाड़ी के नीचे बम चलाने वाले को पकड़ा देगा उसे सरकार बीस हजार रुपया इनाम देगी। वे बताने लगे—इनाम के इश्तहार लगाने से कहीं ऐसे आदमी पकड़े जायेंगे ? जब पहरे में बम चलाते समय मानो को दिखाई नहीं दिया तो अब क्या दिखाई देगा ! ऐसे लोग बड़े करतबी होते हैं। अपने पास गिदड़सिंगी (गीदड़ का सींग) रखते हैं। आदमी के पास गिदड़सिंगी हो तो सामने बैठा भी देख नहीं सकता। मैं उनके सामने ही तो बैठा था।

रामधनसिंह ने बड़ी गम्भीरता से पूछा, "चच्चा, गिदड़सिंगी मिल कैसे सकती है ?" सूबेदार साहब ने बताया, "बड़ी मुश्किल से मिलती है। सुना है, यहीं लाखों गीदड़ों में किसी एक के सींग होता है। यह तो जादूगर लोगों के काम हैं। एक तरह की जोगमाया समझो।"

रामधनसिंह के पिता सूबेदार तो थे ही। पहले महायुद्ध में फ्रान्स, मैसोपोटामिया के मोर्चों पर अंग्रेज सरकार के लिये लड़ भी आये थे यानी विदेश भ्रमण भी कर आये थे। अंग्रेज सरकार को अपने सैनिकों का बौद्धिक स्तर इससे ऊँचा उठाना उचित नहीं जान पड़ता था।

बायरलेस की दुबारा खोज

प्रकाशवती मनोहर के यहाँ रही और मैं हंसराज की खोज में चला। हंसराज वायरलैस से सम्बन्ध रखने वाले हमारे सभी साथी, सुखदेवराज को छोड़कर, इन्द्रपाल के साथ दूसरे लाहौर षड़यन्त्र केस में गिरफ्तार हो गये थे। इसमें भी सन्देह ही था कि कोई दूसरा व्यक्ति हंसराज के घर जाता तो उसके माता-पिता हंसराज का पता बता देते क्योंकि हंसराज पर पुलिस के सन्देह की बात वे जान चुके थे। बेटे के बारे में पूछ-ताछ से उन्हें आशंका ही होती। मैं स्वयं लायलपुर गया और हंसराज की माँ से मिला। उन्हें विश्वास दिलाया कि हंसराज की रक्षा के लिये उससे मिलना चाहता हूँ। उन्होंने बताया कि वह कराची में अपने भाई ब्रह्मदेव के यहाँ ठहरा हुआ है। उन्होंने मुझे ब्रह्मदेव का पता दे दिया। ब्रह्मदेव वार्कट ब्रदर्स के कराची दफ्तर में क्लर्क था।

सुअर या नहीं यही चिड़िया या निरापद शिकार। साथ में शिकारी भगी भी रहता। निशाना मेरा खास अच्छा नहीं था। भैया आज़ाद के वहन रहने पर भी कभी अधिक अभ्यास नहीं किया पर इतना बुरा भी नहीं था कि सौ दो सौ फुट से गिद्ध के आकार की बड़ी चिड़िया को भी न मार सकूं। गाव के समीप तालाबों पर गिद्ध जैसी कद सफेद रंग की खूब बड़ी-बड़ी बगुला चिड़िया काफी संख्या में थी। उनका रूप और आकार कुछ बगुला जैसा ही था पर चोंच में कुछ पंख गुलाबी रंग के भी होने के कारण सुन्दर लगती थी। स्वभाव से बहुत सुस्त। बन्दूक का धमाका भी उनका मन उड़ जाने को न चाहता। झुण्ड में से एक को गिरा भी दीजिये तो शेष उड़कर दूसरे पेड़ पर बैठ जाती।

अपना निशाना देखने की इच्छा से मैंने एक चिड़िया को गिरा दिया। शिकारी ने जमींदारी ढंग से मेरे निशाने की प्रशंसा के पुल बांध दिये। फिर एक और चिड़िया पर बन्दूक चलायी। वह भी गिर गयी। झुण्ड की शेष चिड़िया तो दूसरे वृक्ष पर जा बैठा परन्तु इस चिड़िया के जोड़े ने बहुत विलाप शुरू कर दिया। वाल्मीकि मुनि का श्लोक याद आ गया— मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः और सचमुच बहुत पश्चात्ताप भी हुआ। विलाप करती चिड़िया का दुख दूर करने के लिये उस पर निशाना लिया तो वह उड़ जाने लगी। दो कारतूस व्यर्थ गये। आखिर अपने सम्मान की रक्षा के लिये और चिड़िया का भी दुख दूर करने के लिये उसे तो मार ही दिया परन्तु साथ ही शिकार का शौक भी समाप्त हो गया।

मनोहर का आस-पास के गाँवों के कुछ जमींदारों से परिचय था। उनके यहां भी वह हमें ले जाता और हमारा परिचय अपने रिश्तेदारों के रूप में करा देता। मनोहर से पता चला कि वहाँ से कुछ ही दूर एक गांव में मेरे कालिज के सहपाठी चौधरी रामधनसिंह का मकान था। रामधनसिंह का पता लग जाना तो बहुत ही उपयोगी जान पड़ा। रामधनसिंह भी जयचन्द्र जी द्वारा चुने गये लोगों में से था परन्तु जयचन्द्र जी की ही शिथिलता के कारण निरुत्साहित होकर बैठ गया था। जयचन्द्र जी ने रामधनसिंह को पेशावर के समीप मर्दान में जाकर रहने और सीमा पार के लोगों से सम्पर्क जोड़ने का काम सौंपा था। इससे दो काम हो सकते थे। एक तो उधर से रिवाल्वर पिस्तौल खरीदे जा सकते थे दूसरे उस रास्ते विदेश खासकर रूस जाने की भी सम्भावना हो सकती थी।

चौधरी रामधनसिंह बहुत खुलकर आत्मीयता से मिला। बी० ए० पास कर लेने के बाद जमीन जोतने का काम उसे रुचिकर नहीं जंचा। मुंशीगीरी भी नहीं करना चाहता था इसलिये कानपुर में चमड़े का काम सिखाने वाले सरकारी स्कूल में जूता बनाने की शिक्षा ले रहा था। रामधनसिंह की यह घरेलू मालूमात उसकी रूढ़िविरोधी क्रान्तिकारी

मनोवृत्ति की पर्याप्त परिचायक थी। हरियाणा, गुड़गाँव और बुलन्दशहर के जाट अपने आपको क्षत्री मानते हैं। गुण-कर्म भी उनके राजपूतों से भिन्न नहीं है। ऐसी अवस्था में रामधनसिंह का जूता बनाने का काम सीखने लगना, उसकी यथार्थवादी और क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का प्रमाण नहीं तो क्या था?

एक दिन अच्छा परिहास हो गया। रामधनसिंह के पिता रिसाले में सूबेदार हो जाने के बाद पेंशन पाकर घर पर ही रह रहे थे। मैं रामधनसिंह के यहाँ गया तो साहबी ढंग छोड़कर सीधे-सादे कपड़े पहने था। रामधन के पिता सुबह अपनी पेंशन लेने तहसील अर्थात् बुलन्दशहर गये थे। लौटकर बता रहे थे कि तहसील में उन्होंने एक इश्तहार देखा कि जो आदमी लाट साहब की गाड़ी के नीचे बम चलाने वाले को पकड़ा देगा उसे सरकार बीस हज़ार रुपया इनाम देगी। वे बताने लगे—इनाम के इश्तहार लगाने से कहीं ऐसे आदमी पकड़े जायेंगे? जब पहरे में बम चलाते समय साला को दिखाई नहीं दिया तो अब क्या दिखाई देगा! ऐसे लोग बड़े करामाती होते हैं। अपने पास गिदड़सिंगी (गीदड़ का सींग) रखते हैं। आदमी के पास गिदड़सिंगी हो तो सामने बैठा भी देख नहीं सकता। मैं उनके सामने ही तो बैठा था।

रामधनसिंह ने बड़ी गम्भीरता से पूछा, "अच्छा, गिदड़सिंगी मिल कैसे सकती है?" सूबेदार साहब ने बताया, "बड़ी मुश्किल से मिलती है। सुना है, कहीं लाखों गीदड़ों में किसी एक के सींग होता है। यह तो जादूगर लोगों के काम हैं। तब तरह की सौमाला समपा।"

रामधनसिंह के पिता सूबेदार तो थे ही। पहले महायुद्ध में फ्रांस, मैसोपोटामिया के मोर्चों पर अंग्रेज़ सरकार के लिये लड़ भी आये थे यानी विदेश भ्रमण भी कर आये थे। अंग्रेज़ सरकार को अपने सैनिकों का बौद्धिक स्तर इससे ऊँचा उठाना उचित नहीं जान पड़ता था।

वायरलेस की दुबारा खोज

प्रकाशवती मनोहर के यहाँ रहीं और मैं हंसराज की खोज में चला। हंसराज वायरलेस से सम्बन्ध रखने वाले हमारे सभी साथी, सुखदेवराज को छोड़कर, इन्द्रपाल के साथ दूसरे लाहौर षड्यन्त्र केस में गिरफ्तार हो गये थे। इसमें भी सन्देह ही था कि कोई दूसरा व्यक्ति हंसराज के घर जाता तो उसके माता-पिता हंसराज का पता बता देते क्योंकि हंसराज पर पुलिस के सन्देह की बात वे जान चुके थे। बेटे के बारे में पूछताछ से उन्हें आशंका ही होती। मैं स्वयं लायलपुर गया और हंसराज की माँ से मिला। उन्हें विश्वास दिलाया कि हंसराज की रक्षा के लिए उससे मिलना चाहता हूँ। उन्होंने बताया कि वह कराची में अपने भाई बलदेव के यहाँ ठहरा हुआ है। उन्होंने मुझे बलदेव का पता दे दिया। बलदेव बाकायदा सर्विस में कराची दफ्तर में क्लर्क था।

मैं अक्तूबर के पहले सप्ताह में कराची पहुंचा। ब्रह्मदेव शायद गाड़ीखाना मुहल्ले में, तिमंजिले पर एक कोठरी में सपत्नीक रहता था। हंसराज वहां ही था। हंसराज से बात की। उसने कहा अब क्या है अब तो करना ही होगा। मैंने इन्द्रपाल की गलती के लिये अफसोस भी किया अस्तु हंसराज तैयार हो गया। उसने कठिनाई बतायी कि कराची में उसके पास सामान नहीं है। सामान जुटाने में कम से कम एक मास लगेगा। उसने नवम्बर के महीने में कोई तारीख बता दी कि उस दिन या उसके बाद किसी भी दिन मैं आकर उससे पांच सौ गज तक बिजली की लहरें (किरणें) पहुंचाने वाला एक बम्ब ले जा सकूंगा। उस बम्ब के साथ एक शीशी रहेगी। जब तक शीशी रहेगी बम्ब से लहरें न निकलेंगी शीशी को बम्ब से दूर करते ही बम्ब सक्रिय हो जायगा। उसने जिस ढंग से बातचीत की उसके इरादे और नीयत में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं जान पड़ी।

कराची से गाड़ी पांच-छः बजे शाम को चलती थी। उसी गाड़ी से लौटा। हैदराबाद के स्टेशन पर रात आठ-साढ़े आठ का समय होगा। देखा कि एक आदमी पगड़ी, धारीदार कोट और सिलवार पहने मेरी तरफ इशारा करके एक दूसरे आदमी से बात कर रहा है। पिछले स्टेशन पर एक टिकट बाबू ने मेरे डिब्बे में आ कर सरसरी तौर पर टिकट चैक किये थे। मेरा भी टिकट देखा था और प्लेटफार्म पर इस आदमी से कुछ बात की थी। उस समय सन्देह नहीं हुआ था। अब मेरा माथा ठनका। अनुमान किया, पुलिस को मालूम होगा कि हंसराज अपने भाई ब्रह्मदेव के मकान पर है। फरार व्यक्ति का अपने भाई के यहां रहना जोखिम सिर लेना ही था। सोचा, वहां खुफिया पुलिस वाले पहरा रखे होंगे। मैं भांप नहीं सका परन्तु वहीं से मेरा पीछा किया गया है। मेरे पास सामान अधिक न था, केवल छोटा सा बिस्तर और कैनवस का सूटकेस। सूटकेस में दो-तीन पुस्तकें और जरूरत के समय बदलने के लिये कपड़े थे। दूसरे आदमी को मुझे दिखाकर धारीदार कोट वाला व्यक्ति प्लेटफार्म के दायीं ओर चला गया। यह दूसरा व्यक्ति बालदार ऊँची टोपी पहने था। उसने एक सिगरेट जलाकर कनखियों से मुझे देखते हुये सामने एक चक्कर लगाया और गार्ड के डिब्बे की ओर एक गाड़ी के सामने खड़ा रहा। मेरा भी ध्यान उसकी ओर था। गाड़ी चलने से पहले मैं दरवाजे में खड़ा झांक रहा था। सोचा, जो होगा देखा जायगा, इस गाड़ी से उतर जाऊं। गाड़ी के चाल पकड़ने से पहले ही मैं दूसरी ओर उतर गया और गाड़ी की गति से उल्टी दिशा में चलने लगा।

गाड़ी निकल गयी तो प्लेटफार्म के अन्त से कुछ इधर ही धारीदार कोट पहने आदमी दिखायी दिया। उसने भी तेज रोशनी में मुझे देख लिया। मुझे आशंका हुई कि वह चिल्लाना ही चाहता है, पकड़ो! पकड़ो! इसलिये अपने लम्बे

से कोट की जेब में पड़ी पिस्तौल पर हाथ रख लिया। उस व्यक्ति ने यही दिखाया कि उसने मुझे देखा नहीं। प्लेटफार्म समाप्त हो जाने के बाद रोशनी कम थी। मैं जगह से बिल्कुल अपरिचित था। यों ही प्राण बचाने की आशा में चल पड़ा। पीछे भी देखता जा रहा था। बीस-पच्चीस कदम जाकर देखा कि वह आदमी तेजी से मेरे पीछे चला आ रहा है। बीच में खाली लाइन थी पर दोनों तरफ गाड़ियाँ खड़ी थीं। मैं तेजी से चलने लगा और उस आदमी के भी तेजी से चलने की आहट आने लगी। सोचा, इस अनजानी जगह में मैं कहाँ तक चला जाऊँगा? मैं सहसा दो डिब्बों के बीच की जगह में जा खड़ा हुआ। मेरा पीछा करता आदमी और भी तेजी से उस जगह से एक कदम आगे निकल गया। दो गाड़ियों के बीच में होते ही मैंने पिस्तौल कमर से निकाल लिया था परन्तु घोड़ा नहीं खींचा था। पीछे से लपक कर मैंने पिस्तौल को जोर से उसके कान और गाल पर मारा। उसकी पगड़ी गिर पड़ी और वह दोनों हाथों में सिर थाम कर बैठ गया।

कभी तर्क के लिये अवसर तो नहीं होता परन्तु आदमी क्षण भर में सूक्ष्म से ऐसा काम कर जाता है जिसमें तर्क की लम्बी शृंखला बीज रूप में समायी रहती है, जिसे इन्टिक्ट कहते हैं। उस समय यदि मैं उसे आगे निकल जाने देकर स्टेशन पर लौट आता तो फिर स्टेशन पर उससे सामना होता। उस समय हैदराबाद (सिंध) शहर का मुझे कुछ भी परिचय नहीं था। इतना ही जानता था कि स्टेशन से सब मकानों के ऊपर तिरछे से लम्बे-लम्बे रोशनदान बने दिखायी देते हैं। स्टेशन पर सामना होने पर वह क्या न करता। पहली बार ही उसने मदद के लिये दूसरों को क्यों नहीं पुकारा यही समझ नहीं सकता। वस्तु, उस आदमी के सिर थाम कर बैठते ही मैंने पिस्तौल की नली नाक पर दबाकर कड़े परन्तु दबे हुये स्वर में गाली देकर धमकाया, "अभी गोली मार दूंगा। क्यों पीछे पड़ा है?" वह कुछ बोल न सका। केवल दोनों हाथ जोड़ दिये। गोली नहीं चलायी। चलाता तो उसकी गूंज से मैं स्वयं मुसीबत में पड़ जाता। उसे फिर धमकाया, "खबरदार, जो पीछे आया!"

इसी समय गाड़ी के दूसरी ओर से किसी व्यक्ति के पत्थरों पर चलने की आहट सुनायी दी। झुक कर गाड़ी के नीचे देखा कि एक आदमी स्टेशन की ओर रेल के हाते की, टीन की तख्तियों की बनी बाड़ के साथ-साथ चला जा रहा है। उस आदमी ने दो-तीन तख्तियाँ को टटोल कर देखा। एक तख्ती ढीली थी। उसे खिसका कर वह बाहर निकल गया। मैं भी दोनों गाड़ियों के बीच की राह से दूसरी तरफ निकल कर उसी जगह से बाहर चला गया। यहाँ सड़क पर अंधेरा था।

परन्तु जाता कहाँ? हैदराबाद में कोई भी परिचय न था। रात का समय। जब

पास मुसाफिरी का कोई सामान भी न रहा था। मेरे टिकट का स्थान और शायद नम्बर भी नोट हो चुका था। टिकट लाहौर तक का लिया था। टिकट फेंक दिया। अपना कोट उतार कर वहीं अंधेरे में ही छोड़ दिया और धोती को दोतहा करके तहमत की तरह बांध लिया। यह भी खयाल आया कि ऐसी पोशाक में गुण्डा समझ कर ही न पकड़ लिया जाऊं। सबसे,बड़ी बात यह थी कि मेरा पीछा करने वाला व्यक्ति यदि फिर मुझे ढूंढने स्टेशन पर आया तो मैं किसी भी तरह नहीं बच सकता पर ऐसा विश्वास था कि वह आयेगा नहीं।

एक कुली से सम्मासट्टा जाने वाली गाड़ी का समय पूछा। अभी एक घंटे की देर थी। मैं तीसरे दर्जे के मुसाफिर खाने की भीड़ में जा बैठा। गाड़ी के आने की घंटी बजी तो सम्मासट्टा का टिकट लेकर गाड़ी में जाकर ऊपर की सीट पर धोती ओढ़ कर लेट गया। गाड़ी चल दी। नींद तो भला जल्दी क्या आ जाती पर बच जाने की सान्त्वना अनुभव हुई।

पहली गाड़ी से उतर कर प्रायः सवा घंटे बाद दुबारा गाड़ी में चढ़ जाने तक की बात सोचने लगा। वाइसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट करने के बाद मैं पुलिस की प्रतीक्षा में खड़ा रहा था। लौटते समय पुलिस की गारद से सामना हो जाने पर और दिल्ली स्टेशन पर भी झिझका नहीं था। हैदराबाद स्टेशन पर इस सवा घंटे में मुझे जितना पसीना आया और जैसे दिल धड़का, वैसा शायद बहुत सख्त मलेरिया का ज्वर होने पर भी न हुआ होगा। इस सवा घंटे की लड़ाई में मैं युद्ध करने या आक्रमण करने नहीं गया था बल्कि प्राण बचाने के लिये भाग रहा था। इस तरह पकड़े जाने समय लड़ने में वीरता का अवसर भी न जान पड़ रहा था। किसी उद्देश्य या संगठन के अंग के रूप में आदमी की जो स्थिति बन जाती है वह व्यक्तिगत रूप में नहीं रहती। वही प्रेरणा और साहस का भी स्रोत होती है।

सम्मासट्टा में कोई अड़चन दिखायी नहीं दी। यहां उतर कर लाहौर का नहीं भटिंडा का टिकट ले लिया। इस रास्ते पैसेन्जर गाड़ी रेगिस्तान के बीच से धीमे- धीमे रेंगती हुई जाती है और बहुत समय ले लेती है।

हैदराबाद में अपना पीछा करने वाले व्यक्ति की शक्ल बार-बार याद आ जाती थी। यह भी खयाल आता कि उसने स्टेशन पर मुझे क्यों ढूंढा। पुलिस के आदमी से इस प्रकार का प्रसंग पड़ने का पहला ही अवसर था। बाद में भी ऐसा अवसर आया बल्कि इससे भी विकट। तब यह सब जान चुका था कि पिट कर जाने के बाद पुलिस के लोग मार खा कर आने की बात कह कर, अफसरों के सामने अपनी अयोग्यता और कायरता प्रकट नहीं किया करते। शान्ति से सोचने पर अनुमान हुआ कि सम्भव है उस

आदमी ने मेरा पीछा ब्रह्मदेव मकान से न किया हो । १९२८ में जब हम लोग नौजवान भारत सभा के काम में बहुत खुलकर भाग ले रहे थे या १९२९ की जनवरी में जब मैंने और भगवती भाई ने २६ जनवरी को झण्डे की सलामी फौजी ढग से देने की आयोजना की थी तभी से पुलिस के इस आदमी ने मुझे पहचान रखा हो । आशंका थी कि यदि हंसराज गिरफ्तार हो जाता है तो मेरा कराची जाना व्यर्थ हो जायगा ।

भटिंडे की राह देहली पहुंचा तो अवस्था बुरी थी । कपड़े बहुत मैले और कई दिन की बढ़ी हुई हजामत । जब रोहतक में मैं किमना बनकर रहा था तब भी स्वरूप कुछ ऐसा ही था परन्तु वह जानबूझ कर बनाया रूप था और अब मजबूरी थी ।

झंडे वाले मुहल्ले में बम फैक्टरी का बड़ा मकान छोड़ दिया जा चुका था । देहली के इचार्ज कैलाशपति से या भैया से मिलने का कोई ठिकाना मालूम नहीं था । प्रोफेसर नन्दकिशोर निगम के यहां जाकर ही कुछ पता लग सकता था । देहली तक पहुंचते पहुंचते दुबारा टिकट खरीदने के कारण मेरी जेब में शायद ६ पैसे ही बच रहे थे । स्टेशन से यमुना किनारे हिन्दू होस्टल में प्रोफेसर निगम के मकान तक जाने के लिये तांगा भी न कर सकता था । क्वार की तीखी धूप थी । पैदल ही हिन्दू कालिज के होस्टल तक गया । अकस्मात् कैलाशपति साइकल पर बोर्डिंग से बाहर निकलता दिखायी दे गया । बम फैक्टरी के प्रसंग में कह चुका हूं कि उन दिनों वह १९२८-२९ का कैलाशपति न रहा था कि देहली के जाड़े में बिना स्वेटर के घूमता रहे और स्वेटर दे दिया जाने पर स्वत न पहन कर दूसरे साथी को दे दे । वह खूब बुर्राक कलफ किये साफ कपड़े पहने था । उससे पोमेड-क्रीम की सुगन्ध आ रही थी । आंखों पर धूप का चश्मा । यही रूप देख कर मैं आजाद से कहा करता था कि ठंडी को जवानी चढ़ रही है ।

अपनी उस अवस्था में मुझे उसका सिंगार बहुत खला । मैं उससे बहुत तिरस्कार से बोला । वह गम्भीर बना रहा । उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया,—"इस समय यहां आजाद या निगम कोई नहीं है । आजाद कानपुर चले गये हैं ।'

मैंने अपने साथ हुई घटना संक्षेप में बता कर बहुत अधिकार से उससे रुपये मांगे ।

'इस समय तो नहीं है ।" उसने शायद मेरे तिरस्कार के प्रतिकार में उत्तर दे दिया ।

पैदल देहली शहर लौटना पड़ा । कहां जाता ? श्यामलाल गुप्त के यहां जाने पर उनकी मां बहुत नाराज होती थीं । अजमेरी दरवाजे पर महाशय कृष्ण जी के यहां जाना उचित नहीं था । बहावलपुर रोड के प्रसंग में यह बता ही चुका हूँ कि महाशय कृष्ण जी के मकान की तलाशी हो चुकी थी ।

पास मुसाफिरी का कोई सामान भी न रहा था। मेरे टिकट का स्थान और शायद नम्बर भी नोट हो चुका था। टिकट लाहौर तक का लिया था। टिकट फेंक दिया। अपना कोट उतार कर वहीं अंधेरे में ही छोड़ दिया और धोती को दोतहा करके तहमत की तरह बांध लिया। यह भी खयाल आया कि ऐसी पोशाक में गुण्डा समझ कर ही न पकड़ लिया जाऊं। सबसे बड़ी बात यह थी कि मेरा पीछा करने वाला व्यक्ति यदि फिर मुझे ढूंढने स्टेशन पर आया तो मैं किसी भी तरह नहीं बच सकता पर ऐसा विश्वास था कि वह आयेगा नहीं।

एक कुली से सम्मासट्टा जाने वाली गाड़ी का समय पूछा। अभी एक घंटे की देर थी। मैं तीसरे दर्जे के मुसाफिर खाने की भीड़ में जा बैठा। गाड़ी के आने की घंटी बजी तो सम्मासट्टा का टिकट लेकर गाड़ी में जाकर ऊपर की सीट पर धोती ओढ़ कर लेट गया। गाड़ी चल दी। नींद तो भला जल्दी क्या आ जाती पर बच जाने की सान्त्वना अनुभव हुई।

पहली गाड़ी से उतर कर प्राय सवा घंटे बाद दुबारा गाड़ी में चढ़ जाने तक की बात सोचने लगा। वाइसराय की स्पेशल के नीचे विस्फोट करने के बाद मैं पुलिस की प्रतीक्षा में खड़ा रहा था। लौटते समय पुलिस की गारद से सामना हो जाने पर और दिल्ली स्टेशन पर भी झिझका नहीं था। हैदराबाद स्टेशन पर इस सवा घंटे में मुझे जितना पसीना आया और जैसे दिल धड़का, वैसा शायद बहुत सख्त मलेरिया का ज्वर होने पर भी न हुआ होगा। इस सवा घंटे की लड़ाई में मैं युद्ध करने या आक्रमण करने नहीं गया था बल्कि प्राण बचाने के लिये भाग रहा था। इस तरह पकड़े जाते समय लड़ने में वीरता का अवसर भी न जान पड़ रहा था। किसी उद्देश्य या संगठन के अंग के रूप में आदमी की जो स्थिति बन जाती है वह व्यक्तिगत रूप में नहीं रहती। वही प्रेरणा और साहस का भी स्रोत होती है।

सम्मासट्टा में कोई आशंका दिखायी नहीं दी। यहां उतर कर लाहौर का नहीं भटिंडा का टिकट ले लिया। इस रास्ते पेसेन्जर गाड़ी रेगिस्तान के बीच से धीमे-धीमे रेंगती हुई जाती है और बहुत समय ले लेती है।

हैदराबाद में अपना पीछा करने वाले व्यक्ति की शक्ल बार-बार याद आ जाती थी। यह भी खयाल आता कि उसने स्टेशन पर मुझे क्यों ढूंढा। पुलिस के आदमी से इस प्रकार का प्रसंग पड़ने का पहला ही अवसर था। बाद में भी ऐसा अवसर आया यद्यपि इसमें भी विकट। तब यह सब जान चुका था कि पिट कर जाने के बाद पुलिस के लोग मार खा कर आने की बात कह कर, अफसरों के सामने अपनी अयोग्यता और कायरता प्रकट नहीं किया करते। शान्ति से सोचने पर अनुमान हुआ कि सम्भव है उस

आदमी ने मेरा पीछा ब्रह्मदेव मकान से न किया हो। १६२८ में अब हम लोग नौजवान भारत सभा के काम में बहुत खुलकर भाग ले रहे थे या १६२६ की जनवरी में जब मैंने और भगवती भाई ने २६ जनवरी को झण्डे की सलामी फौजी ढंग से देने की आयोजना की थी तभी से पुलिस के इस आदमी ने मुझे पहचान रखा हो। आशंका थी कि यदि हमराज गिरफ्तार हो जाता है तो मेरा करांची जाना व्यर्थ हो जायगा।

भटिंडे की राह देहली पहुंचा तो अवस्था बुरी थी। कपड़े बहुत मैले और कई दिन की बढ़ी हुई हजामत। जब रोहतक में मैं छिपना चाहकर रहा था तब भी स्वरूप कुछ ऐसा ही था परन्तु वह जानबूझ कर बनाया रूप था और अब मजबूरी थी।

झड़े वाले मुहल्ले में बम फैक्टरी का बड़ा मकान छोड़ दिया जा चुका था। देहली के इवार्ज कैलाशपति से या भैया से मिलने का कोई ठिकाना मालूम नहीं था। प्रोफेसर नन्दकिशोर निगम के यहां जाकर ही कुछ पता लग सकता था। देहली तक पहुंचते पहुंचते दुबारा टिकट खरीदने के कारण मेरी जेब में शायद ६ पैसे ही बच रहे थे। स्टेशन से यमुना किनारे हिन्दू होस्टल में प्रोफेसर निगम के मकान तक जाने के लिये तांगा भी न कर सकता था। सवार की तीखी धूप थी। पैदल ही हिन्दू कालिज के होस्टल तक गया। अकस्मात् कैलाशपति साइकल पर बोर्डिंग से बाहर निकलता दिखायी द गया। बम फैक्टरी के प्रसंग में कह चुका हूं कि उन दिनों वह १६२८-२६ का कैलाशपति न रहा था कि देहली के जाड़े में बिना स्वेटर के घूमता रहे और स्वेटर दे दिया जाने पर स्वत न पहन कर दूसरे साथी को दे दे। वह खूब बुर्राक कलफ किये साफ कपड़े पहने था। उससे पोमेड-क्रीम की सुगन्ध आ रही थी। आंखों पर धूप का चश्मा। वही रूप देख कर मैं आजाद से कहा करता था कि ठंडी की जवानी चढ़ रही है।

अपनी उस अवस्था में मुझे उसका सिंगार बहुत खला। मैं उससे बहुत तिरस्कार से बोला। वह गम्भीर बना रहा। उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया,—"इस समय यहां आजाद या निगम कोई नहीं है। आजाद कानपुर चले गये हैं।'

मैंने अपने साथ हुई घटना संक्षेप में बता कर बहुत अधिकार से उससे' रुपये मांगे।

'इस समय तो नहीं हैं।" उसने शायद मेरे तिरस्कार के प्रतिकार में उत्तर दे दिया।

पैदल देहली शहर लौटना पड़ा। कहां जाता ? खयालीराम गुप्त के यहां जाने पर उनकी मां बहुत नाराज होती थी। अजमेरी दरवाजे पर महाशय कृष्ण जी के यहां जाना उचित नहीं था। बहावलपुर राड के प्रसंग में यह बता ही चुका हूं कि महाशय कृष्ण जी के मकान की तलाशी हो चुकी थी।

भूखा इधर-उधर घूम रहा था। भूख से अधिक क्लेश मन को कैलाशपति के व्यवहार से हुआ। ६ पैसे पास हों तो आदमी चना-चबेना चबाकर समय काट सकता है पर भूख से अधिक चिन्ता थी कि कानपुर कैसे पहुंचूगा। भूख भूली हुई थी। उन दिनों सिगरेट-सिगार पीने की आदत बहुत कम थी परन्तु जाने क्या सूझा कि मैंने जामा मसजिद के पास एक दुकान से ६ पैसे में एक सिगार खरीद लिया और सध्या के अंधेरे में परेड के मैदान में बैठ कर पीने लगा। कैलाशपति पर गुस्सा इस अधिकार से था कि आपस में चाहे जितना मतभेद या लड़ाई हो हम लोग एक-दूसरे की कठिनाई और खतरे की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। खैर सिगार पीने से चक्कर-सा आ गया। जोर की उबकाई आने लगी। मसजिद के समीप एक नल से खाली पेट में बहुत-सा पानी पी लिया तो तबीयत और खराब हो गयी। फिर परेड में जा लेटा। तब ख्याल आया मैं बहुत मूर्खता कर रहा हू। मेरी कमर में पिस्तौल है यदि मुझे ऐसे लेटे देख कर ही पुलिस वाले अवारागर्दी में चालान कर दें तो ?

पचास वर्ष के लम्बे जीवन में मैंने बहुत कुछ देखा और अनुभव किया है परन्तु पैसा न होने के कारण भूखे रहने का उस दिन केवल एक ही अवसर आया। सोचा—महाशय कृष्ण जी के यहा जाना ही पड़ेगा। उठा और अजमेरी गेट की ओर चल दिया। रास्ता चावड़ी बाजार और फतेहपुरी के बीच में होकर जाता था। मैं राशन सिनेमा के पास से गुजर रहा था, रात के नौ या साढ़े नौ बजे होंगे। उन दिनों इस भाग में सड़क के दोनों ओर बहुत ही सस्ते किस्म की वेश्याओं के कोठे रहते थे। बाजार प्राय सूना हो रहा था। मुझे धीमे-धीमे जाते देखकर वेश्याएँ शायद मुझे गाहक समझ दोनों ओर से पुकारने लगीं "अरे इधर आ उधर आ जा!" सोचा—इन्हें भी शायद मेरी ही तरह भूख लगी होगी। यदि चला जाऊं तो इनसे क्या बातचीत होगी ? यह अनुभव मेरे मन में इतना गहरा बैठ गया कि कभी भूल नहीं सकता। बाद में १६३८ में मैंने इस अनुभव की याद में एक छोटी सी कहानी 'दुखी-दुखी' लिखी थी जो प्राय ही पाठकों को बहुत पसद आयी है।

महाशय कृष्ण जी के यहा जाना ही पड़ा। वे घर पर ही थे। मुझे अचानक और ऐसी अवस्था में देखकर देखते ही रह गये। उनसे क्षमा सी मांगी, " मुझे यहा नहीं आना चाहिए था परन्तु बहुत ही मजबूरी में आया हूँ।" उनसे कुछ साफ कपड़ों और रुपयों के लिये कहा। कृष्ण जी की आदत बहुत कुछ पूछने और जिरह करने की थी पर उस दिन उन्होंने बिना कुछ पूछे-ताछे कपड़े और रुपये दे दिये। वहीं हजामत बनाकर, नहा-धोकर कपड़े बदल लिये। उनके यहा जाने पर भाभी खाना तो जरूर ही खिलाती थी और प्रसन्नता से।

मैं आज़ाद को ढूँढ़ने कानपुर चल दिया। आज़ाद भैया ने कानपुर में एक खास पता बताया था कि आवश्यकता होने पर वहां ठहर भी सकता हूं। लगभग संध्या समय कानपुर पहुंचा था। चुन्नीगंज गया। वहाँ गुलजारीलाल का मकान ढूंढा। गुलजारीलाल इकहरे बदन के लम्बे से आदमी थे। रंग गेहुआँ और लम्बी-लम्बी मूछें। यह याद नहीं कि मैंने किस नाम से आज़ाद का पता पूछा पर वे समझ गये। बहुत भावुकता और गहराई से मेरी ओर पल भर देखा और बोले, "हां ठीक है, बैठिये।"

एक कोठरी और आंगन का मकान था। वे अकेले ही रहते थे। गुलजारीलाल ने मुझसे बात नहीं की। खाट पर कपड़ा बिछा कर बैठा दिया और स्वयं तुरन्त आंगन में बने चौके में बैठकर एक कटहल काटने लगे। मैंने आज़ाद तक संदेश पहुंचाने की बात याद दिलाई। गुलजारीलाल बोले, "पहले आप खाना खा लीजिये।" उनसे जल्दी खाने की आवश्यकता न होने और तकल्लुफ न करने की बात कही पर वे नहीं माने। कटहल काट कर उन्होंने चूल्हे पर चढ़ा दिया। आटा गूंधने लगे। उन्हें आटा पूरियां के लिये कड़ा गूंधते देखा तो फिर कष्ट न करने का अनुरोध किया परन्तु वे नहीं माने। खूब याद है, कड़ाई नहीं थी, उन्होंने गहरे तवे पर खूब घी छोड़कर पूरियां तलीं और फिर मुझे बहुत श्रद्धा से आसन पर बैठाकर खाना खिलाया। उससे पहले यू० पी० में रहने का अवसर नहीं हुआ था। कटहल की तरकारी उसी दिन पहली बार खायी थी या कभी उससे पहले भी बात याद नहीं। मैं जब भी कटहल की तरकारी देखता हूं, मुझे गुलजारीलाल की रसोई याद आ जाती है। खाने के बाद मेरे जिद करने पर भी उन्होंने मुझे थाली नहीं धोने दी।

खाना खिला कर वे आज़ाद को खबर देने गये। भैया साढ़े नौ-दस तक आ गये। हम दोनों बात करने लगे तो गुलजारीलाल स्वयं ही परे जाकर बैठ गये। गुलजारीलाल कानपुर म्युनिसिपैलिटी की छिड़काव करने वाली मोटर के ड्राइवर थे। इसके बाद एक ही बार और उनसे मुलाकात हुई। उनकी पहली मुलाकात की स्मृति मस्तिष्क पर इतनी गहरी है कि पच्चीस वर्ष बाद भी उनका चेहरा याद है। आज़ाद के ऐसे कई निजी विश्वस्त लोग थे। कराची में हंसराज के वायदे का और फिर रास्ते की दुर्घटना का पूरा हाल भैया को बताया। यदि हंसराज गिरफ्तार हो गया होता तो अब तक तो पत्रों में समाचार आ ही जाना चाहिये था फिर भी हम लोग उसका समाचार जानने के लिये कई दिन तक नित्य सुबह अखबार की प्रतीक्षा करते रहते।

अक्टूबर के अन्त में २८-३० तारीख होगी, दिल्ली में पिछली रात संध्या समय कैलाशपति के गिरफ्तार हो जाने का समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। उन दिनों कैलाशपति दिल्ली में कोई विशेष काम नहीं कर रहा था। हां, आज़ाद का उससे अजमेर

में एक मनी एक्शन (रुपये के लिये डकैती) की सम्भावना बतायी थी, जिसके लिये वह एक-दो बार वहा गया भी था और मदनगोपाल को वहा देखभाल के लिये छोड आया था। दिल्ली में उसके विशेष आर्थिक कठिनाई में होने का भी कारण नहीं था। कैलाशपति की गिरफ्तारी चूड़ी वालों के बाजार में अपने मकान की गली में ही हुई थी। गिरफ्तारी के समय उसके पास रिवाल्वर भी था परन्तु उसने अपने बचाव या पकड़ने वालों पर चोट करने का कोई प्रयत्न नही किया। यह समाचार सुन कर आज़ाद ने बड़ी निराशा से कहा "यह साले ठडी भी गये।" ठंडीप्रसाद कैलाशपति का उपनाम था।

कैलाशपति की गिरफ्तारी के समय उसके चुपचाप गिरफ्तार हो जाने से तो निराशा हुई ही थी परन्तु मैने भैया से यह भी कहा कि मुझे तो उसके मुखबिर बन जाने की भी आशका है। भैया को ऐसा लगा कि यह मैं कैलाशपति के प्रति व्यक्तिगत विरक्ति के कारण कह रहा हूँ। मैने अपनी बात स्पष्ट करके कहा कि यदि कैलाशपति बरस भर पहले गिरफ्तार हो गया होता तो मुझे ऐसी आशका न होती परन्तु पिछले दिनों उसमें मुझे एक ग्लानि उत्पन्न करने वाली विलासिता-सी दिखाई देती रही थी। आजाद इससे क्या समझते ? कैलाशपति वगैरह न भी तो आजाद से दिल्ली बम फैक्टरी के दिनों में मेरी विलासिता और फिजूलखर्ची की शिकायत की थी। यह चर्चा मैं पहले भी कर चुका हूँ। वह विलासिता थी, लगातार आठ-दस घण्टे पिक्रिक एसिड बनाते समय, उसकी विषैली गैस से सिरदर्द हो जाने पर घण्टे भर खुले टांग में घूम लेना और फिर किसी रेस्टोरा में जाकर आइसक्रीम खा लेना। वास्तव में विलासिता किसी वस्तु या व्यवहार में नही, दृष्टिकोण में ही होती है।

बहुत ही जल्दी, पाचवें ही दिन दिल्ली में धन्वन्तरी की भी गिरफ्तारी का समाचार मिला। धन्वन्तरी सुखदेवराज के साथ टांगे पर बैठा चादनी चौक से जा रहा था। पुलिस उस पहचान कर पीछा करती आ रही थी। अपने लिये उपयुक्त स्थान देख कर पुलिस ने उसे घेर लिया और 'पकडो ! पकडो' का शोर मचा दिया। धन्वन्तरी ने रिवाल्वर निकाल कर पुलिस पर गोली चलायी। पुलिस के आदमी को चोट भी आयी। धन्वन्तरी दस-पन्द्रह कदम भागा भी परन्तु पकडो-पकडो के शोर से चाँदनी चौक में लाठी लेकर गश्त करते रहने वाले एक सिपाही ने उसे भागते देख कर उस पर लाठी का भरपूर वार कर दिया। धन्वन्तरी गिर कर पुलिस के काबू आ गया। सुखदेवराज ने भी यदि पुलिस पर गोली चलायी होती और दोनो साथ मिल कर लडे होते तो क्या होता, यह उस समय हमें खयाल नहीं आया। उस समय तक साथी को छोड अपने प्राण बचाने के लिये भाग जाने की यह सुखदेवराज की दूसरी हरकत थी।

कैलाशपति की गिरफ्तारी के सप्ताह भर में बाबूराम सावुर्नी, खयालीराम गुप्त,

गिरवरसिंह, विमल प्रसाद जैन आदि की गिरफ्तारियां शुरू हो गयी। दिल्ली में तो हम लोगों के लिये स्थिति खतरनाक हो गयी, दूसरी जगह भी इसका प्रभाव अच्छा नही पड़ रहा था। आज़ाद ने मुझे परामर्श दिया कि मैं कानपुर आकर ही रहूँ और अपनी स्वतंत्र जगह बना लूँ तो अच्छा हो। कानपुर में उस समय तक मेरे अपने कोई सूत्र नहीं थे। भैया ने कुछ दिन के लिये मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' के यहां मेरे और प्रकाशवती के लिये प्रबन्ध कर दिया। मुंशीराम जी उन दिनों कानपुर में गंगा किनारे परमट घाट पर रहते थे और डी० ए० वी० कालेज में हिन्दी के अध्यापक थे। अब भी वे डी० ए० वी० कालेज में ही हैं। सब ओर धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होते समय मुंशीराम जी ने खूब जान-बूझ कर हमें शरण दी थी, कि हम लोग कौन हैं और हमें शरण देने का क्या परिणाम हो सकता है।

मुंशीराम जी का मकान परमट घाट के सिरे पर ठीक सड़क पर ही था इसलिये मैं दूसरा प्रबन्ध करने की चिन्ता में था। कानपुर के गवर्नमेंट लेदर वर्किंग स्कूल का पता लेकर चौधरी रामधनसिंह से मिलने पहुँचा। रामधनसिंह बोर्डिंग में रहते थे परन्तु हमारी सहायता करने के लिये उन्होंने दो ही दिन में चुन्नीगंज के हाते में दूसरी मंजिल पर एक मकान ढूंढ लिया और हम लोग वहां चले गये।

कैलाशपति के गिरफ्तार हो जाने से अजमेर में डकैती नहीं हो सकी। आज़ाद ने कई दिन बल्कि दो-तीन मास से वीरभद्र को आर्थिक समस्या का उपाय करने के लिये एक डकैती की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सौंपी हुई थी। आर्थिक कठिनाई हम लोगों को बनी ही रहती थी। व्यापक सार्वजनिक आधार न होने के कारण कांग्रेस या कम्युनिस्ट पार्टी की तरह धन संग्रह किया नहीं जा सकता था। राष्ट्रीय भावना रखने वाले ऐसे लोग जो सौ-दो सौ रुपया दे सकने की स्थिति में थे, उन पर गांधी जी के हमें भटके हुए देशभक्त बता देने का भी प्रभाव था। ऐसे लोग हमें जांबाज़ देशभक्त समझ कर हमारे दर्शन तो करना चाहते थे परन्तु हमें आर्थिक सहायता देना उचित नहीं समझते थे। इसमें खतरा तो था ही तिस पर गांधी जी भी क्रान्तिकारियों को सहायता देने का निषेध करते थे। ऐसे लोग सहायता देने समय हमारी व्यक्तिगत आवश्यकताओं का ही ध्यान में रखते थे। वे देशभक्तों की सहायता तो करना चाहते थे परन्तु सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन की नहीं। ऐसी मनोवृत्ति का बहुत अच्छा उदाहरण बाबू (राजर्षि) पुरुषोत्तमदास जी टंडन का व्यवहार था। बात साण्डर्स वध के बाद दिसम्बर १६२८ की है।

साण्डर्स वध के बाद दल के लोगों को लाहौर से निकाल ले जाने आदि के लिए रुपये की जरूरत थी। पुरुषोत्तमदास जी टंडन उन दिनों पंजाब नेशनल बैंक, लाहौर के मैनेजर थे। वेतन शायद आठ सौ रुपये मासिक था जो रुपये के उस समय के मूल्य

ये विचार से आज (१९५५ में) तीन-साढ़े तीन हजार रुपया होना चाहिये। टंडन जी लाला लाजपतराय जी की कोठी के बगल की वाटो में एक ही हाते में रहते थे। उसी हाते में द्वारकादास पुस्तकालय था। कानपुर के प्रसिद्ध मजदूर नेता राजाराम जी शास्त्री द्वारकादास पुस्तकालय के लाइब्रेरियन थे। आजाद और शास्त्रीजी का बनारस से पुराना परिचय था। *शास्त्री जी, भगतसिंह, सुखदेव, मुझे और बहुत से लोगों को भी* जानते थे। आज़ाद ने शास्त्री जी से कह कर टंडन जी से मिलने का समय नियत कर लिया था। टंडन जी ने कोई भय या झिझक न प्रकट की थी। आज़ाद आये तो उन्होंने आजाद की पीठ पर हाथ फेर कर कहा, "तुम्हारे ढंग और सिद्धान्त का समर्थन तो हम नहीं कर सकते परन्तु तुम देशभक्त और शूरवीर जरूर हो।"

आजाद के लिये किसी से कुछ मांगना बहुत ही कठिन काम था। फिर भी विवशता में आर्थिक सहायता की बात कही। टंडन जी ने उसमें भी संकोच नहीं किया। तुरन्त बिटिया को बुलाया और दस रुपया ला देने के लिये कह दिया। यह तो हो ही नहीं सकता था कि ऐसी परिस्थिति में आजाद की आंखों में सुर्ख डोरे न फिर गये हों। इस घटना की चर्चा करते समय ही उन्हें क्रोध आ जाता था पर टंडन जी के प्रति आदर और शिष्टाचार के कारण गम खा जाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या था? इस उल्लेख का अभिप्राय यह है कि टंडन जी का जैसा त्यागी जीवन रहा है, उसमें कृपणता की बात मानी नहीं जा सकती। उस समय वे काफी समर्थ भी थे। उनके विचार में आजाद की आवश्यकता इससे अधिक और क्या होती? ऐसे ही अनुभवों के कारण आज़ाद या हम लोग राजनैतिक डकैती के लिये विवश हो जाते थे।

खास कर १९३० के अन्त में, लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेंस द्वारा सरकार से समझौते की बात चल रही थी। अंग्रेज सरकार ने गोलमेज कान्फ्रेंस में कांग्रेस को भी निमन्त्रण दिया था और ख्याल था कि इस बातचीत से सन्तोषजनक स्वराज्य की रूपरेखा निकल आयेगी। ऐसी अवस्था में कांग्रेसी राष्ट्रीय भावना रखने वाले लोग क्रान्तिकारियों को सहायता देकर व्यर्थ का व्याघात खड़ा करने में भला क्यों सहयोग देते?

कानपुर में धन कार्य

दल विकट आर्थिक कठिनाई में था। आजाद बार-बार वीरभद्र से ही 'मनी एक्शन' (धन कार्य) का प्रबन्ध करने के लिये कह रहे थे। हम लोग डकैती शब्द *पसन्द नहीं करते थे। मजबूरी हो जाने पर धन के लिये वैसा काम करना पड़ता तो* उसे मनी ऐक्शन या धन कार्य ही कहते थे। इस काम का बोझ वीरभद्र पर डालने का एक कारण यह भी था कि आजाद आजमाना चाहते थे कि वीरभद्र जान बचाने

की ही फिक्र में तो नहीं। मेरे मामले में तो उन्हे वीरभद्र पर सन्देह था ही। वीरभद्र जिम्मेदारी डाली जाने पर हामी तो भर लेना परन्तु ठीक समय आने पर कोई अलघ्य बाधा बनाकर टाल जाता या कांग्रेसी मामले में गिरफ्तार होकर हवालात पहुँच जाता और कुछ दिन बाद अन्य कांग्रेसियों के साथ ही छूट आता। यह निश्चय हो जाने पर कि वीरभद्र सचमुच दल को धोखा दे रहा है, आज़ाद उसे दण्ड देना चाहते थे। ऐसा ही सन्देह दल के एक और पुराने साथी सतगुरदयाल अवस्थी के प्रति भी उन्हें हो रहा था। शायद पिछले (मेरे) उदाहरण के कारण इस बार आज़ाद इन लोगों को अपनी सफाई का अवसर जरूर देना चाहते थे। इस समय लाहौर षड्यंत्र का फैसला सुना दिया गया था। भगतसिंह सुखदेव और राजगुरु को फांसी का दण्ड सुनाया गया था पर दो एक आदमी बरी भी हो गये थे। इनमें कानपुर के सुरेन्द्र पांडे भी थे। सुरेन्द्र पांडे लौट कर आज़ाद से मिले और फिर दल का काम करने की इच्छा प्रकट की। सुरेन्द्र पांडे उत्तर प्रदेश, खासकर कानपुर में दल का काम आरम्भ होने के समय से साथ थे। इसके अलावा डेढ़ बरस सब साथियों के साथ जेल में सामूहिक अध्ययन और विचार करके लौटे थे। उनका सहयोग और परामर्श उस समय दल के लिये उपयोगी जान पड़ा।

आज़ाद ने वीरभद्र तिवारी और सतगुरदयाल अवस्थी दोनों को ही सदेश भेजा कि वे आकर अपने व्यवहार की सफाई दें। इस समय कोई केन्द्रीय समिति तो थी नहीं। सम्भवत सुरेन्द्र और आज़ाद के ही सामने यह बात हुई होगी। आज़ाद के सदेश के उत्तर में अवस्थी ने पत्र लिख कर उत्तर दिया कि उस पर किये गये सदेह झूठे और निराधार है पर मिलने नहीं आया। वीरभद्र स्वयं आया। आज़ाद ने उससे मुझे भेद मिलने के मामले में भी प्रश्न किया। मैंने तो इस विषय में कभी उसका नाम नहीं लिया था परन्तु वह नेकनीयती से भेद दे देने की बात कबूल गया। दूसरे अवसरों पर जान बचाने के लिये शिथिलता दिखाने के आरोप के उत्तर में उसने विश्वास दिलाया कि भविष्य में ऐसी शिकायत का मौका नहीं आयगा।

वीरभद्र ने कानपुर, नयागंज में, जहां दालमण्डी है, चमड़े के एक व्यापारी खोजे की गद्दी पर धन कार्य की योजना बनायी। बताया कि उस व्यापारी के यहां तिजोरी में ४०-५० हजार से लेकर लाख तक नकद रहता है। इस काम के लिये दिन और सूर्यास्त का समय भी निश्चित हो गया। भैया ने वीरभद्र को चेतावनी दी, "देखो, ठीक समय पर कोई अड़गा न बता देना या जेल में न फिसल जाना।" फिर वही बात हुई। न जाने कैसे वीरभद्र फिर सत्याग्रह में गिरफ्तार हो गया।

आज़ाद ने निश्चय कर लिया था कि इस बार काम टलेगा नहीं। जगह देख ली

गयी। प्रबन्ध ऐसा किया गया था कि वीरभद्र न हो तो भी काम न रुके। आजाद निश्चित समय साथियों को साइकलों पर लेकर खोजे के यहाँ पहुँच गये। तीनों साइकलें नीचे जीने के दरवाजे पर छोड़ दी और दो साथी पिस्तौल लिये नीचे रहे कि इस बीच ऊपर कोई न जा पावे। ऊपर आजाद, सुरेन्द्र पांडे और शालिग्राम को लेकर गये।

गद्दी पर तोंदियल खोजे के अतिरिक्त दो मुनीम थे। आजाद ने पिस्तौल दिखा कर तिजोरी की चाबी मांगी। मालिक ने चिल्लाने के लिये मुंह खोल कर लम्बी सांस भरी। आजाद का थप्पड़ उसके फूले हुये गाल पर कुछ ज्यादा जोर से ही पड़ गया और डांट कर उन्होंने कहा "चुप!" पुकार की चिल्लाहट खोजे के गले में ही रह गयी और मुंह भी खुला ही रह गया।

मुनीमों ने सामने तीन पिस्तौल देख कर तिजोरी की चाबी तुरन्त निकाल दी। तिजोरी खोल कर जो कुछ था एक थैले में समेट लिया गया। मुनीम शान्त रहे। चलते समय टेलीफोन तोड़ दिया गया। सब कांड समाप्त हो जाने पर भी खोजा मालिक की सलवटें पड़ी हुई तोंद पर रखे गोल-गोल चेहरे का मुंह खुला ही रहा और वह वैसे ही निश्चल बना रहा। आशंका हुई बेहोश हो गया होगा पर दूसरे दिन समाचार पत्रों से पता चला कि उसके होश फिर लौटे ही नहीं। इस कांड में निराशाजनक बात यह रही कि अपनी जगह लौट आने पर थैले में से कुल ग्यारह सौ रुपया ही निकला आजाद को तो इस बात के लिये भी वीरभद्र पर ही क्रोध आया कि क्या बेकार-सी जगह उसने इस काम के लिये बता दी थी परन्तु समाचार पत्रों का भी कहना था कि संयोगवश उसी दिन दोपहर बाद खोजे ने लगभग एक लाख रुपया बैंक भिजवा दिया था। अखबारों की टीका टिप्पणी में इस काम को बहुत ही दुस्साहसिक और चातुर्यपूर्ण बताया गया था क्योंकि खोजे की गद्दी के पिछवाड़े कुछ ही कदम पर उस समय नई सड़क पर बड़ी कोतवाली थी और नयागंज में तीन मकानों के बाद एक छोटी पुलिस चौकी थी। जो भी हो, इस घटना से भैया को विश्वास हो गया कि वीरभद्र दगा का धोखा देता है।

शहीद शालिग्राम

कैलाशपति की गिरफ्तारी के बाद भी आजाद दिल्ली को बिलकुल छोड़ देने के लिये तैयार नही थे। उन्होंने दिल्ली से प्रोफेसर नन्दकिशोर निगम को सलाह करने के लिये बुलाया था। ऐसी बातचीत के समय आजाद किसी समझदार आदमी को साथ रखते ही थे। इन दिनों सुरेन्द्र पांडे से ही अधिक परामर्श किया करते थे। सुरेन्द्र पांडे पुलिस की नजरों से बचे रहने के लिये अपना मकान छोड़ कर कानपुर में गंगा के किनारे ऊपर की ओर, नवाबगंज में एक बगिया में किराये पर लिये हुए छोटे से मकान में

शालिग्राम शुक्ल के साथ रहते थे।

शालिग्राम शुक्ल उससे कुछ दिन पहले यूथगार्ड में खूब भाग लेता रहा था। कानपुर में यूथगार्ड ऐसा ही संगठन था जैसी लाहौर में नौजवान भारत सभा थी। यूथगार्ड के लोग वर्दी पहन कर कवायद वगैरा भी करते थे और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते थे। किसी एक अवसर पर पुलिस वालों के हस्तक्षेप करने पर शुक्ल और उसके एक साथी ने पुलिस वालों को पीट दिया था। पुलिस शुक्ल को गिरफ्तार करना चाहती थी। शुक्ल दल के छोटे-मोटे कामों में पहले भी सहयोग देता ही था। अब वह पुलिस की नजरों से बच कर बिलकुल दल का ही काम करने लग गया था और नवाबगंज में सुरेन्द्र पाडे के साथ ही रहता था।

आज़ाद ने निगम और पाडे से मिलने का समय तड़के ६ बजे और स्थान डी० ए० वी० कॉलिज के सामने ग्रीन पार्क में नियत किया था। पाडे को निश्चित स्थान पर ले आने का काम शालिग्राम शुक्ल के जिम्मे था। घड़ी इन लोगों के पास नहीं थी। समय से पिछड़ न जाने के ख्याल से यह लोग काफी तड़के, अंधेरा रहते चल दिये थे। ग्वालटोली की हालत उन दिनों उजाड़-सी थी। सड़क पर खूब गहरे खाचे पड़े रहते थे। पांडे और शुक्ल साइकलों पर आ रहे थे। एक गहरे खाचे में पाडे की साइकल का अगला पहिया पड़ने से ज़ोर का झटका लगा। हैंडल पर रखा साइकल का पम्प गिर कर पहिये की सीखों में अड़ गया। कई सीखें टूट गयीं और पहिया टेढ़ा हो गया। यह लोग ग्रीन पार्क तक पैदल ही पहुँचे।

यह लोग ग्रीन पार्क पहुँचे तो अभी ६ बजने में काफी समय जान पड़ा। शालिग्राम ने पाडे से कहा, "हो सकता है वहीं आगे भी जाना पड़े। डी० ए० वी० कॉलिज के बोर्डिंग में जान-पहचान वाले लड़के हैं। तुम यहीं ही ठहरो। मैं टूटी साइकल बदलवा कर दूसरी लाता हूं।" पाडे को ग्रीन पार्क के परमट की ओर के कोने पर छोड़ कर शुक्ल स्वयं टूटी साइकल ले कर बोर्डिंग के दरवाजे की ओर चल दिया। शुक्ल कॉलिज की इमारत के अन्त में बोर्डिंग के फाटक के पास पहुंचा ही था कि पाडे को उस ओर से बिजली की टार्च से फेंकी रोशनी दिखाई दी और फिर शुक्ल की पुकार सुनाई दी, "Beware ! Beware !" (सावधान ! सावधान !) इसी समय एक पिस्तौल की गोली चली और फिर तुरत ही राइफल से गोली चलने का धमाका।

हुआ यह कि बोर्डिंग के फाटक के सामने ग्रीन पार्क के कोने पर आर्म्ड पुलिस फोर्स का दफ्तर था जहां सशस्त्र गोरा सिपाही पहरे पर तैनात रहता था। जिस समय शुक्ल वहां पहुँचा, जाने किस कारण वहां खुफिया पुलिस का इंस्पेक्टर शम्भूनाथ दो-तीन सिपाहियों के साथ मौजूद था। इन लोगों ने शुक्ल पर रोशनी फेंक कर उसे पहचान

लिया। इंस्पेक्टर उसे पकड़ना चाहता था। शुक्ल ने आगे भाग जाने की कोशिश की पर साइकल टूटी होने के कारण विवश था। हाथापाई हुई। एक कान्स्टेबल या इंस्पेक्टर ने छोटा डंडा शालिग्राम के सिर में मार दिया। इसी समय शालिग्राम ने पुकार कर चेतावनी दी थी क्योंकि एक ओर पांडे था और दूसरी ओर से आजाद के आने की भी आशा थी। घिर जाने-पर शुक्ल ने जेब से पिस्तौल निकालकर सामना किया। उसकी गोली एक सिपाही की जांघ में लगी। इंस्पेक्टर और तीनों सिपाही शरण के लिये आग्जिलियरी फोर्स के दफ्तर में घुस गये। शुक्ल साइकल छोड़ कर भागने लगा। यह देख कर ड्यूटी पर खड़े गोरे सिपाही ने शुक्ल की पीठ में राइफल से गोली मार दी। शुक्ल सड़क पर गिर पड़ा।

आग्जिलियरी फोर्स के दफ्तर में जाकर इंस्पेक्टर ने फिर बाहर आने से पहले कोतवाली में फोन कर और सहायता के लिये दूसरे सशस्त्र सिपाहियों को बुला लिया। इस काम में दस-पन्द्रह मिनिट लगे ही होंगे। शुक्ल पीठ में राइफल की गोली से घायल होकर आग्जिलियरी फार्म के दफ्तर के सामने पड़ा था। एक ओर उसकी साइकल पड़ी थी। इसी बीच आजाद साइकल पर उस स्थान से ग्रीन पार्क के परमट की ओर वाले कोने पर पहुँचने के लिये गुजरे। उन्होंने एक जख्मी नौजवान और साइकल सड़क पर इधर-उधर पड़ी हुई तो देखी पर यह अनुमान न कर सके कि वह कोई अपना आदमी होगा। ग्रीन पार्क के कोने पर किसी को न पाकर वे परमट घाट पर पंडित मुंशीराम जी के मकान पर पहुँचे। सुरेन्द्र पांडे शुक्ल की सावधानी की ललकार और बाद में पिस्तौल और राइफल की आवाजें सुनकर अपनी जगह पर खड़े रहना व्यर्थ और आपद्जनक समझ वहाँ से मुंशीराम जी के यहाँ चला गया था। पांडे की बात सुनकर आजाद को अनुमान हो गया कि आग्जिलियरी फोर्स के दरवाजे पर गिरा पड़ा आदमी शालिग्राम शुक्ल ही था। आजाद और पांडे का अनुमान था कि शुक्ल राइफल की गोली से मारा गया है। खैर, अब क्या हो सकता था।

इतने बात करते-करते फिर बोर्डिंग के फाटक की ओर से गोलियां चलने और चिल्लाने की आवाजें सुनाई दी और फिर बिलकुल सन्नाटा छा गया। जिस आजाद बोर्डिंग के फाटक के सामने से गुजरे थे, शालिग्राम घायल तो था परन्तु अभी सचेत था। उसने आजाद को जाते भी देखा होगा परन्तु उसने सहायता के लिये चिल्लाया या पुकारा नहीं। दम साधे रहा कि आजाद के प्रति किसी को सन्देह न हो लेकिन चार-पांच मिनिट बाद जब सशस्त्र सिपाहियों के आ जाने पर पुलिस उसे मरा समझ कर उठाने के लिये उसके समीप आयी तो उसने फिर तीन-चार गोलियां चलायी और दो और सिपाहियों को घायल कर दिया। सिपाही चिल्लाकर पीछे हट गये और कुछ

दूर से उस पर गोलियां चलाने लगे। उसके बिलकुल निश्चल हो जाने पर ही पुलिस उसका शरीर एक गाड़ी में उठा कर ले गयी। शालिग्राम शुक्ल का नाम किसी षड्यंत्र केस में नहीं आया, कभी उसके नाम की जय नहीं पुकारी गयी परन्तु धैर्य और वीरता में वह हमारे किसी भी वीर साथी से कम नहीं था।

बरास में प्रकाशवती को आराम और सुविधा तो सब थी परन्तु संतोष नहीं था। वे काम में सहयोग देने के लिये हम लोगों के साथ ही रहना चाहती थीं। मैं एक सुरक्षित स्थान जमाने की चिन्ता में था। कुछ साथी इलाहाबाद में रहते थे। उन लोगों से सलाह-मशविरा करने आज़ाद भैया के साथ इलाहाबाद गया था। इलाहाबाद में अचानक बलदेव जी चौबे से मुलाकात हो गयी।

बलदेव जी से परिचय लाहौर से ही था। वे लाला लाजपतराय जी के 'लोक-सेवक मंडल' (सर्वेन्ट्स आफ पीपुल्स सोसायटी) के सदस्य थे। आजीवन देशसेवा का व्रत लिये हुए। परम गांधीवादी और बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन के परम अनुयायी।

बलदेव चौबे इलाहाबाद में गंगापार, टंडन जी के निर्देश में हिन्दी विद्यापीठ चला रहे थे। यहाँ ग्रामीण विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा और भोजन दिया जाता था। विद्यापीठ एक प्राचीन मन्दिर और उसके साथ बने बड़े पक्के मकान में थी। आस-पास मील डेढ़ मील तक कोई बस्ती नहीं, घोर सुनसान। चौबे जी आत्मीयता से मिले। वे मेरे फरार होने या मुकद्दमे की बाबत सब कुछ जानते थे। उनसे पूछा, "यदि कभी जरूरत पड़ जाय तो आप के यहाँ शरण मिल सकेगी?"

"अरे वाह!" चौबे जी ने उत्तर दिया, "घर तुम्हारा है। हमसे जो बन पड़े। तुम जान दे रहे हो अपनी!"

यह बात इसलिये कह रहा हूँ कि यद्यपि गांधी जी क्रान्तिकारियों की घोर निन्दा करते रहते थे परन्तु गांधीवादियों के मन में, गांधी जी द्वारा हम लोगों के कामों की निन्दा के बावजूद, हम लोगों के प्रति सदा ही एक अनुराग और आदर पाया। इलाहाबाद, मेरठ, दिल्ली और लाहौर के गांधीआश्रम या खद्दरभंडार हम लोगों के संदेश भेजने और पाने के नियमित अड्डे थे। विशेषकर उत्तर प्रान्त में शहीद यतीन्द्र के भाई प्रभास बैनर्जी आदि बंधुओं के सहयोग के कारण। लाहौर के खद्दर भंडार में जसवन्तसिंह हमारा कॉलिज का सहपाठी ही था। जसवन्तसिंह को हम लोगों की गतिविधि बहुत कुछ मालूम रहती थी। पूर्णरूप से तो वह हम लोगों में मिल नहीं सका उसका कारण यही था कि उसकी दृष्टि में हम लोग काफी चतुर और बुद्धिमान नहीं थे। परन्तु सहायता उससे मिलती ही रहती थी।

अस्तु, ■ और प्रकाशवती कुछ दिन के लिये बलदेव चौबे जी की विद्यापीठ में जा

टिके। जाड़े के दिन थे इसलिये पुराने ढंग की मोटी दीवार और बिना रोशनदान की कोठड़ी में सोने में भी परेशानी नहीं होती थी। विद्यापीठ क्योंकि दान के आधार पर चल रही थी इसलिये विद्यार्थियों को नाश्ते में प्रायः ही बाजरे का दलिया, दोपहर के आहार में बाजरे की रोटी और एक दाल या साग मिलता था। चौबे जी स्वयं और उनकी दस-बारह वर्ष की पुत्री माधवी भी यही खाते थे परन्तु हम दोनों के लिये चौबे जी कुछ मेवे और फल ले आते थे। इससे हमें बहुत संकोच अनुभव होता था।

मैं प्रायः ही इलाहाबाद नगर में साथियों से मिलने-जुलने और काम के सम्बन्ध में रात नौ-दस बजे लौटता था। उस समय यमुना के घाट पर नाव नहीं मिल सकती थी इसलिये यमुना के पुल से होकर लौटने में तीन-साढ़े तीन मील का चक्कर पड़ जाता था। साइकिल थी इसलिये कोई कष्ट नहीं जान पड़ता था। एक रात मैं लौटा तो समीप की बस्ती से भय और आशंका का हल्ला सुनाई दे रहा था, जैसे डाका पड़ रहा हो। विद्यापीठ पहुँच कर चौबे जी को बहुत परेशान पाया। कारण यह था कि पड़ोस के किसी गांव में एक भैंसा पागल हो गया था और सड़क पर आने-जाने लोगों पर आक्रमण कर रहा था। चौबे जी को भय था कि मैं अंधेरे में भैंसे की झपट में न आ जाऊँ। गांव भी इस उत्पात से सभी आशंकित थे। मैंने सुझाया कि ऐसी बात है तो उस भैंसे को गोली मार देनी चाहिये।

चौबे जी ने सोच कर कहा, "पागल भैंसे को गोली मारने के लिये जाने में भी तो खतरा है।"

मैंने स्वीकार किया, "खतरा तो जरूर है पर यों भी तो बीसियों जानों को खतरा है।" भैंसा दो-चार झोपड़ियाँ गिरा भी चुका था। भैंसे को गोली मारने के लिये जान पर लोगों का ध्यान आकर्षित होने की आशंका तो थी पर उस समय यह कर्त्तव्य जान पड़ा। चौबे जी से बात की, मेरे पास पिस्तौल तो है परन्तु पिस्तौल से गोली मारने के लिये भैंसे के बहुत समीप जाना पड़ेगा और पिस्तौल की गोली भैंसे का क्या बिगाड़ेगी? मामूली-सा घाव हो जायगा भैंसा और बिगड़ेगा।"

"बन्दूक तो है पर बहुत दिन से ऐसे ही रखी है।" बहुत सोच कर चौबे जी ने कहा।

मैंने आग्रह किया, "कहाँ है, बन्दूक देखें तो। कारतूस भी हैं?"

चौबे जी ने उत्तर दिया, "भाई यह सब क्या होता है सो मालूम नहीं। देख लो!"

चौबे जी दिया लेकर एक अंधेरी कोठड़ी से लाल कपड़े की लम्बी थैली में लिपटी बंदूक उठा लाये। उसे खोल कर देखा तो जंगाल लगी हुई एक नाली की गज से बारूद भरने वाली बंदूक थी। शायद मराठों के जमाने की। गोली-बारूद कुछ नहीं। साथ भरने का गज जरूर था। मन में बहुत खेद हुआ। यह थी अंग्रेजी राज की नीति।

अपने प्रति विद्रोह हो सकने की कोई भी सम्भावना न रहने देने के लिये उस सरकार ने इस देश के लोगों को कितना निस्सहाय बना दिया था और गांधी जी राष्ट्र की उसी निस्सहाय अवस्था को आत्मिक शक्ति का नाम दे रहे थे। यही बात चौबे जी से कह कर मैंने कहा, "तो फिर चौबे जी, अहिंसा के आत्मिक बल से ही उस भैंसे का हृदय परिवर्तन किया जाये।" चौबे जी ने विश्वास की शक्ति के प्रति मेरे अविश्वास से दुखी होकर एक गहरी सांस से उत्तर दिया, "भाई विश्वास की बात है।"

लैमिंगटन रोड गोलीकांड

प्रथम लाहौर षड्यंत्र का मामला पंजाब के गवर्नर की आज्ञा से एक विशेष अदालत को सौंप दिया गया था। अभिप्राय था कि छोटी अदालत और सेशन अदालत की कार्यवाही में अधिक समय न लगे। इस विशेष अदालत को सेशन अदालत के अधिकार अर्थात् फाँसी तक की सजा देने तक का अधिकार दे दिया गया था। इस अदालत ने १९३० अक्तूबर मास के अन्त में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की और शेष बहुत से साथियों शिव वर्मा, जयदेव कपूर, महावीरसिंह आदि को आजन्म काले पानी और बटुकेश्वर दत्त को चौदह वर्ष की सजा सुना दी थी। हम लोग इस अवसर पर कुछ विरोध प्रकट करना चाहते थे परन्तु पंजाब में दूसरे षड्यंत्र के साथियों के भी गिरफ्तार हो जाने पर स्थिति बहुत कमजोर हो चुकी थी। वही बात उत्तर प्रदेश में भी थी। आजाद का विचार था पंजाब और उत्तर प्रदेश में पुलिस के बहुत चौकस हो जाने के कारण दक्षिण में ही कुछ क्यों न किया जाये। उससे आन्दोलन की व्यापकता भी बढ़ेगी।

गदर पार्टी के समय के एक बहुत पुराने क्रांतिकारी साथी पृथ्वीसिंह आजन्म कारावास की सजा पाकर मद्रास जेल में थे। उन्हें अमरावती जेल में बदला जा रहा था। लगभग अमानुषिक साहस से वे बेड़ियाँ पहने ही चलती गाड़ी से कूद गये थे। कूद कर बच गये थे और बरसों से भेस बदले गुजरात में स्वामीराव के नाम से अखाड़े वगैरह बना कर युवकों में स्वास्थ्य-सुधार, व्यायाम और राष्ट्रीय भावना का प्रचार भी कर रहे थे परन्तु ऐसे ढंग से कि पुलिस की खटके नहीं। पृथ्वीसिंह के गुजरात में होने की बाबत दल को मालूम था। धन्वन्तरी उनसे मिल भी चुका था। उनके अनुभव से लाभ उठाने के लिये और दल के काम में उनका सहयोग पाने के लिये उनसे अनुरोध किया गया। धन्वन्तरी स्वामीराव को इलाहाबाद ले आये। वहाँ आजाद से उनकी मुलाकात हुई। स्वामीराव ने गुजरात और महाराष्ट्र में काम चालू करने की जिम्मेवारी ले ली। कुछ मास बीत चुके थे पर अभी वहाँ कुछ ही नहीं पाया था।

दुर्गा भाभी कानपुर में थी। दल की निष्क्रियता उन्हें अखर रही थी। वे काम में

मश्रिय याग दना चाहती थी। उस समय उत्तर भारत मे पर्दे का रिवाज आज की अपेक्षा रही अधिक और बडा था। किसी स्त्री का घूम-फिर कर काम करना ध्यान आकर्षित किये बिना न रहता। लोग ऐसी महिला के मायके और ससुराल दोनों की ही खोज किये बिना न रह सकते थे। गुजरात और महाराष्ट्र के सयुक्त केन्द्र बम्बई मे पर्दे का रिवाज तब भी अधिक न था। आजाद ने यही उचित समझा कि भाभी बम्बई जाकर स्वामीराव और उनके दूसरे साथियो को काम बढाने की प्रेरणा और सहयोग दें।

दुर्गा भाभी के बम्बई पहुँचने के बाद तुरन्त ही एक बडा काड करने की बात सोची गयी। यह काड था लाहौर षड्यत्र मे लोगों को दी गयी सजाओं के विरोध मे बम्बई के गवर्नर हेली को गोली मारने का निश्चय। हेली पजाब मे गवर्नरी के समय भी बहुत दमन कर चुका था। इसके लिए योजना बनाने का काम स्वय स्वामीराव और स्थानीय साथियो के हाथ मे था।

दुर्गा भाभी के खिन्न अवस्था म कानपुर लौटने पर इस योजना का ब्यौरा सुन कर हम लोगो को आश्चर्य ही हुआ था कि सफलता की आशा कैसे कर ली गयी थी? बम्बई गवर्नमेंट हाउस के भीतर जाकर गवर्नर को गोली मारने का विचार था। गवर्नर सुबह आठ-नौ बजे नाश्ते के बाद बरामदे मे बैठ कर अखबार पढा करता था। निश्चय था कि दुर्गा भाभी पारसी लेडी के वेश मे, एक उधार मागी हुई मोटर गाडी मे गवर्नमेंट हाउस म चली जायेंगी। अपना काड गवर्नर के पास भेजेंगी। जब गवर्नर उन्हे मिलने के लिये बुलायेगा, वे उसे गोली मार देंगी।

प्रश्न उठा कि दुर्गा भाभी के साथ दूसरा कौन व्यक्ति जायेगा? दुर्गा भाभी ने कहा कि दूसरा आदमी स्वामीराव रहे। स्वामीराव का विचार था कि वे भाभी के साथ न जाकर रक्षा के लिये पीछे रह। जब भाभी और दूसरा साथी भागने लगे और पुलिस उनका पीछा करे तो वे उनकी रक्षा के लिये लडे। भाभी ने आग्रह किया, नहीं इसकी कोई जरूरत नही। स्वामीराव को साथ ही रहना चाहिय। अस्तु

विस्मय कि योजना बनाने वालो को यह भी मालूम न था कि किसी गवर्नमेंट हाउस मे हर एक गाडी को चले जाने की इजाजत नही होती थी। कई दिन पहले इजाजत मागी जाती थी और आवश्यक पूछताछ के बाद प्रार्थी को भीतर जाने की आज्ञा मिलती थी। दुर्गा भाभी योजना बनाने वालो के भरोसे निश्चित दिन की प्रतीक्षा करती रही। जब तारीखें टलने लगीं तो उन्होंने आपत्ति की। आखिर एक दिन निश्चय हो ही गया। स्वामीराव के साथी वैशम्पायन ने (विश्वनाथ गगाधर वैशम्पायन नही रघुनाथ वैशम्पायन) एक बडे सेठ स बात की और देशसेवा के काम के लिये मोटरगाडी माँग लाये। सधा हुआ मैकेनिक ड्राइवर बापटे गाडी चलाने के लिए बैठा। स्वामीराव ड्राइवर के साथ आगे थे। पीछे दुर्गा भाभी और सुखदेवराज भरे हुये पिस्तौल लेकर बैठे। गाडी गवर्नमेंट हाउस

की ओर चली गाड़ी भीतर कँस जाती इसलिये फाटक के सामने से निकल गयी। स्वामीराव के आदेश से दो-तीन बार ऐसे ही चक्कर काटे गये। उस दिन मालाबार हिल के एक चौराहे 'गीलबर्ती' पर गाड़ियों का चेकिंग भी हो रहा था। शायद लाइसेंसों की पड़ताल के लिये नम्बर नोट किये जा रहे थे। गाड़ी दो-तीन बार उसी चौक से गुज़र गयी और फिर स्वामीराव के आदेश से नीचे मैरीन ड्राइव, फोर्ट, कोलावा, भायखला, दादर, माहिम जाने कहाँ-कहाँ दिन भर घूमती रही। दुर्गा भाभी को ज़िद चढ़ी हुई थी कि काम उसी दिन पूरा हो। वे अगले दिन पर टाल देने के लिये तैयार नहीं थी।

गाड़ी को बम्बई की सड़कों पर घूमते-घूमते शाम का अँधेरा हो गया। गाड़ी लैमिंगटन रोड से जा रही थी और ग्राँट रोड लाँघना चाहती थी। वहाँ आमदरफ्त की निगरानी करने वाले पुलिस के सिपाही ने पहले ग्राँट रोड पर से जाने वाली गाड़ियों को राह देने के लिये लैमिंगटन रोड से आने-जाने वाली गाड़ियों को रोक दिया। स्वामीराव ने क्रोध से चौराहे के बीच खड़े पुलिस के सिपाही की ओर देख कर हुक्म दे दिया, "फायर (गोली दाग दो)!" दुर्गा भाभी और सुखदेवराज हैरान! वे स्वामीराव की ओर देख कर चुप रह गये।

अस्तु, गाड़ी को रास्ता मिला। गाड़ी लैमिंगटन रोड पुलिस स्टेशन से कुछ कदम आगे, जहाँ अब 'नाज' सिनेमा है, स्वामीराव की आज्ञा से खड़ी हो गयी। उन दिनों बम्बई की पुलिस में बहुत से गोरे सार्जेन्ट रहते थे। पुलिस स्टेशन से दो सार्जेन्ट अपनी स्त्रियों या प्रेमिकाओं की बाँहों में बाँह डाले सड़क के साथ की पटरी पर चले जा रहे थे। इनमें से एक जोड़ा गाड़ी की बगल समीप आ गया। स्वामीराव ने फिर आज्ञा दी, "शूट (गोली दागो)!" इस बार दुर्गा भाभी और सुखदेवराज ने गोली चला दी। सोचा होगा, गवर्नर न सही कोई अंग्रेज़ तो है। पिस्तौल की गोलियाँ गोरे सार्जेन्ट की जाँघ में और उसकी स्त्री की बाँह में लगीं। स्वामीराव की आज्ञा से मोटर दौड़ पड़ी।

ज़ख्मी हो जाने वाले जोड़े के पीछे आने वाले सार्जेन्ट ने समीप ही खड़ी एक मोटर लेकर गाड़ी का पीछा किया पर फौजी ड्राइवर गाड़ी को बचा ही ले गया। मोटर आधी रात तक इधर-उधर चक्कर काट कर दल के स्थान पर पहुँची। दुर्गा भाभी का चार वर्ष का पुत्र शची बम्बई में साथ ही था। दुर्गा भाभी ने शची को साथ लेकर बाबा सावरकर के मकान पर पहुँच कर अनुरोध किया, " दो-चार दिन में लौट कर आऊँगी, तब तक इसे रख लीजिये।" और यह लोग मोटर में कल्याण तक जा कर झाँसी को जाती गाड़ी में चढ़ गये।

अगले दिन पत्रों में गत सध्या का समाचार छपा। समाचार में यह भी था कि पुलिस को गोली मारने वाली एक महिला थी। बाबा सावरकर ने स्थिति भाँप कर

भाभी को अपने यहाँ रखना उचित न समझा और वैशम्पायन के यहाँ भिजवा दिया। दुर्गा भाभी कानपुर पहुँची तो इस स्वयं घटना के लिये बहुत खिन्न थी लेकिन उनके बम्बई से लौट आने से स्वामीराव की उलझन तो टल गयी।

इसके कुछ वर्ष बाद पृथ्वीसिंह गांधी जी से मिले और उन्हें अपना वास्तविक परिचय दिया। गांधी जी ने उन्हें पुलिस को आत्म-समर्पण करने की सलाह देकर यह आश्वासन भी दिया कि यदि वे सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग छोड़ कर गांधीवादी कार्यक्रम में सहयोग देने का निश्चय कर लें तो गांधी जी अपने प्रभाव से उन्हें सरकार से मुआफी दिलाने का भी यत्न करेंगे। पृथ्वीसिंह ने गांधी जी का परामर्श मान लिया। शायद इस निश्चय पर कि पृथ्वीसिंह गांधी जी के साथ गांधी आश्रम में ही रहेंगे सरकार ने उन्हें मुआफी दे दी।

पृथ्वीसिंह कई वर्ष गांधी आश्रम में रह कर गांधी जी के निर्देश में काम करते रहे। स्वराज्य के पश्चात् वे गांधी आश्रम छोड़ कर अपना पृथक् काम करने लगे। बाद में बम्बई में पृथ्वीसिंह से परिचय होने पर उन्होंने मुझे एक रोचक घटना सुनाई। गांधी जी ने पृथ्वीसिंह को उत्साहित किया था कि वे आपबीती लिखें और गांधी जी उस पुस्तक की भूमिका या परिचय लिखकर किसी प्रकाशक को पुस्तक प्रकाशित कर देने की सिफारिश कर देंगे। ऐसा होने से पुस्तक की पचास हजार या लाख प्रतियां बिक जाना कोई बड़ी बात न थी। पृथ्वीसिंह ने आपबीती लिखी पर उसे देखकर गांधी जी ने भूमिका या परिचय लिखना स्वीकार न किया। गांधी जी का प्रयोजन था कि पृथ्वीसिंह पश्चात्ताप की भावना से पुस्तक लिखें परन्तु पृथ्वीसिंह के मन में गांधी जी के वर्षों के सहवास से अपने पहले विश्वास के लिये पश्चात्ताप न हुआ था बल्कि इतने वर्ष गांधी जी के निर्देश में बिना लेन से कोई सतोष भी नहीं हुआ। उन दिनों वे गांधीवादी कांग्रेसी कार्यक्रम की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के ही कार्यक्रम से आकर्षित थे।

नवम्बर के महीने में चामत्कारिक शक्ति का वैज्ञानिक पदार्थ देने के लिये हंसराज वायरलैस द्वारा बतायी तारीख आ रही थी। भैया आजाद ने कहा, यह तारीख मत चूको, कराची हो ही आओ। मैं फिर कानपुर से कराची के लिये चला। इस बार शुरू में ही भटिण्डा से सम्मासट्टा के रास्ते गया। हंसराज पुरानी जगह अपने भाई ब्रह्मदेव के यहाँ ही था। उसने कहा कि चीज तैयार है, कल तुम्हें दे दूंगा। दूसरे दिन उसने मुझे कत्थई रंग के तरल पदार्थ से भरी एक छोटी पर चौड़ी बोतल दे दी। बोतल के शीशे के डाट पर मोम और कपड़ा लगाकर इसे सुरक्षित कर दिया गया था। साथ एक छोटी-सी शीशी भी थी। उसने बताया कि छोटी शीशी बोतल के साथ रखने से बोतल की शक्ति (किरणें) शांत रहेगी। छोटी शीशी बोतल से दो गज से अधिक दूर

ले जाने पर बोतल में पाच सौ गज दूर तक पहुचने वाली बिजली की लहरें उत्पन्न होने लगेगी। मैंने चाहा कि उसका परीक्षण उसी के सामने अपने हाथ में कर लूं पर हमराज ने आश्वासन दिलाया, 'विश्वास रखो, देहली में जैसे परीक्षण करते थे वैसे ही जब चाहा करके देख लेना। यहा मेरी भाभी और भाई के सामने कुछ करना ठीक नहीं।" मैं उसकी बात पर अविश्वास करके उसके विरुद्ध और कर भी क्या सकता था?

हमराज का दिया सामान लेकर मैं बहुत उत्साह से लौटा। किसी खतरे की आशंका न रहे इस विचार से कराची से समुद्र के रास्ते बम्बई होकर लौटने का निश्चय किया। अपने खयाल में यह लम्बा रास्ता इसलिये चुना था कि निरापद होगा पर यह मेरा अज्ञान ही था। दो दिन लो समुद्र में लग गये। जहाज में तीसरे दर्जे में डेक पर ही सफर कर रहा था। सहयात्रियों की बातचीत से पता लगा कि बम्बई में चुंगी पर जेबों और सामान की भयंकर तलाशी होगी। जहाज बीच में एक-दो जगह रुकता हुआ जाता था। लोग प्रायः ही चुंगी की चीजें चोरी से ले जाने का यत्न किया करते थे। यह सुना तो प्राण सूख गये। चुंगी वालों को इस बोतल के विषय में क्या बताया जा सकता था? उसे खोला जाता तो हमराज के कथनानुसार वह व्यर्थ हो जाती और फिर अपनी जेब में जो पिस्तौल था उसका क्या जवाब होता? पर चलते जहाज में से लौटा भी तो जा नहीं सकता था। सोचा, भयंकर भूल हो गयी। अब लौटने या बचाव का कोई रास्ता नहीं था। चुंगी वालों द्वारा चैकिंग के विकट क्षण की प्रतीक्षा करने लगा। निश्चय था, बिना किसी कारण के गोली चलाकर, स्मग्लर समझा जाकर प्राण देना ही बदा है। जहाज पर दो दिन मन बहुत दुखी रहा। जान पड़ता था, चूहा बनकर चूहेदानी में आ फँसा हूँ, अपने अज्ञान के लिये पछताता रहा।

बम्बई बन्दरगाह पर बचकर निकल जाने की राह नहीं थी। कम से कम मैं तो स्थान से परिचित भी न था। यदि कोई आशा थी तो साहस से निर्दोष होने के अभिनय से ही। वही किया। दूसरे मुसाफिरों से कुछ धक्का-मुक्की कर अपना सूटकेस चुंगी वालों के सामने रख कर प्रार्थना की, 'साहब, इसे जल्दी देख लीजिये मुझे स्टेशन से ये ही गाड़ी पकड़नी है।" चुंगी का बाबू मेरे तहाकर रखे मैले कपड़ों को उलटन-पलटने लगा। मैं सोच रहा था कि अब इसने मेरी जेब टटोली या सूटकेस की तह में हाथ डाला और मैंने गोली चलायी पर मेरी उतावली और स्वयं सूटकेस खोल देने के ढंग से बाबू का समाधान हो गया। उसने सूटकेस बन्द करके उस पर खड़िया से पास का निशान बना दिया। जान बची।

कानपुर पहुँचा। भैया और मैं बड़ी उमंग से बैटरी लेकर परीक्षण करने बैठे। परिणाम कुछ न हुआ। दूसरा बल्ब और बैटरी लेकर आज़माया। फिर वही बात।

शची को अपने यहां रखना उचित न समझा और वैशम्पायन के यहां भिजवा दिया। दुर्गा भाभी कानपुर पहुची तो इस व्यर्थ घटना के लिये बहुत खिन्न थीं लेकिन उनके बम्बई से लौट आने से स्वामीराव की जहमत तो टल गयी।

इसके कुछ वर्ष बाद पृथ्वीसिंह गांधी जी से मिले और उन्हे अपना वास्तविक परिचय दिया। गांधी जी ने उन्हे पुलिस को आत्म-समर्पण करने की सलाह देकर यह आश्वासन भी दिया कि यदि वे सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग छोड़ कर गांधीवादी कार्यक्रम मे सहयोग देने का निश्चय कर लें तो गांधी जी अपने प्रभाव में उन्हे सरकार से मुआफी दिलाने का भी यत्न करेंगे। पृथ्वीसिंह ने गांधी जी का परामर्श मान लिया। शायद इस निश्चय पर कि पृथ्वीसिंह गांधी जी के साथ गांधी आश्रम मे ही रहेंगे, सरकार ने उन्हें मुआफी दे दी।

पृथ्वीसिंह कई वर्ष गांधी आश्रम मे रह कर गांधी जी के निर्देश में काम करते रहे। स्वराज्य के पश्चात् वे गांधी आश्रम छोड़ कर अपना पृथक् काम करने लगे। बाद मे बम्बई में पृथ्वीसिंह से परिचय होने पर उन्होंने मुझे एक रोचक घटना सुनाई। गांधी जी ने पृथ्वीसिंह को उत्साहित किया था कि वे आपबीती लिखें और गांधी जी उस पुस्तक की भूमिका या परिचय लिखकर किसी प्रकाशक को पुस्तक प्रकाशित कर देने की सिफारिश कर देंगे। ऐसा होने से पुस्तक की पचास हजार या लाख प्रतियां बिक जाना कोई बड़ी बात न थी। पृथ्वीसिंह ने आपबीती लिखी पर उसे देखकर गांधी जी ने भूमिका या परिचय लिखना स्वीकार न किया। गांधी जी का प्रयोजन था कि पृथ्वीसिंह पश्चात्ताप की भावना से पुस्तक लिखे परन्तु पृथ्वीसिंह के मन मे गांधी जी के वर्षों के सहवास से अपने पहले विश्वास के लिये पश्चात्ताप न हुआ था बल्कि उतने वर्ष गांधी जी के निर्देश म बिना लेन से कोई सतोष भी नहीं हुआ। उन दिनों वे गांधीवादी कांग्रेसी कार्यक्रम की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के ही कार्यक्रम से आकर्षित थे।

नवम्बर के महीने म चामत्कारिक शक्ति का वैज्ञानिक पदार्थ देने के लिये हंसराज वायरलेस द्वारा बतायी तारीख आ रही थी। भैया आजाद ने कहा, यह तारीख मत चूको, कराची हो ही आओ। मैं फिर कानपुर से कराची के लिये चला। इस बार शुरू से ही भटिण्डा से सम्मासट्टा के रास्ते गया। हंसराज पुरानी जगह अपने भाई ब्रह्मदेव के यहाँ ही था। उसने कहा कि चीज तैयार है, कल तुम्हे दे दूंगा। दूसरे दिन उसने मुझे कत्थई रंग के तरल पदार्थ से भरी एक छोटी पर चौड़ी बोतल दे दी। बोतल के शीशे के डाट पर मोम और कपड़ा लगाकर उस सुरक्षित कर दिया गया था। साथ एक छोटी-सी शीशी भी थी। उसने बताया कि छोटी शीशी बोतल के साथ रखने से बोतल की शक्ति (किरण) शांत रहेगी। छोटी शीशी बोतल से दो गज से अधिक दूर

ले जाने पर वीनस से पाच सौ गज दूर तक पहुंचने वाली बिजली की लहरें उत्पन्न होने लगेंगी। मैंने चाहा कि उसका परीक्षण उसी के सामने अपने हाथ में कर लूँ पर हंसराज ने आश्वासन दिलाया, "विश्वास रखो, देहली में जैसे परीक्षण करते थे वैसे ही जब चाहो करके देख लेना। यहां मेरी भाभी और भाई के सामने कुछ करना ठीक नहीं।" मैं उसकी बात पर अविश्वास करके उसके विरुद्ध और कर भी क्या सकता था?

हंसराज का दिया सामान लेकर मैं बहुत उत्साह से लौटा। किसी खतरे की आशंका न रह इस विचार से कराची से समुद्र के रास्ते बम्बई होकर लौटने का निश्चय किया। अपने खयाल में यह लम्बा रास्ता इसलिये चुना था कि निरापद होगा पर यह मेरा अज्ञान ही था। दो दिन तो समुद्र में लग गये। जहाज में तीसरे दर्जे में डेक पर ही सफर कर रहा था। सहयात्रियों की बातचीत से पता लगा कि बम्बई में चुंगी पर जबर्दस्त सामान की भयंकर तलाशी होगी। जहाज बीच में एक-दो जगह रुकता हुआ जाता था। लोग प्राय ही चुंगी की चीजें चोरी से ले जाने का यत्न किया करते थे। यह सुना तो प्राण सूख गये। चुंगी वालों को इस बातल के विषय में क्या बताया जा सकता था? उसे खोला जाता तो हंसराज के कथनानुसार वह व्यर्थ हो जाती और फिर अपनी जेब में जो पिस्तौल था उसका क्या जवाब होता? पर चलते जहाज में से लौटा भी तो जा नहीं सकता था। सोचा, भयंकर भूल हो गयी। अब लौटने या बचाव का कोई रास्ता नहीं था। चुंगी वालों द्वारा चेकिंग के विकट क्षण की प्रतीक्षा करने लगा। निश्चय था, बिना किसी कारण के गोली चलाकर, स्मगलर समझा जाकर प्राण देना ही बदा है। जहाज पर दो दिन मन बहुत दुखी रहा। जान पड़ता था, बूढ़ा बनकर चूहेदानी में आ फंसा हूं, अपने अज्ञान के लिये पछताता रहा।

बम्बई बन्दरगाह पर बचकर निकल जाने की राह नहीं थी। कम से कम मैं तो स्थान से परिचित भी न था। यदि कोई आशा थी तो साहस से निर्दोष होने के अभिनय से ही। वही किया। दूसरे मुसाफिरों से कुछ धक्का-मुक्की कर अपना सूटकेस चुंगी वालों के सामने रख कर प्रार्थना की, "साहब, इसे जल्दी देख लीजिये मुझे स्टेशन से यह ही गाड़ी पकड़नी है।" चुंगी का बाबू मेरे टहाकर रखे मैंने कपड़ों को उलटन-पलटन लगा। मैं सोच रहा था कि अब उसने मेरी जेब टटोली या सूटकेस की तह में हाथ डाला और मैंने गोली चलायी पर मेरी उतावली और स्वयं सूटकेस खोल देने के ढंग से बाबू का समाधान हो गया। उसने सूटकेस बन्द करके उस पर खड़िया से पास का निशान लगा दिया। जान बची।

कानपुर पहुँचा। भैया और मैं बड़ी उमंग से बैटरी लेकर परीक्षण करने बैठे। परिणाम कुछ न हुआ। रूपरा दस्द और बैटरी लेकर आजमाया। फिर वही बात।

भैया ने बोनर को उठाकर कोने में दीवार पर दे मारा। इसके बाद हम लोगों ने फिर हंसराज वायरलेस को परेशान नहीं किया था उससे परेशान नहीं हुए। १९४६ के बाद हंसराज ने अपने वायरलेस के जादू को जीविका का साधन बना लिया था। लखनऊ की प्रदर्शनी में यह साइन्स के अपने करतब दिखा रहा था। यूनीवर्सिटी के साइन्स के छात्रों ने कुछ प्रश्न किये। इस पर झगड़ा हो गया। विद्यार्थियों ने प्रदर्शन की जगह खोद कर और कनातें उधेड़कर तार खोज लिये और उसके 'वायरलेस' का रहस्य प्रकट कर दिया। हंसराज को बिना लाइसेंस जादू का पेशा करने के कारण दो रात हवालात में भी रहना पड़ा।

इस समय तक कुछ गिरफ्तारियाँ ऐसी हो चुकी थीं जिनके कारण कैलाशपति के मुखबिर बन जाने का विश्वास हमें हो गया था। दिल्ली में यह भी पता लग चुका था कि पुलिस कैलाशपति को विशेष सुविधाएँ दे रही थी और रामजस स्कूल के ड्रिल मास्टर राजबलीसिंह की पत्नी कमला कैलाशपति से मिलने हवालात में जाती रहती थी। कैलाशपति, गिरफ्तारी के समय कमला के साथ रह रहा था। वह अपने मकान की गली में अपने मकान के दरवाजे के समीप ही गिरफ्तार हुआ था। हम लोगों से सहानुभूति रखने वाले कुछ लोगों ने पुलिस और जेल के राष्ट्रीय भावना रखने वाले आदमियों से मिल कर कमला के कैलाशपति को जेल में जाने वाले पत्रों की नकलें भी ले ली। इन लोगों का विश्वास था कि कैलाशपति की इस कायरता का कारण कमला के लिये उसकी आसक्ति थी। कमला ने रो-रोकर कैलाशपति को मुखबिर बन जाने के लिये विवश कर दिया था। इस उदाहरण को इस बात का प्रमाण बना लिया जा सकता है कि क्रान्तिकारियों का किसी स्त्री से प्रेम या सम्बन्ध उचित नहीं था।

कैलाशपति के बयान से यह स्पष्ट हो गया था कि वह गिरफ्तारी के तीसरे या चौथे दिन ही प्राणभिक्षा के वायदे पर मुखबिर बन गया था। कमला के प्रति उसके प्रेम के विषय में यह भी सोचा जा सकता है कि यदि कमला दूसरे ढंग की औरत होती, अर्थात् कैलाशपति से कहती कि तुम्हारी वीरता और शहादत के लिये मुझे अभिमान होगा तो कैलाशपति का व्यवहार कैसा होता? स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही तरह के होते हैं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि कैलाशपति ने अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के कारण गलत ढंग की स्त्री से प्रेम किया था वह स्वयं ही कमजोर व्यक्ति था।

वीरभद्र की उलझन

कैलाशपति जैसे दल के महत्वपूर्ण व्यक्ति के मुखबिर बन जाने से हम सभी को बहुत धक्का लगा। आजाद के मन में विशेषकर यह प्रतिक्रिया हुई कि दल द्वारा मुखबिरों को कोई दण्ड न दिया जा सकने के कारण लोग मुखबिर बन जाने में नहीं हिचकते।

इस घटना से मुखबिरों के प्रति आज़ाद का क्रोध और उबल पड़ा।

एक समस्या यह भी थी कि कैलाशपति से परिचित अनेक लोगों के गिरफ्तार हो जाने के बाद भी वीरभद्र तिवारी के खिलाफ कोई कार्रवाई क्यों नहीं की गयी? वीरभद्र उस समय भी श्रद्धानन्द पार्क में अपने मकान में ही रहता था और बाजार में जहाँ-तहाँ घूमता भी दिखाई दे-जाता था। वीरभद्र खुफिया पुलिस के इंस्पेक्टर पंडित शम्भुनाथ का केवल पड़ोसी ही नहीं था बल्कि ऐसी धारणा थी कि दोनों परिवारों में काफी सौहार्द्र और सम्पर्क भी था। आज़ाद के मन में सन्देह बैठ गया कि वीरभद्र विश्वासघाती है, दोहरी चाल चल रहा है।

आज़ाद ने मुझसे इस विषय में चुन्नीगंज के मकान में कई बार परामर्श किया। मैंने अपनी समझ से विचार प्रकट किया कि खुफिया पुलिस के इंस्पेक्टर से सौहार्द्र होना भी सन्देह का कारण हो सकता है परन्तु कैलाशपति की गिरफ्तारी के बाद भी वीरभद्र फरार होने की आवश्यकता नहीं समझता, यही बात खास सन्देह का कारण है।

मेरा भी अनुमान था कि वीरभद्र ऐसी कोई घटना होने नहीं देना चाहता था जिससे उस पर आँच आने का डर हो। मेरा विश्वास था कि वीरभद्र तिवारी बहुत गहरी समझ-बूझ और शरीर खूब लम्बा-तड़गा होने के बावजूद स्वभाव से कुछ भीरु (जयचन्द्र जी की तरह) या अति सावधान था। मैंने भैया को जनवरी १९३० की केन्द्रीय समिति में तिवारी और कैलाशपति का दिया सुझाव याद दिलाया कि प्रान्तीय संगठनकर्त्ताओं को सशस्त्र कार्यों में भाग लेने से रोक दिया जाय। मेरा विचार था कि भीरु आदमी प्राण बचाने की तिकड़म में कुछ भी कर सकता है। मेरी बात से वीरभद्र के प्रति आज़ाद का सन्देह बढ़ा ही होगा। इन दिनों कोई केन्द्रीय समिति नहीं थी। हम लोगों में से जो आज़ाद के समीप रहता वे उसी से सलाह-परामर्श कर लेते थे।

आज़ाद ने तय कर लिया कि वीरभद्र तिवारी को गोली मार देनी होगी। उन्होंने मुझसे कहा कि वीरभद्र बहुत ही धूर्त और तेज आदमी है। इस अवसर पर तुम मेरे साथ रहना। मैं तैयार हो गया। यह खयाल मुझे जरूर आया कि वीरभद्र ने बहुत आड़े समय में मेरी सहायता की है और मुझ पर उसका एहसान है। लेकिन दल के साथ वीरभद्र के उचित व्यवहार न करने के सन्देह भी मौजूद थे। आज़ाद उस पर लगाये आरोप उसे बताकर अपना ढंग सुधारने का अवसर भी दे चुके थे। आज़ाद ने इस बात का प्रबंध कर लिया था कि वीरभद्र को किसी कार्यवश रात में 'मैमोरियल वेल' के समीप घाट पर जाना पड़ेगा और 'मैमोरियल वेल' के पिछवाड़े के एकान्त स्थान में उससे बात की जायगी। सन्देह की अवस्था में आज़ाद और मैं उसे घेर कर गोली मार देंगे। वैसे और क्योंकर वीरभद्र रात में उस एकान्त घाट पर चला आयगा, यह

सब न मैंने पूछा, न मुझे आजाद ने बताया ही। दो बार तो आजाद मुझे लेकर अंधेरे में उस स्थान के चक्कर घंटे-घंटे भर काटते रहे। तीसरी बार मैं चुन्नीगंज में सो रहा था। रात ग्यारह बजे आजाद ने आकर उठाया "सोहन जल्दी चलो! चूक न जायें! वह आ रहा है।"

मैं तुरन्त उठा। तकिये के नीचे से पिस्तौल लेकर जेब में डाल लिया और बाइसिकल पर आजाद के साथ चल दिया। इस बार भी अंधेरे और सर्दी में लगभग पैंतालीस मिनिट तक चक्कर लगाते रहने पर भी वीरभद्र नहीं आया। हम लौटने ही को थे कि अंधेरे में सफेद धोती ब्लाउज और काले रंग की गरम वास्कट पहने एक दुबली सी अनुमान से उन्नीस-बीस वर्ष की लड़की आती दिखायी दी। आजाद उसकी ओर बढ़ गये। मेरा उस लड़की से परिचय न था न आजाद न मुझे साथ आने के लिये कहा इसलिये मैं कुछ कदम दूर ही खड़ा रहा। लड़की की बात समझ न आने पर भी उसका बोल सुनाई दे रहा था। वह घबरायी हुई जान पड़ रही थी। यह भी मैं भांप रहा था कि वह वीरभद्र के वहां न आने का कारण बता रही है।

आजाद निराशा की सी सांस लेते हुए मेरे पास आकर बोले हर बार ससुर कोई न कोई झगड़ा हो जाता है।

आखिर मैंने पूछ ही लिया कुछ बताओ तो सही कि क्या योजना थी? कैसे विश्वास था कि वह आ जायगा? और कहा कि मैं यह इसलिये पूछ रहा हूँ कि मेरे अनुमान में यह लड़की तुमसे झूठ बोल रही थी।

'कैसे?' भैया ने पूछा।

मैंने उत्तर दिया उसके ढंग और घबराहट में मुझे सन्देह है कि वह बात बना रही थी पर बना नहीं पा रही थी।

तब आजाद ने उस लड़की का परिचय दिया और बताया कि इस लड़की ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि वह रात में मरसैया घाट पर विशेष पूजा करने का बहाना करेगी और वीरभद्र को संरक्षकता या साथ के लिये लेती आयेगी। अब बता रही है कि वीरभद्र ने सन्देश भेज दिया है कि उसे एक जरूरी काम पड़ गया है।

मैंने आजाद से कहा कि मुझे इस लड़की के ढंग पर सन्देह है। इसकी वीरभद्र से ऐसी क्या आत्मीयता है कि उसे रात में ऐसी जगह ला सके? वीरभद्र का इतना विश्वास इसने कैसे पाया है? क्या उसे धोखा देने के लिये ही उससे इतना गहरा सम्बन्ध इसने जोड़ा है? यदि वास्तव में इसकी वीरभद्र से इतनी आत्मीयता है तो उसे बचाने के लिये तुम्हें ही धोखा दे रही हो? किसी का साथ लाकर गोली मरवा देने में कुछ न कुछ खतरा है ही। इसका ढंग ऐसा नहीं जान पड़ता कि इस काम को अपना कर्त्तव्य समझ रही हो।

वह लड़की मुझे बंगाली जान पड़ी। उस लड़की के सम्बन्ध में काफी दिनों बाद मुझे दूसरे साथियों से पता चला कि वह प्रायः ही दुतरफा चाल चला करती थी। उसकी प्रवृत्ति और परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं कि एक जगह जमकर बैठना उसके लिये कभी सुविधाजनक न हो सका। उस समय मैं उसके सम्बन्ध में इतना ही जानता था। इस लड़की का उपनाम 'खोकी' था। बाद में पता लगा कि उस उम्र की छोटी-मोटी उच्छृङ्खलता के बावजूद खोकी को सशस्त्र क्रान्ति के काम के प्रति बहुत लगन थी। वह उत्तर प्रदेश छोड़कर बंगाल चली गयी थी और वहाँ किसी जेल में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

उन्हीं दिनों एक दोपहर में कानपुर में मेस्टन रोड के फुटपाथ पर चला जा रहा था। भीड़ काफी थी। सहसा वीरभद्र से सामना हो गया। उसने मुझे खूब पहचाना परन्तु पहचानने का कोई संकेत प्रकट नहीं किया। वैसा ही मैंने भी किया। मेरी कमर में उस समय भी पिस्तौल था। वीरभद्र के पास था या नहीं, कह नहीं सकता। सम्भवतः नहीं ही होगा। पिस्तौल का रखना ही खतरे का कारण था। तब वह फरार भी न था। बिना निश्चित आवश्यकता के या केवल शौकिया ही खतरा सिर लेना वीरभद्र की प्रकृति नहीं थी। उस समय यह सब मैंने नहीं सोचा परन्तु उतनी भीड़ में और श्रद्धानन्द पार्क बगल में होने के कारण, जहाँ आस-पास उसके बहुत से परिचित थे, उस पर गोली चला देने की बात मेरे मन में आयी भी नहीं। बाद में सोचने पर समझा कि वह स्थान और परिस्थितियाँ वीरभद्र के तो अनुकूल थीं। उसे गोली मार देने का जिस भोंडे ढंग से आयोजन आज़ाद ने किया था और बार-बार बुलाने पर उसका कतरा जाना, इन सब बातों से मेरे विचार में वह भैया की भावना जान चुका था। जब कोई आदमी मुखबिर बन जाता था तो उसका विरोध या शत्रुता, दल के खास व्यक्तियों से नहीं, पूरे दल से हो जाती थी। ऐसा कोई कारण नहीं था कि वीरभद्र मुझे तो तरह दे जाता और आज़ाद को पकड़वा देता। बल्कि मेरे प्रति उसे कृतघ्नता की शिकायत कहीं अधिक होनी चाहिये थी। उसका व्यवहार समस्या बन गया। इसके बाद हम लोगों ने कानपुर में वीरभद्र को गोली मार देने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यह भी बात थी कि इसके बाद मैं और भैया इलाहाबाद चले गये थे। दिसम्बर–जनवरी में इलाहाबाद में सुरेन्द्र पाण्डे और भवानीसिंह भी आ गये थे। आपस में प्रायः सैद्धान्तिक बातचीत होती रहती थी।

उस समय आज़ाद के कहने से वीरभद्र को गोली मार देने के विचार में मुझे कोई नैतिक या भावात्मक आपत्ति नहीं जान पड़ी थी। काफी बाद में अर्थात् जेल में पुरानी बातों पर विचार करते समय या अब जब कभी वे बातें याद आ जाती हैं तो उस प्रयत्न को दूसरे ही रूप में देखता हूँ। घटना सन् १९४७ में भारत का शासन कांग्रेसी सरकार

के हाथ आ जाने के बाद की है। एक सन्ध्या हम लोग भुवाली मे डाक्टर प्रेमलाल साह के एक अगरेज मित्र के यहा चाय पी रहे थे। बेतकुल्लफी से बातें हो रही थी। डाक्टर साह ने मेरा परिचय हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक के रूप मे कराया था। अंग्रेज पति, पत्नी और उनकी अंग्रेज मेहमान का मेरी बातें भी दिलचस्प लग रही थीं। बात गाधीवाद पर हो रही थी। अंग्रेज मेहमान महिला का विचार था कि गाधीवाद ससार का भारत की बड़ी भारी देन है। मैं उनकी बात पर मजाक कर रहा था और वे हैरान हो रही थी। वास्तव में वे गाधीवाद को कुछ भी समझती नही थी या ईसा के उपदेशों का आधुनिक रूप मानती थी। डाक्टर साह ने अचानक कह दिया, गाधीवाद को समझना हो इस आदमी से ही बात करो। इसने 'गाधीवाद की शव परीक्षा' पुस्तक लिखी है।

अंग्रेज महिला आखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखने लगी। उन्हें विस्मय हो रहा था कि भारत में ऐसे भी लोग हैं जो गाधीवाद की आलोचना कर सकते हैं। डाक्टर साह को मजाक सूझा। उन्होंने कहा, "यही वह आदमी है जिसने १६२६ में वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट किया था।"

दोनों अंग्रेज महिलाओं और सज्जन ने भी मुझे सिर से पांव तक विस्मय से देखा, मानो निश्चय कर लेना चाहते हों, भूत नही आदमी ही सामने बैठा है। बातचीत गम्भीर हो गयी। अंग्रेज महिला कुछ करुण स्वर मे बोली, "खैर, बीत गयी सो बात गयी। अब तो कोई शत्रुता बाकी नही। मैं पूछना चाहती हूँ कि ऐसा काम करने के बाद तुम्हें कभी परिताप या आत्मग्लानि अनुभव नही हुई?"

प्रश्न करने वाली महिला के पति दूसरे महायुद्ध मे ब्रिटिश सेना मे मेजर थे। मैंने प्रति प्रश्न किया, "सम्भव है आपके पति के हाथो या उनके निर्देश मे शत्रु पक्ष के कई लोगों की जानें गयी हों। कम से कम ऐसा प्रयत्न तो उन्होंने किया ही होगा। इस विचार से उन्हें कभी परिताप या आत्मग्लानि अनुभव हुई या नही? कभी आपने अपने पति से ऐसी जिज्ञासा की है?"

महिला को अपने पति से ऐसी जिज्ञासा का कोई तुक या कारण ही नही जान पड़ा। क्योंकि उनके पति अपनी जान जोखिम मे डाल कर अपने देश के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे थे।

मैंने यही बात अपनी ओर से दोहरायी, "आपके पति तो तनख्वाह लेकर कर्त्तव्य पूरा कर रहे थे। मैं तनख्वाह की भी आशा न कर, कहीं अधिक जोखिम झेल कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहा था। वर्ना उस वायसराय बेचारे से मुझे क्या लेना-देना था। आज यदि मैं उसे जाड़े मे ठिठुरता पाऊं तो सम्भव है अपना कोट उतार कर दे दूं।" वायसराय से सम्बद्ध घटना के लिये, अथवा दूसरी घटनाओं मे जब मैंने अंग्रेज

सरकार के प्रतिनिधियों को अपनी गोली की चोट में गिरते देखा, मुझे कभी कोई परिताप या ग्लानि आज तक अनुभव नहीं हुई। परन्तु जेल में या अब भी कभी वीरभद्र पर गोली चला देने के प्रयत्न की याद आने पर मानना पड़ता है कि यह उचित न होता। मेरे विचार में वीरभद्र के धोखे का रूप केवल यह था कि वह मुसीबत से बचे रहने के लिये घटना न होने देने का बहाना बना देता होगा। अपने किसी आदमी को उसने गिरफ्तार करा दिया हो, ऐसा कोई प्रमाण कभी नहीं मिला। यदि वह हम लोगों से साफ कह देता कि वह जान जोखिम में न डाल कर केवल संगठन और परामर्श द्वारा ही सहायता करेगा तो अधिक अच्छा रहता। अन्तिम दिनों में सुरेन्द्र पांडे ने स्पष्ट ही ऐसा कह दिया था तो उसके प्रति हमें कोई संदेह नहीं हुआ। उसे जबर-दस्ती जोखिम में खींचना भी आवश्यक न जान पड़ा। वीरभद्र के सम्बन्ध में यह मेरे अनुमान ही है।

आजाद चुनीगंज वाले मकान में प्रायः ही आते रहते थे। कभी रात भी वहाँ ठहर जाते। अगर किसी दिन अरहर की दाल विशेष तौर पर खाने की इच्छा होती तो प्रकाशवती को दाल चढ़ा देने के लिये कह कर दाल पक जाने की प्रतीक्षा में बैठे रहते। ऐसा प्रायः कभी ही होता था कि आजाद चुप बैठे रहें। पास बैठे होंगे तो कुछ न कुछ बात करते ही रहेंगे। आजाद का शरीर मोटा कह सकने लायक दोहरा और खूब गठा हुआ था। कसरत का शौक भी था परन्तु फरारी के अनियमित जीवन में नियम से कसरत हो नहीं सकती थी। अगर सप्ताह भर में अधिक कहीं रहना हो जाता तो उन्हें सुबह कुछ दण्ड-झपाटे लगा लेने की बात याद आ जाती परन्तु उन्हें मोटा कहे जाने से बहुत चिढ़ थी। यों हम लोग उन्हें पीठ पीछे मोटे भाई कह कर ही बात करते थे। प्रकाशवती प्रायः मोटे भैया ही कहती थी।

चुनीगंज के उस मकान में आजाद प्रकाशवती को एक तकिये पर निशाना बना कर एयर पिस्टल से निशाना मारने का अभ्यास कराया करते थे। तकिये पर इसलिये कि पिस्तौल का छर्रा खराब न हो और कई बार उपयोग में आ सके। वे प्रकाशवती के अंग्रेजी पढ़ने पर भी जोर देते रहते थे। फरारी के समय चुनीगंज के मकान में प्रकाशवती का शुरू हुआ अंग्रेजी पढ़ना जारी रहा और बहुत काम आया। १६३४ में गिरफ्तार होकर छूटने के बाद प्रकाशवती के लिये मैट्रिक की परीक्षा के लिये बनारस के एक हाईस्कूल में भरती हो जाना सम्भव हो सका, तदुपरान्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में चुनीगंज के मकान में एक दिन आजाद के सामने ही प्रकाशवती के मुंह से निकल गया, "मोटे भैया कभी ये कहते है, कभी वह कहते है।"

आजाद ने बहुत गुस्से का अभिनय किया, "अच्छा री दुइय्या, हमें मोटा कहती है।

सब तेरी ही तरह हो जायें !" और उसकी पीठ पर दो-चार घूसे जड़ दिये। प्रकाशवती उन दिनों बहुत दुबली-पतली थी। वजन मन भर से अधिक न होगा। प्रकाशवती को कसरत करने का हुक्म हो गया। इसके बाद प्रकाशवती से आज़ाद का एक ज़रूरी प्रश्न यह भी हो गया, 'टुइय्या कसरत करती हो या नहीं ?"

चौधरी रामधनसिंह से मैंने आज़ाद का परिचय करा दिया था। यह जान कर कि चौधरी रामधनसिंह दल की ओर से मर्दान में रह आये हैं, उस इलाके के एक-दो प्रभावशाली खानों (जागीरदारों) में भी उनका परिचय है और गुज़ारे लायक पश्तो भी बात लेते हैं, आज़ाद को बहुत उत्साह हुआ। हम लोगों ने चौधरी को उनके चमड़े के काम के स्कूल से कुछ दिन की छुट्टी लेकर, यह पता लेने के लिये मर्दान भेजा कि सीमा पार से शस्त्र खरीदने की और किसी आदमी को अफगानिस्तान की राह विदेश ख़ासकर रूस भेजना हो तो क्या सम्भावना हो सकती है। पिछले सितम्बर में आपसी झगड़े के बाद से मेरे मन में निरंतर यह इच्छा थी कि विदेश या रूस जा सकूं। वहाँ अनुभव प्राप्त करके सम्भव हो तो ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध विदेश में सहायता लेकर अधिक व्यापक रूप में काम किया जाय। यह बात आज़ाद को भी जँच रही थी।

चौधरी मर्दान में प्रायः सप्ताह भर रह कर लौटे। उन्होंने आकर बताया कि सीमा पार से शस्त्र खरीदने की योजना ठीक नहीं रहेगी। इसमें दो कठिनाइयां थीं। एक तो यह कि उस इलाके के पठान यह जानते थे कि भारत में शस्त्र रखना गैरकानूनी है। इसलिये चोरी से शस्त्र बेचते समय बेहिसाब मूल्य माँगते थे। दूसरे यह कि इलाके में जगह जगह शस्त्रों के छोटे छोटे कारखाने खुल गये थे। यहाँ बने शस्त्र देखने में बिलकुल जर्मन और अंग्रेजी रिवाल्वर, पिस्तौल जैसे ही जान पड़ते थे। इनका दाम अधिक वसूल कर सकने के लिये इन पर 'मेड इन जर्मनी' और 'मेड इन इंगलैंड' के ठप्पे भी लगा दिये जाते थे। लेकिन निशाना इन हथियारों का उतना सच्चा न होता था और वे समय पर धोखा दे जाते थे। काबुल की राह विदेश जाने के सम्बन्ध में उन्होंने पूरी सुविधा का आश्वासन दिलाया। तय हो गया कि मैं दो-तीन मास में उस रास्ते रूस की ओर चला जाऊँगा।

चौधरी रामधनसिंह के अतिरिक्त १९३० अगस्त में धन्वन्तरी हमारे एक पुराने साथी रामकृष्ण को इस प्रयोजन से सरहद पार भेज चुका था। रामकृष्ण भी नेशनल कॉलिज में हमारा सहपाठी था। मैं 'सिंहावलोकन' के पहले भाग में जिक्र कर चुका हूं कि कॉलिज के प्रथम वर्ष में हम दोनों मेहनती और मेधावी समझे जाते थे। कॉलिज की शिक्षा समाप्त करके रामकृष्ण ने लाहौर में मोहनलाल रोड पर शुद्ध घी की दुकान खोल ली थी। रामकृष्ण बेमतलब बात बहुत कम करता था। एक

उपयोगी और महत्वपूर्ण काम बतलाये जाने पर दुकान को लपेट-समेट कर वह सरहद पार जा बसा और कुछ ही दिनों में उसने पश्तो भाषा सीख कर अंग्रेजशाही के विरोध के साझे उद्देश्य में इप्पी के फकीर तक से सम्बन्ध जोड लिया था। वहां बीमार हो जाने पर और उचित चिकित्सा न हो सकने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उसके प्रयत्न का कोई विशेष परिणाम सामने नहीं आ सका इसलिये उसके प्रयत्न को चाहे महत्त्व न दिया जाये परन्तु इससे हमारे दल के व्यापक दृष्टिकोण और रामकृष्ण के साहस और चातुर्य का सकेत तो मिलता ही है अर्थात् हमारे प्रयत्न केवल व्यक्तिगत आतंकवाद में सीमित नही थे। हमारा दृष्टिकोण व्यापक और साम्राज्यवाद-विरोधी था।

पजाब के गवर्नर पर गोली

१६३० दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में लाहौर में पजाब यूनिवर्सिटी के कन्वोकेशन के समय गवर्नर पर गोली चलाये जाने के समाचार से भी हमें बहुत उत्साह हुआ था। यह काम भी हि० स० प्र० स० के प्रभाव के अन्तर्गत ही हुआ था। पजाब में झगडा बढ जाने के बाद से इन्द्रपाल तो असतुष्ट होकर आतिशी चक्कर का उप-सगठन बना बैठा था परन्तु कुछ लोग धन्वन्तरी, सुखदेवराज के साथ रहे। इन लोगों में देवराज, दुर्गादास खन्ना, रणवीर और केवलकृष्ण आदि मुख्य थे। धन्वन्तरी के भी दिल्ली मे गिरफ्तार हो जाने से और सुखदेवराज के यू० पी० में चले जाने से ये ही लोग सशस्त्र विद्रोह की भावना को पजाब में सक्रिय रखने का यत्न कर रहे थे। दुर्गादास खन्ना और रणवीर ने लाहौर षड्यन्त्र के मुकदमे में दी गयी सजाओं के विरोध में पजाब के गवर्नर पर गोली चलाने की योजना बनायी थी।

गवर्नर पर गोली चलाने के लिये इन लोगों ने अपने बीच में से किसी को नहीं चुना। इसके लिये मर्दान से एक साहसी नवयुवक हरीकृष्ण को बुला लिया गया। क्रान्तिकारी भावना और विचारों से हरीकृष्ण का पहले कोई परिचय न होने या उनसे कोई सैद्धान्तिक लगाव न होने पर भी वह विदेशी शासन विरोधी देशभक्ति के भाव से जान की बाजी लगा कर राष्ट्र के शत्रु पर वार करने के लिये तैयार हो गया। यूनिवर्सिटी कन्वोकेशन के अवसर पर यूनीवर्सिटी हाल में प्रवेश के लिये प्रवेश पत्र लाकर उसे दे दिया गया। दुर्गादास और रणवीर स्वय हॉल में नहीं गये।

कन्वोकेशन की परिपाटी पूरी करके जिस समय गवर्नर जुलूस के रूप में हाल के भीतर से लौट रहे थे, हरीकृष्ण ने गवर्नर पर गोली चला दी। निशाना ठीक नहीं बैठा। गवर्नर और उनके अगरक्षक फौजी अफसर भाग कर तितर-बितर हो गये। हरीकृष्ण ने बरामदे में भाग आये गवर्नर का पीछा किया। दुबारा गोली चलाते समय एक राज-

भक्त सब-इन्स्पेक्टर चरणसिंह हरीकृष्ण को पकड़ने के लिये बीच में आ गया और मारा गया। हरीकृष्ण भी घेर लिया गया।

इस सम्बन्ध में पहली गिरफ्तारी २४ दिसम्बर को मर्दान में चमनलाल की हुई। हरीकृष्ण का परिचय दुर्गादास आदि से चमनलाल ने ही कराया था। इसका अर्थ है कि लाहौर से २३ दिसम्बर को ही पुलिस मर्दान के लिये रवाना हो गयी अर्थात् हरीकृष्ण ने बहादुरी करने के बाद भेद खोलने में भी देर नहीं लगायी होगी। सप्ताह भर के भीतर दसौन्दासिंह, रणवीर और दुर्गादास भी गिरफ्तार हो गये। दसौन्दासिंह सरकारी गवाह बन गया। दुर्गादास खन्ना, एडवोकेट ने इस घटना के अपने संस्मरण में लिखा है कि घटना से पहले उन्होंने लाहौर जेल में भगतसिंह को एक गुप्त पत्र लिख कर राय ली थी। भगतसिंह ने उत्तर दिया था "मैं इस काम के लिये तुम्हें अपनी नैतिक अनुमति तो नहीं दे सकता। 'हिम्मत है तो करो।" भगतसिंह का जवाब बिलकुल ठीक ही था। वह यदि कहता कि 'उचित' समझो तो करो तो बात भिन्न होती परन्तु उसने 'हिम्मत' शब्द प्रयोग किया। स्पष्ट अर्थ था कि काम करने के बाद निवाह भी पाओगे? कारण यही कि नौसिखिया आदमी दल के हित में क्रान्तिकारी भावना और आचरण के अनुकूल व्यवहार कर पायेगा, इस बात में उसे सन्देह था।

अंग्रेज सरकार ने हरीकृष्ण को तुरन्त फांसी पर लटका कर सशस्त्र राजद्रोह के दण्ड का उदाहरण जनता को दिखा देने में बहुत व्यग्रता दिखायी। उस पर षड्यन्त्र का लम्बा मुकद्दमा न चला कर केवल हत्या का मुकद्दमा चलाया गया और उसे फाँसी पर लटका दिया गया। दुर्गादास, रणवीर पर षड्यन्त्र का पृथक् मुकद्दमा बाद में चला। सेशन जज ने उन्हें भी फाँसी की सजा दे दी थी परन्तु रणवीर और दुर्गादास दोनों के ही परिवार लाहौर में बहुत प्रभावशाली थे। उन्हें बहुत से वकीलों का सहयोग प्राप्त था। हाईकोर्ट में वे लोग बरी हो गये। ऐसी घटनाएं इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हि० स० प्र० स० के प्रयत्नों से सशस्त्र क्रान्ति और विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का वातावरण और भावना तो फैल गयी थी परन्तु गांधी जी और कांग्रेस के निरन्तर, विरोध के कारण वह भावना सगठित रूप और जनता का प्रकट समर्थन पा कर विस्तार न पा सकी।

इन्द्रपाल

इन दिनों हमारे दिमाग में सबसे अधिक परेशानी अपने दल के मुखबिर बन जाने वाले लोगों के कारण थी। कैलाशपति की बात तो कह ही चुका हूँ। मुझे व्यक्तिगत रूप में सबसे अधिक वेदना हुई थी—दूसरे लाहौर षड्यंत्र के मुकद्दमे में इन्द्रपाल के भी मुखबिर बन जाने के समाचार से। इस समाचार से आजाद को भी कम धक्का

नहीं लगा था। दिल्ली के समीप इन्द्रपाल के साधु बन कर वास्तविक तपस्या निबाहने के तथा बहावलपुर रोड के मामले में उसके साहस की सभी बातें आज़ाद जानते थे। इन्द्रपाल के विषय में हम लोग उसके मुखबिर बन जाने की अफवाह पर एतबार न करते परन्तु अदालत में उसके सरकारी गवाह के रूप में पेश हो जाने पर और उसके बयानों को पत्रों में छपा देखकर कैसे इन्कार कर देते। कुछ बातें ऐसी थी कि इन्द्रपाल के अतिरिक्त कोई दूसरा बता ही नहीं सकता था। आज़ाद प्राय ही मानसिक सन्ताप से कहते, 'मोहन अब किसी का एतबार नहीं किया जा सकता। एतबार उसी का जो गिरफ्तार होने के बजाय अपने सिर में गोली मार ले।"

१९३१ जनवरी के पहले या दूसरे सप्ताह में समाचार पत्रों में मोटे अक्षरों में छपा कि दूसरे लाहौर षड्यन्त्र के मामले का सरकारी गवाह इन्द्रपाल पलट गया। उसने अदालत में कह दिया कि पुलिस उसे परेशान करके झूठे बयान दिला रही है। उसने अदालत में वे कागज भी पेश कर दिये जो पुलिस ने उसे अदालत में बयान देने के लिये लिख कर दिये थे। हम लोग प्रसन्नता से उछल पड़े। भैया ने कहा, "ये साला मधवा (साधू) जरूर कोई ऐसी हरकत करेगा जो किसी ने न की हो।'

इन्द्रपाल सरकारी गवाह बना और फिर पलट गया, इतना कह देने से बात स्पष्ट नहीं हो जाती। 'सिंहावलोकन' के दूसरे भाग में कह चुका हूँ कि मेरे, धन्वन्तरी और सुखदेवराज आदि के झगड़े से इन्द्रपाल और उसके द्वारा दल से सम्बन्ध रखने वाले लोग खिन्न हो गये थे। वे अपनी समझ से अलग ही काम करने लगे थे। इन्द्रपाल जानता था कि उसे दल की ओर से संगठन या कुछ करने का अधिकार नहीं है। इसलिये उसने अपने कामों का उत्तरदायित्व दल पर न आने देने के लिये अपने नये संगठन का नाम 'आतिशीचक्कर' (अग्निचक्र) रख लिया था। इस संगठन द्वारा पंजाब में कई जगह बम विस्फोट के परिणामस्वरूप जब गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुई तो लायलपुर में इस दल के प्रभाव में काम करने वाले पुलिस के दो सिपाही मलिक कुन्दनलाल, बंसीलाल और दूसरे साथी भी सप्ताह दो सप्ताह में ही गिरफ्तार हो गये। मेरा छोटा भाई धर्मपाल भी इन लोगों में था। वह बचने के लिये भाग कर जालन्धर जाकर दसवीं श्रेणी में भरती होकर बोर्डिंग में रहने लगा था। वह भी गिरफ्तार कर लिया गया।

हम लोग और हमसे पहले के अनुभवी साथी दल में सम्मिलित साथियों को लम्बे समय तक पकाते-सधाते रहते थे, सब प्रकार के कष्ट सहने के लिये चेतावनी देते रहते थे। वैसी शिक्षा-दीक्षा इन लोगों को न दी गयी थी। परिणामत सबसे पहिले मलिक

मुन्दनलाल और वशीलाल ने भेद खोला और जब पुलिस ने उनसे पायी सूचना के आधार पर दूसरो को मार-पीट कर पूछ-ताछ करना शुरू किया तो अनेक साथी बकने लगे और अपनी कारगुजारियाँ कबूल कर बैठे। उनके नाम यहाँ देने की जरूरत नही क्योकि उनमे से कई कांग्रेसी राज मे बहुत सम्मानित कार्यकर्त्ता बन गये है। वह उनकी क्षणिक कमजोरी थी या इसका कारण उनका क्रान्तिकारी भावना मे ठीक से पग न पाना था। इन्हे मारा-पीटा भी बहुत गया था।

सुना कि लायलपुर के साथी धर्मवीर के दोनो हाथ खाट के पावो के नीचे दबा कर कई-कई सिपाही खाट पर बैठ जाते। उसने रोने, चीखने-चिल्लाने के बावजूद भी भेद नही खोला। उसे कम्बल मे लपेट कर उसकी अन्धाधुन्ध पिटायी भी की गयी। पर वह बका नही। मेरे छोटे भाई धर्मपाल की दीवार मे गडे कडे मे हथकडी बाँध कर पाच दिन और रात खडा रखा गया। दिन-रात मे केवल खाने और दिशा-फरागत के लिये दस-पन्द्रह मिनट के लिये खोल दिया जाता था। वह यही कहता रहा कि मुझे कुछ मालूम नही। जब उसकी पिडलिया जाघो की तरह सूज गयी, उसने भूख हडताल कर दी। वह बेहोश हो गया तब उसे लिटा कर सिपाहियो ने पाव से दबाना और गरम तेल की मालिश आदि करना शुरू किया। शायद इसलिये कि सुध आ जाये तो फिर वही यातना देकर बकने के लिये विवश किया जाये। यदि धर्मपाल ने हथकडी से टाँगे जाने के पहले दिन ही भूख हडताल कर दी होती तो उसे छ दिन न टँगना पडता। ऐसी यातनाएँ प्राय इस दल के सभी लोगो को दी गयी। उनकी मूछो के बाल नोचे जाते और गुड के डले पर बहुत से चीटे इकट्ठे करके उनके पायजामे के पहुचे नीचे से बाँध कर गुड के डले को पायजामे मे डाल दिया जाता। हाथ दीवार मे गडे खूटे या कडे से बधे रहते थे। ऐसी यन्त्रणाएँ पहले लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्तो को या बाद मे मुझे भी नही दी गयी। पुलिस ने इन लोगो के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करने का साहस इसीलिये किया कि वह इन्हे नौसिखिया समझ गयी थी। अभियुक्त कैसी मिट्टी का है यह पुलिस तुरन्त ताड लेती है।

एक दिन धर्मपाल दफ्तर मे पूछ-ताछ के बाद दोपहर के भोजन के लिये अपनी कोठरी मे लाया गया। इन अभियुक्तो को खाना देने की ड्यूटी हवलदार पडित फकीरचन्द की थी। फकीरचन्द धर्मपाल के लिये खाना लेकर आया तो धर्मपाल पर ड्यूटी देने वाले सिपाही अब्दुल सत्तार ने धर्मपाल की हथकडी की जजीर फकीरचन्द को थमा दी और स्वय जल्दी मे सडास की ओर चला गया। फकीरचन्द कागडा जिले का था। उसने पहाडी बोली मे धर्मपाल से कहा, 'पादा (पडित) तुमसे बात करने के लिये बुला रहा है।" इन अभियुक्तो को आपस मे बात करने का अवसर नही दिया जाता था। धर्मपाल को सन्देह हुआ कि यह आदमी कागडे का है तो क्या हुआ, कही मुझे फॉसने की चाल

तो नहीं कर रहा परन्तु फकीरचन्द ने सचमुच धर्मपाल को कोठरी से ले जाकर पीछे इन्द्रपाल की कोठरी के सामने खड़ा कर दिया।

इन्द्रपाल ने बताया, "इस समय तक हमारे पाच साथी जो कुछ जानते थे, पुलिस को बता चुके है और प्राणभिक्षा के वचन पर सरकारी गवाह बनने के लिये तैयार है। यह लोग कम से कम सत्रह साथियों को फाँसी पर लटकवा देंगे। अब्दुल अज़ीज़ (इस मुकदमे का इन्चार्ज पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट) मुझे गवाह बनाने के लिये फुसला रहा है क्योंकि और कोई गवाह अलग-अलग घटनाओ को जोड नही सकता और न इस मुकदमे का सम्बन्ध फरार आज़ाद और यशपाल की मार्फत पहले मुकदमे और दिल्ली षडयन्त्र से जोड सकता है। इस तरह षड्यन्त्र नही बन पाता। मैं सोचता हूँ, मैं सरकारी गवाह बनकर सब जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूँ और सबको बचाने की कोशिश करू। तुम्हारी क्या राय है ?"

धर्मपाल ने उत्तर दिया, "सरकारी गवाह बनने की बात तो मैं किसी भी मोल पर नहीं सह सकता। तुम्हे अपने ऊपर इतना भरोसा है तो सोच लो।"

'तुम्हे क्या मुझ पर भरोसा नही है ?" इन्द्रपाल ने पूछा।

धर्मपाल ने कहा, "अब तक तो भरोसा ही रहा है। तुम्हारी नीयत पर अब भी भरोसा कर सकता हूँ पर बात टेढी है।"

इन्द्रपाल ने उत्तर दिया, 'अच्छा, मैं सोचूगा।"

तीन-चार दिन बाद फकीरचद ने धर्मपाल को रोटियां देते हुये पहाड़ी बोली मे कहा, *'सम्भल कर, रोटियो मे पत्रित का सदेश है।"* तन्दूर की रोटियो में बीड़ी बंडल के कागज पर इन्द्रपाल का सदेश था कि वह सरकारी गवाह बन गया है।

डेढ़ मास तक इन्द्रपाल और पुलिस की गहरी छनती रही। मुकद्दमा अदालत मे पेश हुआ। साठ या सत्तर गवाह भुगत चुके थे। इन्द्रपाल की बारी आयी। इन्द्रपाल लगातार सात दिन तक बयान देता रहा। बयान अखबारो मे छपते थे। राई-रत्ती ठीक। *हम लोग पढते थे और सिर पीट लेते थे, इसे हो क्या गया!* इन बयानो मे भगवती भाई आज़ाद और यशपाल की वे सब करनियाँ खूब खोल-खोल कर बखानी गयी थी जिनके कारण कोई भी सजा कम होती। भगवती भाई तो शहीद हो चुके थे। आज़ाद और यशपाल अभी फरार ही थे। इन्द्रपाल के बयानो मे इतना ब्योरा और गहराई होते हुये भी इनके कारण कोई नई गिरफ्तारी न हुई थी। अब बयान का वह भाग आया जिसमे जेलो मे बन्द साथी फँसते थे।

नियम के अनुसार इन्द्रपाल को नित्य बयान देने से पहले भगवान और धर्म की कसम दिलाई जाती थी कि केवल सच ही बोलेगा, झूठ नही बोलेगा। आठवें दिन इन्द्रपाल ने अदालत मे शपथ लेने से इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर उसने उत्तर

दिया, "साहब, भगवान और धर्म की कसम खाकर झूठ नही बोलूगा। यह जन्म तो पुलिस ने बिगाड़ ही दिया, अब परलोक नही बिगाड सकता। वहाँ तो पुलिस साथ जायगी नही। शपथ खाने के बाद तो एक ही बात कह सकता हू कि पुलिस मुझसे झूठा बयान दिला रही है। शपथ न दिलवाइये तो जो पुलिस ने रटाया-पढाया है, सब सुना सकता हूँ।"

सरकारी वकील रायबहादुर ज्वालाप्रसाद ने आपत्ति की, "गवाह बेईमान हो गया है और पुलिस पर झूठी तोहमत लगा रहा है।"

अदालत ने इन्द्रपाल से इस बात का प्रमाण माँगा कि पुलिस उसे बयान पढ़ा रही है। इन्द्रपाल ने अपने कपड़ों में छिपाये पुलिस के लोगों के हाथ के लिखे कागज निकाल कर दिखा दिये और कहा, अदालत और सफाई के वकील मेरे साथ किले में हवालात की कोठरी मे चले तो वहाँ रखे हुये और कागज भी दिखा सकता हूँ। उसने वही किया भी और बहुत से अकाट्य प्रमाण पुलिस द्वारा झूठा बयान बनाने के दे दिये। इन्द्रपाल ने अदालत मे माग की कि आइन्दा मैं सच्चा बयान केवल इसी शर्त पर दे सकता हूँ कि मुझे किले में पुलिस के कब्जे से हटा कर जेल की हवालात मे भेज दिया जाये और मुझे विश्वास हो कि सच्चा बयान देने के कारण मुझ पर अत्याचार नही किया जायगा।

सरकारी वकीलों ने इन्द्रपाल के नये और पुराने दोनों बयानों की लिखी हुई कापियां लेकर उससे जिरह की पर वे उसे कहीं, एक बात या तारीख के बारे में भी उखाड़ नही पाये। केवल एक अवसर पर जिरह के उत्तर मे उसने कहा—मुझे याद नहीं।

इन्द्रपाल के इस उत्तर से सरकारी वकील वृद्ध रायबहादुर ज्वालाप्रसाद ने बहुत संतोष से कहा, "शुक्र है पंडित जी, एक बार तो आपके मुंह से निकला कि मुझे याद नही।"

इन्द्रपाल के उदाहरण से इस मामले का दूसरा गवाह मदनगोपाल भी पलट गया।

संक्षेप में यह कि दूसरे लाहौर षड्यन्त्र का मुकदमा गिर गया। पुलिस ने इन्द्रपाल से बदला लेने के लिये, उस पर सरकार को धोखा देने और अदालत मे झूठ बोलने (पर्जरी) का और उसी के बयान के आधार पर आतिशीचक्कर काड मे हुई हत्याओं के लिये उस अकेले पर मुकदमा चलाया। सेशन मे उसे फांसी की सजा दे दी गयी परन्तु षड्यन्त्र का मुकदमा गिर गया। केवल उन्ही लोगों को छोटी-छोटी सजाएँ हो सकी जिन्होंने मार से हार कर या सरकारी गवाह बन जाने की आशा में अपने अपराध मैजिस्ट्रेटो के सामने कबूल किये थे। सशस्त्र राजद्रोह का मामला न बन सका।

इन्द्रपाल को बचाने के लिये हाईकोर्ट मे मुकदमा लड़ा गया। इसमे सफाई की ओर से मुख्य वकील थे, रोहतक के स्वर्गीय लाला श्यामलाल जी। श्यामलाल जी

असहयोग आन्दोलन मे वकालत छोड चुके थे। इस मामले के अभियुक्तो की सहायता करने के लिये ही उन्होंने दुबारा वकालत शुरू की। उन्हे अदालत से फीस के रूप मे चौसठ रुपये रोज मिलते थे। उस जमाने के साठ आज के छह सौ। यह रुपया वे अभियुक्तो की आवश्यकताओ के लिये ही खर्च कर देते थे। श्यामलाल जी और सरकारी वकील ज्वालाप्रसाद इन्द्रपाल के साहस और बुद्धि की प्रशंसा करते नही थकते थे। बहुत जोर लगाने के बाद इन्द्रपाल की फांसी की सजा, जन्म भर काला पानी की सजा मे बदल गयी। जिस समय वाह-वाही और प्रशंसा हो रही हो, साहस से फांसी की ओर बढ जाना एक बात होती है परन्तु जब सब ओर से मुखबिर बन जाने के कलंक और थुक्का-फजीहत की वर्षा हो रही हो, अपने प्राण देने का निश्चय करके उद्देश्य पर डटे रहने के लिये और अधिक साहस की आवश्यकता चाहिये। ऐसा कोई दूसरा उदाहरण मुझे याद नही।

उपरोक्त मामलो से इन्द्रपाल के मस्तिष्क पर जो तनाव और दबाव पडा और फिर उसके साथ पुलिस ने जो दुर्व्यवहार किये उसके परिणाम स्वरूप उसे जेल मे अधरग (पैरेलेसिस) की बीमारी हो गयी। कुछ दिन तो जेल वालो ने समझा कि इस आदमी के पाखड और धूर्तता की कोई सीमा नही। यह बीमारी भी धोखा ही है। उसकी परवाह नही की गयी। फिर यह देखना आवश्यक समझा गया कि सचमुच बीमारी है तो आत्महत्या द्वारा कष्ट से न बच जाये, इसका इलाज क्या किया जाये।

लाला श्यामलाल

श्यामलाल जी परम गाधीवादी थे। वह उन चद लोगो मे से थे जिन्होने १६२१ के असहयोग आन्दोलन मे अपनी खूब चलती वकालत छोड दी थी और फिर दूसरे वकीलो की तरह अर्थ सकट से या आमदनी के लोभ म कचहरी से कभी सहयोग नही किया। केवल क्रान्तिकारियों की सहायता के लिये ही उन्होने वकालत की थी। क्रान्तिकारियो के सम्पर्क मे आने के बाद वे उनके प्रति गहरी सहानुभूति और अनुराग अनुभव करने लगे थे। इस मुकदमे मे एक बार वे विकट परिस्थिति मे फँस गये। मामला हाईकोर्ट मे पेश था। अभियुक्तो ने कुछ बातो से अपना असन्तोष प्रकट करने के लिये दरखास्त दे दी थी कि उन्हे इस अदालत पर विश्वास नही है।

ऐसी दरखास्त अदालत की मानहानि समझी गयी। जजो ने इस दरखास्त पर खिन्नता प्रकट की। श्यामलाल जी को ऐसी दरखास्त पेश करने के लिये अदालत से क्षमा माँगने की आज्ञा दी गयी। लाला जी क्षमा माँगने के लिये तैयार न हुये। हाईकोर्ट के जजो ने लाला श्यामलाल पर अदालत की मानहानि का अभियोग चला दिया। इस मामले मे सजा की मियाद तब तक हो सकती थी जब तक श्यामलाल जी अदालत की मानहानि करने के लिये क्षमा न माँग लेते।

इस मामले से पंजाब के कानूनी और अदालती क्षेत्रों में हलचल मच गयी। जिस दिन श्यामलाल जी का यह मामला हाईकोर्ट में पेश हुआ, लाहौर की सभी कचहरियों में काम स्थगित था। सभी वकील हाईकोर्ट पहुँचे। लॉ कालेज भी बन्द रहा। लाहौर के सभी बड़े वकीलों ने श्यामलाल जी से इस दरख्वास्त की नेकनीयती में हो गयी चूक बताकर हाईकोर्ट के सम्मुख खेद प्रकट कर देने का अनुरोध किया पर लाला जी तैयार न हुये। पेशी के लिये हाईकोर्ट जाते समय अपना बिस्तर बाँध कर साथ लेते गये कि वहीं से जेल चले जायेंगे। श्यामलाल जी ने हाईकोर्ट में अपने व्यवहार पर खेद प्रकट करने से इन्कार करके इस बात का आग्रह किया कि उनके मुवक्किल नेकनीयत, सच्चे और आत्माभिमानी व्यक्ति हैं और उनकी भावना अदालत के सम्मुख ईमानदारी से रखना उनका कर्त्तव्य है। परिणाम की आशंका से सभी चिंतित थे। ऐसी अवस्था में हाईकोर्ट ने ही समझदारी से काम लिया। लाला श्यामलाल की नेकनीयत और ईमानदारी पर विश्वास करके उन्हें भविष्य में सावधान रहने की चेतावनी देकर मामला बरखास्त कर दिया।

श्यामलाल जी इन्द्रपाल की निष्ठा और साहस से बहुत प्रभावित थे। वे इस सम्बन्ध में गांधी जी से मिलने गये और इन्द्रपाल जैसे जीवित शहीद की प्राणरक्षा के लिये यत्न करने का अनुरोध किया। गांधी जी ने पंजाब के तत्कालीन मुख्यमन्त्री सर सिकन्दर हयात खां को इस विषय में पत्र लिखा। सरकार के बड़े से बड़े डाक्टरों ने इन्द्रपाल की परीक्षा की और परिणाम पर पहुँचे कि बीमारी विकट रूप ले चुकी है, इलाज की कोई सम्भावना नहीं। किसी भी समय प्राण निकल जा सकते हैं। बीमारी को असाध्य समझ कर इन्द्रपाल को जेल से रिहा कर दिया गया।

जिस समय इन्द्रपाल जेल में छूटा, बैठ भी न सकता था। उसकी टाँगें और बाँहें टेढ़ी हो गयी थीं। बोल भी न सकता था। जेल जाने से चार-पाँच मास पहले उसका विवाह हुआ था। उसकी पत्नी जगदीश्वरी ने उसकी सेवा और इलाज शुरू किये। हकीमों के बतलाये नुसखे खिलाती और दिन-दिन भर मालिश करती रहती। मैं १९३८ में छूट कर १९३९ में प्रेस कर्मचारियों की कान्फ्रेंस की अध्यक्षता के लिये लाहौर गया तो इन्द्रपाल खाट पर लेटे-लेटे बातचीत करने लायक हो गया था। वही पुरानी साहसपूर्ण बेपरवाही। देखते ही चिल्ला उठा, 'अरे-अरे नून-तम्बाकू बेचने वाले का बेटा आ गया! अरी जगदीश्वरी आटा-वाटा कुछ है तो छिपा दे नहीं तो रोटी खिलानी पड़ जायेगी।"

मेरे अनुरोध से वह और जगदीश्वरी लखनऊ आ गये थे। बहुत दिन तक बिजली-भाप से इलाज होता रहा। वह कुछ देर तक बैठने और लकड़ी पकड़कर लँगड़ा कर चलने भी लगा था। मैंने अपनी रिहाई के बाद १९३८ नवम्बर में एक मासिक पत्रिका

'विप्लव' का प्रकाशन आरम्भ किया था। १६३६ अक्तूबर मे 'विप्लव' का प्रकाशन हिन्दी और उर्दू दोनों मे हो रहा था। इन्द्रपाल उर्दू मे अनुवाद कर किताबत भी करता जाता पर कुछ ही समय काम करने से उसका सिर चकराने लगता था। १६४१ मे अंग्रेज सरकार ने विप्लव से तेरह हजार की जमानत माँग कर पत्र का प्रकाशन स्थगित कर दिया। इन्द्रपाल लाहौर लौट गया। कुछ और कातिबो को मिलाकर सहयोग से किताबत का काम चलाने लगा। उसकी अवस्था काफी सुधर गयी थी। लकडी पकडे धीमे-धीमे मील-डेढ मील चल आता था। एक लडका और लडकी भी हुये। बातचीत मे अपने विचारो का प्रचार भी करता ही रहता था। उसने दो छोटे-छोटे पैम्फलेट भी उर्दू मे प्रकाशित किये थे। १६४७ मे पजाब-विभाजन से उसे फिर बहुत भयकर मानसिक आघात लगा। लाहौर से दिल्ली तो पहुँच गया परन्तु वहाँ अस्पताल मे उसकी मृत्यु हो गयी। जगदीश्वरी दिल्ली के एक स्कूल मे सिलाई सिखाकर बच्चो को अपनी हिम्मत से पढा लिखा रही थी। अब भी वह चदौसी मे अध्यापिका का काम कर रही है। इन्द्रपाल ने यातना मे मौन शहादत निबाही तो जगदीश्वरी भी वैसी ही अजानी मौन वीरागना है।

आजाद का व्यक्तित्व

मेरे इस जाने के सम्बन्ध मे दल के दूसरे साथियो से बात करना भी आवश्यक था, विशेषकर सुरेन्द्र पाडे से। इस जाने की बात पाडे को इतनी पसन्द आयी कि वह भी जाने के लिये तैयार हो गया। उन दिनो इलाहाबाद, कटरे मे लिये एक मकान मे हम लोग प्राय ही बहस मे लगे रहते थे। बहस अपने उद्देश्यो के सैद्धान्तिक पक्ष पर तो होती ही थी, उसके साथ ही इस जाने की उपयोगिता और राउण्ड-टेबुल-कान्फ्रेंस द्वारा समझौते के सम्बन्ध मे भी होती। यह पहला ही अवसर था कि अंग्रेज सरकार ने काग्रेस का सार्वजनिक प्रभाव स्वीकार करके परामर्श के लिये काग्रेस को भी निमन्त्रण दिया था। सरकार के व्यवहार से काग्रेसियो मे ऐसी भावना पैदा हो गयी थी कि अंग्रेज सरकार अब स्वराज्य दे ही रही है। हम लोगो को भी ऐसा ही जान पड रहा था कि काग्रेस और अंग्रेज सरकार मे तो समझौता हो ही जायगा। हमारी स्थिति क्या होगी ? क्या हम फिर लडते ही रहेंगे ?

आजाद को अंग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अंग्रेज जब तक इस देश मे शासक के रूप मे रहे, हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिये। समझौते का कोई अर्थ नही है। अंग्रेज से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि अपना बोरिया-बिस्तर सम्भाल कर यहाँ से चल दे। यही भावना १६४२ मे 'क्विट इडिया' की माग या 'भारत छोडो' नारे मे प्रकट हुई थी। मैं और सुरेन्द्र भी सिद्धान्त रूप मे आजाद की बात मानते थे परन्तु यह नही चाहते थे कि काग्रेसी

नेताओ को अपना शत्रु बना लें। अभिप्राय था, देखो तो सही समझौता होता कैसा है ? यदि कांग्रेस उससे सतुष्ट हो जाती है तो हमें व्यक्तिगत रूप से फरार बने रह कर भी समझौते की प्रतिक्रिया और परिस्थिति देख कर चलना होगा। यह सब सैद्धान्तिक बात करते समय, अपने व्यक्तित्व की चिन्ता न करके भी यह खयाल आता ही था कि आखिर व्यक्तिगत रूप से हम क्या करेंगे, हमारा क्या होगा ?

मैं किसी समय आजाद से मजाक करने लगता, "भैया घबराते क्यों हो ! कांग्रेस और अग्रेज सरकार का समझौता हो जायगा तो फिर हमें फरार रहने की जरूरत नही होगी। तुम्हारा नाम खूब प्रसिद्ध हो चुका है। कांग्रेसी इतना तो सोचेंगे कि तुम थानेदार की पगडी और वर्दी मे खूब जचोगे। तुम्हें थानेदारी मिल ही जायगी।"

आजाद को इस बात से चिढ आती कि मैं उन्हें केवल थानेदारी के ही लायक समझता हू। क्रोध दिखलाते, "चल साले, तू बडा अफलातून है ! तू क्या बन जायगा ?"

मैं मजाक जारी रखता, "तुम थानेदार बनोगे तो हम लोगो की सिफारिश नही करोगे ? मैं कम से कम हेड कान्स्टेबल बनूंगा।" और पांडे की ओर सकेत कर कहता, क्योंकि पांडे के हाथ मे कोई पुस्तक थमी ही रहती थी, "पांडे के लिये तुम सिफारिश कर देना, यह मिडिल स्कूल का हेडमास्टर बन जायेगा।" मैं और पांडे दोनो अभी तक जिन्दा है। कांग्रेसी सरकार की कृपा से तो हम हेड कान्स्टेबल और मिडिल स्कूल के मास्टर भी न बन सके।

गोलमेज कान्फ्रेंस द्वारा समझौता हो जाने की सम्भावना की मानसिक उथल-पुथल के कारण हम लोग इलाहाबाद, कटरे के मकान मे एक तरह से शिथिलता के दिन बिता रहे थे या आराम से ही रह रहे थे। समय १६३१ जनवरी का ही था परन्तु हवा मे फागुन का फर्राटा और सुहानापन आ गया था। सडकों पर सूखे पत्ते झड-झड कर उडा करते थे। मुझे खूब याद है, हम लोग कहा भी करते थे कि इस बार हवा मे जाने क्या मस्ती भरी है। मकान की छत खपरैल की थी, जैसी कि इलाहाबाद मे साधारण स्थिति के मकानो की होती थी। खपरैल की सधो से हवा आती रहती और छत के ऊपर के नीम की पत्तिया और धूल भी गिरती रहती। हम लोग दरी या कम्बल बिछाये कुछ पढा करते या समझौते की सम्भावनाओ और हानि-लाभो पर बात करते रहते। एक पतीला था, उसमें खिचडी बना लेते। कभी कभी इसी खिचडी मे मास भी डाल लेते। आजाद ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिये मास के टुकडो को गाली दे, परे हटा देते और शेष का आहार कर लेते। आजाद मास न खाना चाहते थे पर दूसरे साथी खाना चाहते थे। मध्यम मार्ग यही था कि वे मास के टुकडे हटा कर शेष खिचडी खा लेते। आजाद को मास पसद नही था पर उन्हें छूत का भी डर नही था। आजाद ने सुबह दण्ड-सपाटे लगाना और साथियो से पजा लडाना भी शुरू कर दिया था।

पांडे एक डिब्बा च्यवनप्राश ले आया था। रात सोते समय डिब्बा आजाद के हाथ पड़ गया। पूछा, "अबे इसमें यह काला-काला क्या है ?"

पांडे ने बताया, "खाँसी की दवा है।"

मैंने चुटकी ली, "भैया, बहुत पौष्टिक और ताकत की दवा भी है।"

आजाद ने सन्देह प्रकट किया, "साला मल्हम-सा लगता है।"

मैंने बताया, "स्वाद भी बहुत अच्छा है।"

"सच ?" आजाद ने पूछा। थोड़ा-सा चाट कर देखा और बोले, "साला है तो मजेदार !" और पूरा डिब्बा खा गये।

पांडे कहता रहा, "भैया, दवाई है। नुक्सान कर जायगी।"

"चल ! चल !" आजाद ने एक न सुनी।

अगले दिन सुबह जब बहुत अधिक दवाई खा जाने का बुरा परिणाम सामने आया तो हम दोनों पर बहुत बिगड़े, "धत्त ! क्या वाहियात चीज खिला दी ! कहते थे ताकतवर है !" जितना ही हम हँसते, उतना ही आजाद दवाई की निन्दा कर उसे गाली देते जाते।

गोलमेज कान्फ्रेंस की आशाओं से देश के राजनैतिक वातावरण में जो प्रभाव पड़ा था उसके कारण हम लोगों को जान पड़ रहा था कि शायद अंग्रेज सरकार से लड़ने का काम स्थगित कर देना पड़ेगा। यह भी खयाल आने लगा कि उस अवस्था में हमारा भावी जीवन क्या और कैसा हो सकेगा ? ऐसी मानसिक अवस्था में आजाद कानपुर, सुतीगंज के मकान में आकर रात में बहुत देर तक अपने गत जीवन की बातें सुनाते रहते थे। कुछ आजाद से सुनी चर्चा और कुछ आजाद के बहुत समीपी साथी भगवानदास माहौर फरारी में उन्हें प्रायः स्थान देने वाले मास्टर रुद्रनारायण जी से सुनी बातों के आधार पर विश्वास है कि आजाद का जन्मस्थान मध्यभारत की झबुआ तहसील का भावरा ग्राम था। उस समय यह गाँव अलीराजपुर रियासत के अन्तर्गत था। आजाद के पिता का नाम पंडित सीताराम तिवारी था और माता जगरानी देवी थीं। तिवारी जी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी इसलिये उन्नाव जिले में अपने बहनोई शिवनन्दन और रामप्रसाद मिश्र के यहाँ रहते थे। बहुत निस्पृह और निष्ठावान ब्राह्मण थे। स्वभाव काफी तीखा और किसी की बात न सहने वाला था। किसी बात से चिढ़कर उन्नाव छोड़कर अलीराजपुर चले गये थे। वहाँ उन्होंने रियासत के एक बाग की रखवाली का काम आठ-दस रुपये मासिक पर कर लिया था। उस समय रियासतों में ऐसी ही तनखाहें हुआ करती थीं। अन्न-वस्त्र भी सस्ता था।

बचपन में आजाद भी बच्चे ही तो थे। खाने-खेलने का शौक भी था। खाने में उन्हें गुड़ बहुत पसन्द था और खेल था, देसी बारूद भर कर खिलौने की तोप चलाने का। पर इस खेल के लिये पैसे काफी न मिलते थे। एक दिन आजाद ने बाग को अपना ही समझकर कुछ फल तोड़ कर गुड़ और बारूद के लिये बेच लिये। पिता की दृष्टि में यह अक्षम्य अपराध था। आजाद पर इतनी मार पड़ी कि मां का कलेजा दहल गया और आजाद के स्वाभिमान ने उस घर में रहना ही स्वीकार नहीं किया। पढ़ने की भी इच्छा थी। मां ने बहुत यत्न से बचाकर रखी हुई अपनी पूँजी, ग्यारह रुपये आजाद को दे दी। आजाद भाग कर विद्या के केन्द्र काशी में पहुंच गये। वहां वे एक क्षेत्र में रह कर 'लघुकौमुदी' और 'अमरकोष' रट रहे थे कि कांग्रेस के सविनय कानून-भंग आन्दोलन ने उन्हें आकर्षित कर लिया। उस समय उनकी उमर तेरह-चौदह या पन्द्रह वर्ष रही होगी।

कांग्रेस के सविनय-कानून-भंग आन्दोलन में गिरफ्तार होकर जब वे अदालत में पेश किये गये तो उनके हाथ अभी इतने छोटे थे कि बन्द हथकड़ियों में से निकल आते थे। आजाद हथकड़ियों से हाथ निकाल-निकाल कर पुलिस वालों को चिढ़ाने में मजा लेते थे। परिणाम में उनके दोनों हाथों को मिलाकर हथकड़ी जड़ दी गयी। अदालत में मैजिस्ट्रेट ने उन्हें तिरस्कार से डाँटा, "अभी हाथ भर का तो नहीं, पर चला है आन्दोलन करने! भाग जा!"

आजाद ने मैजिस्ट्रेट को फटकार दिया। कानूनन आजाद को उस आयु में जेल की सजा नहीं दी जा सकती थी इसलिये ब्रिटिश न्याय की रक्षा के लिये तैनात मैजिस्ट्रेट ने उन्हें जेल में ले जाकर बारह बेंत लगा कर छोड़ देने की सजा दे दी। भुक्तभोगी जानते हैं कि ऐसी सजा छः मास की जेल की अपेक्षा अधिक कठिन होती है। मैजिस्ट्रेट का विचार था, इतने दण्ड से छोकरे को सुबुद्धि आ जायगी।

अदालत से मिली बारह बेंतों की सजा का अभिप्राय कुछ लोग नहीं भी समझ सकते हैं। जैसे स्कूल में शरारत करने पर बेंत लगा दिये जाते हैं, वही अभिप्राय अदालत से दी जाने वाली बेंतों की सजा का नहीं होता। अभियुक्त को जेल में ले जाकर पूरे कपड़े उतार दिये जाते हैं। उसे एक टिकटिकी अर्थात् काठ के आड़े खड़े चौखटे के साथ खड़ा कर उसके हाथ-पांव टिकटिकी से बांध दिये जाते हैं। चूतड़ और पीठ पर दवाई से भीगा मलमल का एक टुकड़ा डाल दिया जाता है। बेंत सदा पानी में भीगे पड़े रहते हैं। बेंत लगाने का काम सधा हुआ अभ्यस्त भंगी करता है। जेलर के गिनती पुकारते जाने पर भंगी खूब हाथ फैला-फैला कर, पूरा पैंतरा ले-लेकर बेंत को लहरा लहरा कर अभियुक्त के शरीर पर मारता है। पहली ही चोट में पीठ और चूतड़ से खून उछल आता है। तेरह-चौदह वर्ष के आजाद को इस प्रकार बारह बेंत लगाये गये।

आजाद हर बेंत की चोट पर 'वन्देमातरम्!' और 'महात्मा गांधी की जय!' चिल्लाते रहे।

आजाद बेंतों की सजा पाकर जेल से छूटे तो आन्दोलन में और भी तत्परता में भाग लेने लगे। उसी समय उनका सम्पर्क काकोरी दल के लोगों मन्मथनाथ गुप्त आदि से हो गया। काकोरी की प्रसिद्ध साहसपूर्ण रेल डकैती में सरकारी खजाना लूटने में आजाद ने भाग लिया था। गिरफ्तारियाँ आरम्भ होने पर आजाद फरार हो गये। लड़कपन में भी वे खूब चुलबुले और फुर्तीले थे इसलिये साथी उन्हें 'विचित्र सिल्वर' (पारा) के उपनाम से पुकारते थे। रामप्रसाद बिस्मिल के साथ उन्होंने कई राजनैतिक डकैतियों में भाग लिया था। क्रान्तिकारी लोग डकैती में न तो स्त्रियों पर हाथ उठाते थे, न उनके शरीर के गहने छीनते थे। ऐसे ही अवसर पर एक ठुकराइन अपने एक सन्दूक पर जम कर बैठ गयी थी। आजाद ने उसे कहा, "अम्मा, एक तरफ हट जाओ।" ठुकराइन के बात न मानने पर भी आजाद ने उस पर न चोट की और न धक्का देकर हटाया। चतुर ठुकराइन ने इन लोगों को जाते देख आजाद की कलाई पकड़ ली। आजाद भद्रता के विचार से उससे जोर-जबरदस्ती न कर मुँह ताकते खड़े रह गये। जब सब साथी बाहर आ गये, बिस्मिल ने आजाद को न पाकर भीतर जाकर देखा। आजाद भद्रता के नाते बुढ़िया के बंदी बने खड़े थे। बिस्मिल ने ठुकराइन की कलाई पर जोर से हाथ मार कर उन्हें छुड़ा कर डाँटा, "अच्छे गधे बन रहे थे तुम! मरवाओगे सब को!" तब कहीं आजाद को मुक्ति मिली।

आजाद ने बचपन में पढ़ पाने की इच्छा के अतिरिक्त अपने जीवन में कभी कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं बनायी। उस समय की अपनी समझ-बूझ और उस समय की परम्परा में आस्था के कारण उन्होंने शिक्षा का अर्थ समझा था—संस्कृत। आधुनिक आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में इस विद्या का कोई विशेष उपयोग न हो सकता था। एक बार राजनैतिक चेतना उत्पन्न हो जाने के बाद उन्हें देश की मुक्ति के लिए विदेशी शासन से लड़ने के अतिरिक्त कोई और इच्छा ही न रही थी। उनकी कल्पना में अपने जीवन की परिणति यही थी कि किसी न किसी दिन विदेशी सरकार की पुलिस से लड़ते हुये मारे जायेंगे। यह भी खयाल नहीं था कि गिरफ्तार हो जायेंगे तो अदालत में अपने बयानों से ही लड़ेंगे। बहुत स्पष्ट और दृढ़ इरादा था कि लड़ाई में मरना ही है। सदा ही कहा करते थे, "गिरफ्तार होकर अदालत में हाथ बाँधे बंदरिया का नाच मुझे नहीं नाचना है। आठ गोली पिस्तौल में हैं और आठ का दूसरा मैगज़ीन साथ है। पन्द्रह दुश्मन पर चलाऊंगा और सोलहवीं यहाँ।" और वे अपनी पिस्तौल की नली अपनी कनपटी पर छुआ देते थे।

उन दिनों राजनैतिक वातावरण सरकार-कांग्रेस समझौते की आशा से भरा था।

इस स्थिति का असर आज़ाद पर भी कैसे न होता ? एक रात वे कहने लगे, "कांग्रेस ने अगर समझौता कर ही लिया तो मैं पेशावर से परे सरहद पार निकल जाऊंगा। वज़ीरी और अफरीदी अंग्रेजों से कभी समझौता नहीं कर सकते। उन्हीं लोगों के साथ अंग्रेजों से लड़ कर रहूंगा। मोहन, ऐसे समय आदमी को अकेलापन खलता है। तुमने और टइय्या (प्रकाशवती) ने अच्छा किया कि साथी बन गये। जीवन की हर हालत का साथ तो स्त्री पुरुष में ही जम सकता है। मैं अब अगर सोचूं भी तो ऐसी स्त्री है कहां ? दीदी (सुशीला) को ही देखो; क्या मरगिल्ला-सा जिस्म है। दिमाग ही को लेकर कोई क्या करेगा। अलबत्ता भाभी है कुछ, पर वह भी नहीं। मैं तो ऐसी स्त्री से शादी करना चाहता हूं कि कांग्रेस वाले अंग्रेजों से समझौता कर भी लें तो हम सरहद पार चले जायं। दोनों के कंधों पर राइफलें हों और एक-एक बोरी कारतूस। जहां घिर जायें, वह राइफल भर-भर कर देती जाये और मैं दन-दनादन चलाता जाऊं। बस, इसी तरह समाप्त हो जायें।"

एक समय, बल्कि १६२८ तक आज़ाद की धारणा थी कि क्रान्तिकारियों के लिये ब्रह्मचर्य ही एकमात्र उचित मार्ग है। स्त्री का चुम्बक केवल उलझन और परेशानी का ही कारण होता है। मजाक में 'स्त्री' के लिये उन्होंने 'चुम्बक' ही पर्यायवाची शब्द चुना हुआ था। यों एक समय आज़ाद संस्कृत को ही सम्पूर्ण विद्या समझते थे परन्तु अनुभव और मानसिक विकास से उनका दृष्टिकोण विस्तृत हो गया था। ऐसे ही स्त्री के सम्बंध में भी आज़ाद की धारणा बहुत बदल गयी थी। वीरभद्र से नाराज़गी में प्रायः ही कहते थे, "साला जोरू को पर्दे में ऐसे बन्द रखता है जैसे वह इंसान नहीं, चोरी की चीज़ हो।"

आज़ाद ने अपनी फरारी के बहुत दिन झांसी के एक बहुत कलावंत मूर्तिकार मास्टर रुद्रनारायण जी के घर बिताये थे। उस घर पर आज़ाद को इतना विश्वास था कि उन्होंने अपना एकमात्र फोटो मास्टर साहब के आग्रह पर उनके यहां ही खिचवाया था। कारण यह था कि मास्टर साहब आज़ाद की मूर्ति बनाना चाहते थे। मूर्ति वे बना चुके हैं। इस मूर्ति को वे अपनी विशेष निधि समझते हैं।

आज़ाद प्रायः ही मास्टर साहब से झगड़ते कि वे भाभी (रुद्रनारायण जी की पत्नि) को सार्वजनिक जीवन में काम करने का अवसर नहीं देते। झांसी में पुलिस की सरगर्मी अधिक हो जाने पर सदेश भेजने और मंगवाने का काम भी वे प्रायः एक महरी, गुनिया से ही लेते थे। गुनिया के युवा और रूप-रंग से अच्छी होने के कारण, जैसा कि प्रायः होता है, लोग उसके सम्बन्ध में बातें बनाने से भी न चूकते थे परन्तु आज़ाद को गुनिया की ऐसी आलोचना से कोई मतलब न था। वे कहते थे, " चाहे

जो कह, हम जानते हैं, वह दगाबाज नहीं भरोसे की है, इसलिये सच्चरित्र है।" १९३०-३१ में आज़ाद सच्चरित्र का अर्थ केवल यौन सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं मानते थे। निष्ठा, साहस, दायित्व, निर्लोभ आदि का महत्त्व उनकी दृष्टि में कहीं अधिक था।

विश्वनाथ वैशम्पायन ने आज़ाद के नैतिक विचारों पर एक लेख में यह लिखा था कि आज़ाद दल के लोगों का स्त्रियों से सम्पर्क और दल में स्त्रियों का सम्मिलित होना दल के लिये हानिकारक समझते थे। वैशम्पायन के अनुसार आज़ाद कहते थे— 'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।" आज़ाद का अंत तक इतना मूढ़ और सकीर्ण विचार समझना उनके साथ घोर अन्याय है। आज़ाद का इतना बौद्धिक विकास हो चुका था कि वे पुरुषों और स्त्रियों के चरित्रों को सामाजिक परिस्थितियों का ही परिणाम समझते थे। स्त्रियों और पुरुषों के चरित्र एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। समाज में पुरुष की प्रधानता होने पर स्त्री के चरित्र की शिथिलता पुरुष की उच्छृङ्खलता का ही परिणाम होगी। स्त्री को यदि पुरुष के साथ सभी धोखा करना पड़ता रहा है तो स्त्री के ऐसे व्यवहार के लिये पुरुष का दमन ही उत्तरदायी था। आज़ाद की यह धारणा कभी नहीं थी कि स्त्रियों का सदा दमन और संदेह की कैद में रखा जाये। पुरुष यदि स्त्रियों के प्रति आकर्षित होकर असंयम का व्यवहार करते हैं तो उसके लिये स्त्रियों को उनके स्वाभाविक सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक अवसरों और अधिकारों से वंचित कर दिया जाये, यह आज़ाद नहीं सह सकते थे। आज़ाद इतना भी समझते थे कि यदि स्त्री का आकर्षण दल के किसी साथी का पथभ्रष्ट कर सकता है तो स्वभाव की कायरता, मृत्यु का भय, धन का लोभ और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा या ईर्ष्या व्यक्ति को उससे कहीं अधिक नीचे गिरा सकती है। स्त्री की दृष्टि में आदर और महत्त्व पाने की इच्छा पुरुष को साहस भी दे सकती है। यदि पुरुष स्त्री लोलुपता से पथभ्रष्ट होता है तो इसका दण्ड स्त्री को नहीं देना चाहिये।

वैशम्पायन ने 'नया समाज' के अपने लेख में आज़ाद के जीवन की एक घटना का अतिशयोक्ति से चित्रित करके बताया है कि आज़ाद इस अनुभव के कारण स्त्रियों को अविश्वास के योग्य समझते थे। यह तो हुई एक घटना परन्तु आज़ाद ने अपने जीवन में कायर, लम्पट और विश्वासघाती स्त्रियाँ तो एक-दो ही देखी होंगी, पुरुष कई देखे थे। ऐसी अवस्था में वे पुरुषों को ही दल के कार्य के योग्य कैसे मान सकते थे। बम्बई लैमिंगटन रोड की घटना में दुर्गा भाभी ने संकेत पाते ही भरी भीड़ में सरे बाज़ार गोली चला दी परन्तु उस घटना की योजना के लिये जिम्मेदार पुरुषों की निष्ठा या साहस की कमी से बात कुछ भी नहीं बनी अथवा स्वयं वैशम्पायन के कानपुर में

मुलाकात के विषय मे अपनी आत्मकथा मे स्वयं भी जिक्र किया है कि " आजाद मुझ से मिलने के लिये इसलिये तैयार हुआ था कि हमारे जेल से छूट जाने से आमतौर पर आशाएँ बँधने लगी थी कि सरकार और काग्रेस मे कुछ न कुछ समझौता होने वाला है। वह जानना चाहता था कि अगर कोई समझौता हो तो उसके दल के लोगो को भी कोई शान्ति मिलेगी या नही ? क्या उनके साथ तब भी विद्रोहियों का सा बर्ताव किया जायगा ? जगह-जगह उनका पीछा उसी तरह किया जायगा। उनके सिरो के लिये इनाम घोषित होते ही रहेगे और फासी का तख्ता हमेशा लटकता ही रहेगा या उनके लिये शांति के साथ काम धन्धे मे लग जाने की भी कोई सम्भावना होगी ? उसने कहा कि खुद मेरा तथा मेरे दूसरे साथियो का यह विश्वास हो चुका है कि आतकवादी तरीके बिलकुल बेकार है, उसमे कोई लाभ नही है। हाँ, वह यह मानने के लिये तैयार नही था कि शातिमय साधनो से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायगी। उसने कहा, आगे कभी सशस्त्र लडाई का मौका आ सकता है मगर यह आतकवाद न होगा।"* इसी प्रसग मे पडित जी आगे लिखते हैं, 'मुझे आजाद से यह सुन कर खुशी हुई थी और बाद मे उसका सुबूत भी मिल गया कि आतकवाद पर से उन लोगो का विश्वास हट गया। अवश्य ही इसके यह मान नही है कि पुराने आतकवादी और उनके नये साथी अहिसा के हामी बन गये हैं या ब्रिटिश सरकार के भक्त बन गये है। हाँ, अब वे आतकवादी भाषा मे नही सोचते। मुझे तो ऐसा मालूम होता है उनमे से बहुतो की मनोवृत्ति निश्चित रूप से फासिस्ट बन गयी थी।*

नेहरू जी की 'मेरी कहानी' से इस उद्धरण की चर्चा करते समय यह याद रखना जरूरी है कि पुस्तक ब्रिटिश शासनकाल मे लिखी गयी थी। सब बाते वे स्पष्ट लिख भी नही सकते थे। यह पुस्तक पडित जी ने सम्भवत १९३४ या ३५ मे लिखी होगी। आजाद उस समय शहीद हो चुके थे। नेहरू जी ने आजाद से भेट के कुछ दिन बाद हुई उनकी और मेरी मुलाकात की बात सावधानी से नही लिखी। याद न रहने की कोई सम्भावना नहीं थी क्योकि १९३८ मे मेरी उनसे भुवाली मे भेट हुई तब उन्हे हमारी मुलाकात याद थी। मुझे याद है, यह पुस्तक पहली बार अग्रेजी मे १९३७ मे मैंने नैनी जेल मे पढी थी। तब भी बात मुझे खटकी थी, खासकर नेहरू जी का हम लोगो की मनोवृत्ति को फासिस्ट बताना।

आजाद ने नेहरू जी से मुलाकात के बाद जब इस घटना की बात हम लोगो को कटरे के मकान मे सुनाई तो उनके भी होठ खिन्नता से फडफडा रहे थे और उन्होंने कहा था, 'साला हम फासिस्ट कहता है।'" आजाद का अभिप्राय गाली देने का

* 'मेरी कहानी,' प० जवाहरलाल नहरू, आठवा हिन्दी सस्करण, पृष्ठ २९९

शहीद चन्द्रशेखर आजाद
की
माता जगरानी देवी
और
भावरा मे उनकी झोपडी
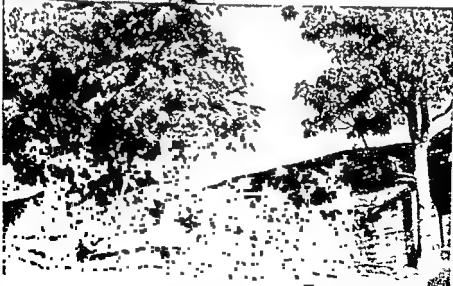
चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के बाद पुलिस द्वारा लिया हुआ चित्र

नहीं था। बचपन की सगति के प्रभाव से कुछ शब्द उनकी जबान पर तकिया कलाम के रूप में चढ गये थे। गम्भीरता में या क्रोध में गाली कभी नही देते थे। यों बात-चीत में अभ्यास और असावधानी में गालियाँ मुँह से झड जाती थीं। मेरा अनुमान है आजाद ने यह नही कहा होगा कि उनका तथा उनके साथियों का विश्वास बदल चुका है कि उनके दल के आतकवादी तरीके बिलकुल बेकार थे। उन्होंने अनुमानत कहा होगा, 'हम आतकवादी नही हैं। हम सशस्त्र क्रांति की चेष्टा कर रहे हैं।' यह बात पंडित जी की अगली पक्तियों में भी स्पष्ट हो जाती है, 'वह यह मानने के लिये तैयार नही था कि शांतिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायगी। उसने कहा, आगे कभी सशस्त्र लडाई का मौका आ सकता है।' आज़ाद के यह शब्द ही हमारे दल के विचार थे। नेहरू जी ने आज़ाद की बातों में फासिज्म की गंध कैसे पायी, यह समझा नहीं जा सकता। फासिज्म तो शासन के दमन पर आश्रित पद्धति है। हम लोग तो शासन करने का स्वप्न देख नहीं रहे थे बल्कि ब्रिटिश शासन के दमन या फासिज्म का विरोध कर रहे थे।

हि०स०प्र०स० अपना राजनैतिक और शासन सम्बन्धी दृष्टिकोण अपने घोषणा-पत्र 'फिलासफी आफ दी बम' द्वारा जनवरी १६३० में स्पष्ट कर चुका—'क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश की जनता की मुक्ति केवल क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में सशस्त्र संघर्ष ही नही है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य विदेशी पूँजीवाद को समाप्त करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्त करके आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषकों के हाथ से शासन शक्ति लेकर मजदूर श्रेणी के शासन की स्थापना ही है।'' यह थे आज़ाद के विचार जिन्हें पंडित नेहरू ने फासिस्ट प्रवृत्ति समझ लिया था। आज़ाद अंग्रेजी में बात नही कर सकते थे शायद इसलिये नेहरू जी उनकी बात समझ नहीं पाये। आज़ाद ने नेहरू जी से बातचीत में विशेष अनुरोध यह किया था कि गांधी जी सरकार से समझौते की शर्तों में लाहौर षड्यन्त्र केस के लोगों–भगतसिंह आदि–की रिहाई की बात भी रखें। यह माँग केवल आजाद की नहीं थी बल्कि जनता की थी। नेहरू जी ने स्पष्ट इन्कार कर दिया था कि गांधी जी ऐसी शर्त नही रखेंगे।

यहाँ यह चर्चा भी अप्रासंगिक नहीं होगी कि लाहौर कांग्रेस में जब गांधी जी ने वाइसराय की गाडी के नीचे विस्फोट करने वाले लोगों को कायर और उनके कार्य को जघन्य कह कर उनकी निन्दा का प्रस्ताव पेश किया था तो कांग्रेस अधिवेशन में उस प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना ही बहुत कठिन जान पड रहा था। ऐसी अवस्था

चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के बाद पुलिस द्वारा लिया हुआ चित्र

लौट कर मैंने बातचीत का ब्यौरा आज़ाद को बताया तो उन्हें काफी संतोष हुआ। उस रात यह तय हो गया कि पहले मैं और सुरेन्द्र पाण्डे, चौधरी रामधनसिंह द्वारा सीमान्त पर बनाये गये सूत्र से रूस चल दें। यदि कांग्रेस और सरकार के समझौते का रूप ऐसा हुआ कि उसमें हमारे साथियों का रहना असम्भव हो जाय और गांधी जी के प्रभाव के कारण हमारे सशस्त्र आन्दोलन को भी बहुत समय के लिए स्थगित करना आवश्यक हुआ तो आज़ाद भी प्रकाशवती या दूसरे रूस जाना चाहने वाले साथियों सहित उसी मार्ग से आ जायेंगे। प्रकाशवती से आज़ाद इस विषय में कानपुर में पहले ही बात कर चुके थे।

लगभग तीसरे दिन शिवमूर्तिसिंह जी ने मुझे पन्द्रह सौ रुपये देकर कहा कि शेष के लिये नेहरू जी प्रबन्ध कर रहे हैं। कटरे के मकान में लौट कर यह रुपया मैंने आज़ाद को सौंप देना चाहा। उन्होंने कहा, "नहीं, तुम्हीं रखो।" इस विचार से कि किसी दुर्घटना में सभी रुपया एक साथ न चला जाये, पाँच सौ मैंने उनकी जेब में डाल ही दिये। उस रात प्रायः रूस जाने के सम्बन्ध में ही बातें होती रहीं।

हमने सोचा बीहड़ इलाकों में से जाते समय सौ तरह की बीमारी-शीमारी की मुसीबत आ सकती है। कुछ आवश्यक दवाइयाँ लेते जाएँगे। पंजाब में और आगे सर्दी ज्यादा होगी। दो स्वेटर भी खरीद लें।

दूसरे दिन प्रातः सुरेन्द्र पाण्डे और मैं स्वेटरों के लिये कटरा से चौक जाने के लिये तैयार हुए। आज़ाद ने कहा, "मुझे एलफ्रेड पार्क में किसी से मिलना है। साथ ही चलते हैं। तुम लोग आगे निकल जाना।"

हम तीनों एलफ्रेड पार्क के सामने से साइकलों पर जा रहे थे। एक साइकल पर सुखदेवराज पार्क में जाता हुआ दिखाई दिया। मैं समझ गया कि भैया को राज से मिलना है। हम दोनों से वे प्रायः अलग-अलग ही मिलते थे। भैया पार्क में चले गये और पाण्डे और मैं सीधे चौक की ओर।

चौक में हम लोगों ने आवश्यक दवाइयाँ ले ली। एक दुकान में हम लोगों ने दो स्वेटर खरीदे ही थे कि लोगों को चिल्लाते हुए सुना, "कम्पनी बाग (एलफ्रेड पार्क) में पुलिस के साथ किसी की जबरदस्त गोली चल रही है।"

पाण्डे ने उन लोगों को सम्बोधन कर घबराहट से पूछा, "क्या हुआ? किसमें गोली चली?"

एलफ्रेड पार्क में गोली चल जाने की बात सुनकर मेरा भी मन काँप उठा परन्तु पाण्डे का हाथ दबा कर मैंने कहा, "Don't be excited (उत्तेजित मत हो!)" हम लोग समझ गये कि एलफ्रेड पार्क में पुलिस की गोली किसमें चली होगी। पाण्डे

में गांधी जी ने धमकी दी थी कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जायगा तो वे कांग्रेस को छोड़ देंगे। ऐसे व्यवहार को जनवादी तरीका नहीं कहा जा सकता। नेहरू जी ने गांधी जी के उस संकट के समय उनका साथ दिया था। नेहरू जी अपनी भावना जनवादी होते हुए भी सदा ही गांधी जी के संगठित दल का ही साथ देते रहे थे। समालिनी ने 'फासिस्ती' शब्द दल या संगठन के शासन' के अभिप्राय से ही चुना था। शब्द की मूल भावना और अभिप्राय में गांधी जी और नेहरू जी ही फासिज्म के सहधर्मी जान पड़ेंगे।

आजाद को इस बात का बहुत कलख था कि नेहरू जी ने उन्हें फासिस्ट कहा। उन्होंने कहा, मोहन एक दिन तुम जाकर पंडित नेहरू से मिलो।" मैंने प्रायः फरवरी के दूसरे-तीसरे सप्ताह में शिवमूर्तिसिंह जी से कह कर नेहरू जी से समय निश्चित किया और सध्या समय आनन्द भवन गया। पंडित जी समाचार पाकर बाहर आ गये। हम दोनों दीवार के साथ लगे नींबू के वृक्षों की बाढ़ के साथ-साथ टहलते हुये बात करने लगे। पंडित नेहरू ने आतंकवाद को व्यर्थ बताया। मैंने यही कहा कि हम लोग आतंकवादी नहीं हैं। हम व्यापक सशस्त्र क्रान्ति का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा प्रयत्न भी देश की मुक्ति के लिये ही संघर्ष का भाग है। हम सरकार के दमन से लोहा लेकर उसे बताना चाहते हैं कि उसकी शस्त्र-शक्ति से भी हम भयभीत नहीं हैं। हमारा दृष्टिकोण समाजवादी है, आतंकवादी नहीं। अन्य बातों के साथ इसी प्रसंग में मैंने अनुभव प्राप्त करने के लिये रूस जाने की इच्छा का भी जिक्र किया और नेहरू जी से आर्थिक सहायता का अनुरोध भी किया।

नेहरू जी ने मुझे बताया कि अपने पिता की मृत्यु के बाद से वे अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में स्वयं ही चिन्तित थे। सोच रहे थे कि अपने बहुत फैले हुए खर्च को कम कर दें या आमदनी के लिये वकालत शुरू कर दें। आर्थिक सहायता दे सकना उनके बस की बात नहीं। मैंने कहा, 'ऐसे मामलों में किसी एक व्यक्ति की जेब पर तो भरोसा किया नहीं जा सकता। राष्ट्रीय काम तो सामूहिक सहायता से चलते हैं। आपका प्रभाव इसमें सहायक हो सकता है।'

कुछ सोच कर नेहरू जी ने कहा, "आतंकवादी काम के लिये तो मैं कुछ भी सहायता नहीं करूँगा। हाँ, रूस जाने वाली बात के लिये मैं सोचूँगा।" व्यक्तिगत रूप से उन्होंने मुझे (वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम-विस्फोट का मुकद्दमा मेरे विरुद्ध होने के कारण) रूस या विदेश चले जाने की ही राय दी। उन्होंने पूछा कि इसके लिये कितना रुपया चाहिये। मैंने अनुमान से पाँच छः हजार की रकम बता दी। नेहरू जी ने कहा, इतना तो बहुत है पर जो कुछ हो सकेगा करेंगे और शिवमूर्तिसिंह की मार्फत उत्तर देंगे।

लौट कर मैंने बातचीत का ब्योरा आजाद को बताया तो उन्हें काफी संतोष हुआ। उस रात यह तय हो गया कि पहले मैं और सुरेन्द्र पांडे, चौधरी रामधनसिंह द्वारा सीमान्त पर बनाये गये सूत्र से रूस चल दें। यदि कांग्रेस और सरकार के समझौते का रूप ऐसा हुआ कि उसमें हमारे साथियों का रहना असम्भव हो जाये और गांधी जी के प्रभाव के कारण हमारे सशस्त्र आन्दोलन को भी बहुत समय के लिये स्थगित करना आवश्यक हुआ तो आजाद भी प्रकाशवती या दूसरे रूस जाना चाहने वाले साथियों सहित उसी मार्ग से आ जायेंगे। प्रकाशवती से आजाद इस विषय में कानपुर में पहले ही बात कर चुके थे।

लगभग तीसरे दिन शिवमूर्तिसिंह जी ने मुझे पन्द्रह सौ रुपये देकर कहा कि शेष के लिये नेहरू जी प्रबन्ध कर रहे हैं। कटरे के मकान में लौट कर यह रुपया मैंने आजाद को सौंप देना चाहा। उन्होंने कहा, "नहीं, तुम्हीं रखो।" इस विचार से कि किसी दुर्घटना में सभी रुपया एक साथ न चला जाये, पांच सौ मैंने उनकी जेब में डाल ही दिये। उस रात प्रायः रूस जाने के सम्बन्ध में ही बातें होती रहीं।

हमने सोचा, बीहड़ इलाकों में से जाते समय सौ तरह की बीमारी-शोमारी की मुसीबत आ सकती है। कुछ आवश्यक दवाइयां लेते जाएंगे। पंजाब में और आगे सर्दी ज्यादा होगी। दो स्वेटर भी खरीद लें।

दूसरे दिन प्रातः सुरेन्द्र पाण्डे और मैं स्वेटरों के लिये कटरा से चौक जाने के लिये तैयार हुए। आजाद ने कहा, "मुझे एलफ्रेड पार्क में किसी से मिलना है। साथ ही चलते हैं। तुम लोग आगे निकल जाना।"

हम तीनों एलफ्रेड पार्क के सामने से साइकलों पर जा रहे थे। एक साइकल पर सुखदेवराज पार्क में जाता हुआ दिखाई दिया। मैं समझ गया कि भैया को राज से मिलना है। हम दोनों से वे प्रायः अलग-अलग ही मिलते थे। भैया पार्क में चले गये और पांडे और मैं सीधे चौक की ओर।

चौक में हम लोगों ने आवश्यक दवाइयां ले लीं। एक दुकान से हम लोगों ने दो स्वेटर खरीदे ही थे कि लोगों को चिल्लाते हुए सुना, "कम्पनी बाग (एलफ्रेड पार्क) में पुलिस के साथ किसी की जबरदस्त गोली चल रही है।"

पांडे ने उन लोगों को सम्बोधन कर घबराहट से पूछा, "क्या हुआ? किससे गोली चली?"

एलफ्रेड पार्क में गोली चल जाने की बात सुनकर मेरा भी मन कांप उठा परन्तु पांडे का हाथ दबा कर मैंने कहा, "Don't be excited (उत्तेजित मत हो!)" हम लोग समझ गये कि एलफ्रेड पार्क में पुलिस की गोली किससे चली होगी। पांडे

यों तो मैंने उत्तेजित न होने के लिये कहा पर मैं स्वयं ही घबराया उठा था। अपनी साइकल घुमाते हुए मैंने पांडे से कहा, "मैं वहीं जा रहा हूँ।"

"जरा सुनो!" पांडे मेरी साइकिल का हैंडल थाम कर बोला, "उधर वहाँ पहुँचने तक तो सब कुछ हो चुका होगा। तुम भी समझ से काम लो। वहाँ जाकर क्या करोगे? अब तो वहाँ जाकर अपने आप को पुलिस के हाथों सौंप देना ही होगा।"

बात पांडे की ठीक थी परन्तु ऐसे जान पड़ा कि अँधेरा-सा छा गया हो। फिर भी हम लोग रह नहीं सके और कुछ चक्कर देकर उस ओर गये ही। पुलिस लोगों को पार्क के भीतर जाने से रोक रही थी। पार्क के गिर्द सड़कों पर बहुत भीड़ जमा थी। भीड़ के लोगों की बातों से निश्चय हो गया कि गोली क्रान्तिकारियों और पुलिस में चली थी। भीड़ के अनुसार क्रान्तिकारी दो थे और पुलिस के साठ-सत्तर सिपाही। क्रान्तिकारी एक पेड़ के नीचे बैठे बात कर रहे थे। पुलिस ने उन्हें सब ओर से घेर कर ललकारा। दोनों ओर से गोली चलने लगी।

उस समय यू० पी० में पुलिस का इन्सपेक्टर जनरल हालिन्स था। हालिन्स ने अंग्रेजी पत्रिका 'Men Only' के अक्तूबर १९५४ के अंक में भारत में अपनी नौकरी के सस्मरणों के प्रसंग में आजाद और पुलिस की इस लड़ाई का जिक्र किया है। इस लेख के अनुसार आजाद की पहली गोली अंग्रेज पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट नाटबावर की बाँह में लगी। पुलिस के सिपाही झाड़ की झाड़ियों के पीछे छिप कर आजाद और उनके साथी पर गोलियाँ चलाने लगे। पुलिस इन्सपेक्टर विशेश्वरसिंह निशाना लेने के लिये झाड़ी के ऊपर से झाँक रहा था। उस समय तक आजाद के शरीर में दो-तीन गोलियाँ धँस जाने से खून बह रहा था। ऐसी हालत में भी आजाद ने इन्सपेक्टर के झाँकते हुये चेहरे का निशाना लेकर जो गोली चलायी उससे विशेश्वरसिंह का जबड़ा टूट गया। हालिन्स ने अपने सस्मरण में आजाद के इस निशाने की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'यह आजाद का अन्तिम परन्तु बहुत प्रशंसा के योग्य निशाना था।'

हालिन्स ने तो यही लिखा है कि आजाद पुलिस की गोलियों से मारे गये परन्तु लड़ाई के समय मौजूद लोगों का कहना है कि दोनों क्रान्तिकारियों में से एक जख्मी होकर लड़ता रहा। दूसरा भाग गया। लड़ने वाले ने आखिरी गोली अपनी कनपटी पर मार ली। उसके गिर पड़ने पर भी पुलिस ने तुरन्त उसके समीप आने का साहस न किया। कई गोलियाँ उसके शरीर में मार कर निश्चय कर लिया कि वह निष्प्राण हो चुका है। पुलिस शरीर को अपनी गाड़ी में उठा कर ले गयी। पुलिस की ओर से इस विषय में छपी सूचना में यह भी कहा गया था कि आजाद की जेब में पाँच सौ रुपए

के नोट पाये गए थे। यह रुपया पंडित नेहरू से मिले डेढ़ हजार में से ही था।

इलाहाबाद के राष्ट्रीय भावना रखने वाले और कांग्रेसी लोग आज़ाद का अंतिम संस्कार उचित ढंग से करना चाहते थे। नेहरू जी की पत्नी स्वर्गीय कमला नेहरू और बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने भी अंतिम संस्कार के लिए आज़ाद का शरीर पुलिस से पाने का बहुत यत्न किया। पुलिस प्रदर्शन की आशंका से उनका शरीर देने में आनाकानी कर रही थी। अंत में एक व्यक्ति को आज़ाद के भाई के रूप में उनके शव की मांग करने के लिए पेश किया गया। आज़ाद का शरीर मिलने पर पाया गया कि उनकी दायीं कनपटी पर गोली का घाव था और घाव के चारों ओर बाल जले हुये थे। यह इस बात का प्रमाण था कि कनपटी का घाव, पिस्तौल कनपटी पर रख कर गोली मारने से हुआ था। गोली दूर से आकर लगने पर कनपटी पर बालों के जलने का कोई कारण न होता। संस्कार गंगा तट पर किया गया। शव का जुलूस न निकाले जाने की खास ताकीद थी फिर भी अर्थी के साथ बड़ी संख्या में लोग एकत्र हो गये थे और चिता की भस्म की चुटकी-चुटकी श्रद्धा से उठा ले गये।

एलफ्रेड पार्क में जिस वृक्ष के नीचे आज़ाद ने वीरगति प्राप्त की थी, घटना के दूसरे दिन से बहुत से लोग क्रांतिकारी राष्ट्रीय वीर की स्मृति में उस पेड़ की पूजा करने लगे। पेड़ के तने में बहुत सी गोलियां धँस गई थीं। श्रद्धालु लोगों ने पेड़ के तने पर सिंदूर पोत दिया और वृक्ष के नीचे धूप-दीप जलाकर फूल चढ़ाने लगे। शीघ्र ही वहाँ पूजा करने वालों की भीड़ अधिक हो गई। ब्रिटिश सरकार को यह असह्य था। सरकार ने वह पेड़ कटवा दिया परन्तु जनता तभी से एल्फ्रेड पार्क को आज़ाद पार्क पुकारने लगी थी और पार्क का यही प्रचलित नाम हो गया था। कई दूसरे नगरों में भी लोगों ने अपने चौकों या पार्कों के नाम आज़ाद चौक, आज़ाद पार्क रख लिये हैं। लाहौर कांग्रेस में क्रांतिकारियों के कामों की निन्दा का प्रस्ताव पास करवाने वाले नेताओं के लिए, यदि यह प्रस्ताव उन लोगों ने ब्रिटिश सरकार को खुश करने के लिए नहीं बल्कि वास्तविक निष्ठा से पास किया था, जनता की यह भावना असह्य ही रही होगी। शायद इसीलिये कांग्रेस शासन में इलाहाबाद के पुराने एल्फ्रेड पार्क पर 'मोतीलाल नेहरू स्मारक' का पत्थर या पट्ट लगा दिया गया है परन्तु जनता में अब भी आज़ाद पार्क नाम ही चालू है। क्रांतिकारियों के प्रति श्रद्धा रखने वाले लोगों ने अपने व्यय से उस पार्क में आज़ाद की एक छोटी मूर्ति भी बनवा दी है।

एलफ्रेड पार्क में आज़ाद को अकेले लड़ते छोड़ कर भाग जाने वाला साथी सुखदेवराज था। मुझे और दूसरे साथियों को भी सुखदेव का यह काम बहुत ही निन्दनीय लगा था। राज के लिए भाग आना सम्भव इसलिए हो सका कि आज़ाद लड़ते रहे और

पुलिस का ध्यान उनकी ओर ही केन्द्रित रहा। पुलिस का ध्यान आज़ाद की ओर चाहे जितना भी केन्द्रित रहा हो यह बात जरूर विस्मय की है कि भागते हुए सुखदेवराज पर किसी भी पुलिस वाले ने, यदि पुलिस काफी संख्या में थी, गोली क्यों नहीं चलायी!

इस घटना के बारे में १९३८ में सुखदेवराज से बातचीत हुई थी। एलफ्रेड पार्क की चर्चा चलने पर उसने बताया था कि आज़ाद ने ही उससे कह दिया था, "मैं तो लडूंगा, तुम बचने की कोशिश करो। इसलिए वह भाग आया। आज़ाद ने ऐसा जरूर कहा होगा पर 'साथी' का भी तो कुछ कर्त्तव्य होता है। उसी वर्ष (१९३१) मई में सुखदेवराज लाहौर में गिरफ्तार हो गया। उसकी गिरफ्तारी के समय भी ऐसी ही घटना हुई। वह साथी जगदीश के साथ शालीमार बाग में पहचान लिया गया। पुलिस से घिर जाने पर जगदीश लडता हुआ शहीद हो गया। सुखदेवराज ने भाग सकने की कोशिश की परन्तु रास्ता न पाकर हथियार डाल दिये और गिरफ्तार हो गया। सुखदेवराज को भी दूसरे लाहौर षड्यन्त्र के साथियों के साथ रखा गया था। साथियों को उसके प्रति इतनी विरक्ति थी कि आपस में कभी निभ न सकी। सुखदेवराज दरखास्त देकर जेल में अलग रहने लगा था। यह वृत्त दूसरे लाहौर षड्यन्त्र के साथियों के वर्णन के अनुसार है।

सुखदेवराज की दूसरी बात का महत्त्व बन गया। एलफ्रेड पार्क में आज़ाद की उपस्थिति का समाचार पुलिस को देकर विश्वासघात किस व्यक्ति ने किया यह प्रश्न लोगों को अभी तक परेशान किए है। राज सुखदेवराज ने बताया था जिस समय वह और आज़ाद पार्क में पेड़ के नीचे बैठे थे, आज़ाद ने पार्क के बाहर म्योर कालेज के पास जाती सड़क की ओर संकेत किया "जान पड़ता है वीरभद्र जा रहा है। उसने हम लोगों को तो नहीं देखा।" सुखदेवराज वीरभद्र को पहचानता न था। राज ने यह बात अन्य लोगों को भी बताई है। इस बात से वीरभद्र पर आज़ाद के प्रति विश्वासघात के सदेह का सूत्रपात हो गया। इस संदेह के लिए एक आधार यह भी मान लिया गया कि घटना के दिन प्रात ६ बजे वीरभद्र कानपुर से इलाहाबाद पहुँचा था।

सुखदेवराज के अनुसार आज़ाद को दूर सड़क पर एक व्यक्ति वीरभद्र जैसा लगा था परन्तु निश्चय नहीं था। यह भी निश्चय न था कि उस व्यक्ति ने उन्हें देख लिया था। आज़ाद को ऐसा निश्चय और वीरभद्र पर संदेह होता तो वे स्थान बदल लेते। वीरभद्र ने 'आज' और 'दिनमान' पत्रों में प्रकाशित अपने लेखों में स्वीकार किया है कि आज़ाद और उसके बीच कुछ कारणों से गलतफहमी पैदा हो गई थी। वह आज़ाद से बात करने की इच्छा से २७ फरवरी प्रात ६ बजे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँचा था। उसे आशा थी, आज़ाद इलाहाबाद में हैं परन्तु उनका स्थान या मिल सकने का सूत्र मालूम न था। वीरभद्र की यह बात सही है। वैशम्पायन ने भी स्वीकार

किया है कि उस समय वीरभद्र का सम्पर्क आजाद और हम लोगों से न रहा था। वीरभद्र स्टेशन से अपने परिचय के स्थान पर गया और ६ बजे आजाद तक सन्देश भिजवाने के प्रयत्न के लिए एक पुराने विश्वस्त साथी के मकान की ओर निकला। तब तक एलफ्रेड पार्क में घटना हो चुकी थी। आजाद साढ़े आठ के लगभग एलफ्रेड पार्क में किस स्थान पर होंगे, यह सूचना वीरभद्र को किस प्रकार हो सकती थी? मैं और सुरेन्द्र पाण्डे आजाद के साथ ही रहते थे। रात में साथ थे। पार्क के फाटक तक साइकिलों पर उनके साथ आये थे। हम सामने से आता राज दिखायी दिया। आजाद उसके साथ पार्क में चले गए। तब तक हमें भी मालूम न था कि वे राज से पार्क में भेंट के लिये आये हैं।

शिवचरण का हम लोगों से सम्बन्ध था और पुलिस को उस पर सन्देह भी था। पुलिस रिकार्ड के अनुसार शिवचरण के मकान पर नजर रखने की ड्यूटी सी० आई० डी० कान्स्टेबल भूरेसिंह की थी। भूरेसिंह ने वैशम्पायन को शिवचरण के जीने के समीप साइकिल रखकर जीना चढ़ते देखा। वह वैशम्पायन को पहचानता न था पर उसे नौजवान की कमर में पिस्तौल या रिवाल्वर होने का सन्देह हुआ। वह नौजवान की साइकिल के समीप चौकस खड़ा रहा। नौजवान लौटकर साइकिल पर चढ़ने लगा तो भूरेसिंह ने पीछे से उसे कौली में जकड़ कर पटक दिया। भूरेसिंह कद्दावर तगड़ा अखाड़िया जवान था। वैशम्पायन औसत से छोटा कद और दुबला। भूरेसिंह ने रिवाल्वर नौजवान की कमर से खींच लिया और अकेला उसे बाँह से पकड़े थाने तक ले गया।

इन्सेक्टर शम्भूनाथ ने नौजवान वैशम्पायन से प्रश्न किया, "साहबजादे, आप के पास पिस्तौल का लाइसेंस है? आप कौन हैं?" वैशम्पायन ने स्वयं ही अपना परिचय दिया। भूरेसिंह ने निरस्त्र होकर भी साहस और चातुर्य से सशस्त्र क्रांतिकारी को गिरफ्तार कर लिया था। इसके लिए उसे पदवृद्धि, स्पेशल मैडल और डबल पैंशन का पुरस्कार दिया गया था। यह रिकार्ड मौजूद है। स्पष्ट है, पुलिस वैशम्पायन को पहचानती न थी। किसी के सूचना देकर विश्वासघात की बात भी निराधार है।

आजाद के साथ निश्चय विश्वासघात हुआ, इस धारणा से भिन्न भिन्न लोगों ने अपने-अपने पूर्वाग्रह से अनेक कल्पनाएँ कर ली थीं। पुराने लोगों को याद है, उस समय इलाहाबाद के कई कांग्रेसी लोगों ने स्वर्गीय रामरखसिंह सहगल, सम्पादक 'चाँद', पर संदेह कर लिया था। हमारे साथी काशीराम ने इस सन्देह के अनुमोदन में एक लेख भी लिखा है। सहगल से हमें थोड़ी-बहुत सहायता जरूर मिलती थी परन्तु उन्हें हमारी गति विधि का ज्ञान नहीं हो सकता था। वैशम्पायन आजाद की शहादत से कुछ दिन पूर्व गिरफ्तार हुआ था। राज धन्नास्थल से सुरक्षित भाग निकला था। एल्फ्रेड पार्क

की घटना से पूर्व वह दिल्ली मे धन्वन्तरी की गिरफ्तारी के समय उसके साथ था। धन्वन्तरी चोट खाकर गिरफ्तार हो गया और राज भागने मे सफल हो गया था। लाहौर मे राज नहर किनारे पुलिस से गोली चलने की घटना मे विश्वम्भर के साथ था। विश्वम्भर शहीद हो गया और राज भाग कर बच गया। बाद मे लाहौर मे वह जगदीश के पास था। पुलिस मे गोली चलने पर जगदीश शहीद हो गया। राज भागने के यत्न मे पकड़ा गया। पहले तीन अनुभवो के कारण और इस अवसर पर भी राज भाग सकने से कुछ लोगो ने राज पर सदेह कर लिया था परन्तु यह सब सदेह अनुमानो पर थे, इनके लिए साक्षी का प्रमाण न था, अत अनुमान असगत थे।

वैशम्पायन और निगम आजाद की शहादत से पूर्व गिरफ्तार हो चुके थे। आजाद की शहादत की घटना के सम्बन्ध मे उन्हे निजी जानकारी सम्भव नही है। सुरेन्द्र पाडे और मैं आजाद के साथ ही रहते थे। हम दोनो पार्क के उस फाटक तक उनके साथ गये थे। घटना के बाद भी दो दिन इलाहाबाद मे ही रहे। सुरेन्द्र पाडे और मैं जेल से मुक्ति और ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद भी सभी सम्भव सूत्रो से आजाद के सम्बन्ध मे पुलिस को सूचना मिलने के रहस्य की खोज करते रहे है। हम दोनो को वीरभद्र पर सन्देह का कोई कारण नही मिला।

ब्रिटिश शासन की समाप्ति मे वातावरण बदल गया है। पुलिस के तत्कालीन बड़े और जिम्मेवार अफसर बहुत वर्ष पूर्व रिटायर हो चुके है। इनमे से कुछ ने वर्तमान सरकार से भी कर्त्तव्य-परायणता की सराहना पायी है। वे अब निस्सकोच बात कर सकते हैं। इनमे ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनका स्वय मेरी गिरफ्तारी से और आजाद की घटना से निकट सबध था। मेरी तत्कालीन स्मृति, प्राप्त रिकार्डों और इन अफसरो से प्राप्त सूचना मे सगति बैठती है। सक्षेप मे एलफ्रेड पार्क की घटना इस प्रकार थी। सी० आई० डी० के डी० एस० पी० विशेश्वरसिंह और कोर्ट इस्पेक्टर डालचन्द प्रात सैर से पार्क मे होकर उसी सडक से लौट रहे थे जहाँ समीप पेड के नीचे आजाद और राज बतिया रहे थे। उस ओर नजर जाने पर विशेश्वरसिंह ने डालचन्द से कहा, "वह आदमी आजाद जैसा लगता है।"

सन् १९२० मे जब किशोर आजाद बनारस म जोर-शोर म काग्रेस आन्दोलन मे भाग लेते थे। उन्हे बारह बेत की सजा दी जाने के कारण बहुत लोग उन्हे जान गये थे। तब विशेश्वरसिंह बनारस मे इस्पेक्टर था। बीच के ग्यारह वर्ष मे उसने आजाद को देखा न था परन्तु आजाद की हुलिया, पुष्ट कद-गहरे सॉवले चेचक से दागी चेहरे का जिक्र जगह-जगह गिरफ्तारी के लिए इनामी इश्तहारो मे मौजूद रहता था विशेश्वरसिंह ने डालचद से कहा, "कुछ दूरी से उन लोगो पर नजर रखो, हम अभी लौटते हैं।"

विशेश्वरसिंह ने समीप ही सी० आई० डी० के स्पेशल सुपरिंटेंडेंट नॉटबावर के बँगले

ार जाकर सूचना दी, "पार्क मे एक व्यक्ति बैठा है। उसका हुलिया आज़ाद के हुलिये से मिलता-जुलता है।

घटना के अगले दिन प्रात. इलाहाबाद से 'लीडर' मे नॉटबावर का बयान प्रकाशित हुआ था। उसकी कटिंग मौजूद है। नॉटबावर ने पार्क मे आज़ाद की उपस्थिति का नहीं, आज़ाद के हुलिये से मिलते-जुलते व्यक्ति की उपस्थिति का समाचार पाना स्वीकार किया था। आज़ाद के हुलिये के सदेह मे उससे पूर्व दो आदमी बहुत तैयारी से गिरफ्तार किये जा चुके थे और तहकीकात के बाद छोड़ दिये गये थे। स्वय मेरे नाम इश्तहार के कारण भी दो बार ऐसी गिरफ्तारियाँ हो चुकी थी।

सी० आई० डी० सुपरिंटेंडेंट नॉटबावर घर से निकलने के लिये तैयार था। विशेश्वरसिंह ने केवल अनुमान प्रकट किया था। नॉटबावर ने एक पिस्तौल जेब मे ले कर गाड़ी मे अपने दो नि शस्त्र अर्दली साथ लिये और रास्ते मे विशेश्वरसिंह को भी कार मे ले लिया। वह कार स्वय चला रहा था। डालचद पेड की ओर नजर रखे था। नॉटबावर ने पार्क मे गाड़ी सड़क पर पेड के समीप ले जाकर रोकी। सड़क से पेड का अतर पच्चीस-तीस कदम रहा होगा। नॉटबावर ने पेड की ओर बढते समय पिस्तौल जेब से निकाल लिया। वह कुछ ही कदम बढा था। आज़ाद ने उसे देखा और अपना पिस्तौल निकाल लिया। दोनो ओर से लगभग साथ ही गोली चली। दूसरी-तीसरी गोली मे आज़ाद की जांघ और नॉटबावर की बाँह जख्मी हो गयी। राज उसी समय भाग गया होगा। आज़ाद और नॉटबावर दोनों ने आड़ें ले ली। विशेश्वर-सिंह नि शस्त्र था। अवसर की बात, उसी समय कोई लाइसेंसी सरकारी खैरख्वाह दुनाली बदूक लिये पार्क मे से गुजर रहा था। विशेश्वरसिंह ने उससे बदूक ले ली और एक झाड़ी के पीछे बैठ कर आज़ाद पर गोली चलाने लगा। आज़ाद नॉटबावर और विशेश्वरसिंह दोनो को जवाब दे रहे थे। शरीर मे तीन-चार गोलियाँ धँस चुकी थी। इस पर भी जब विशेश्वरसिंह ने फिर निशाना लेने के लिये झाड़ी के पीछे से सिर उठाया तो आज़ाद की गोली उसके जबडे पर बैठी। यू० पी० के तत्कालीन आई० जी० पुलिस, हालिन्स ने अपने संस्मरण 'नो टेन कमाडमेंट्स' मे ऐसी जख्मी अवस्था मे धैर्य से अचूक निशाना ले सकने के लिये आज़ाद की बहुत सराहना की है। आज़ाद ने अपनी अन्तिम गोली, अपने पूर्व-निश्चय के अनुसार, पिस्तौल कनपटी पर सटा कर मार ली और समाप्त हो गये।

डालचद ने घटना के आरम्भ मे ही दौड़ कर सबसे समीप के फोन से कोतवाली को मुठभेड़ की सूचना दे दी थी। घटना की समाप्ति तक गाड़ियो पर बड़ी सख्या मे पुलिस पहुँच गयी। पार्क मे भीड़ जमा होती देखकर पुलिस आज़ाद के शरीर को उठा ले गयी। मृत व्यक्ति कौन है, यह तब तक पूर्ण निश्चय न था। कई फरार साहसी

लोग इस प्रकार जान पर खेल जाते है। तुरन्त फोन द्वारा बनारस और झांसी से ऐसे लोगों को बुलाया गया जो आज़ाद को निश्चित रूप से पहचानते थे। इन लोगो द्वारा तसदीक हो जाने पर ही पुलिस ने पत्रों को बयान दिया। यह बयान दूसरे दिन प्रात 'लीडर' में तथा अन्य पत्रों मे प्रकाशित हुआ था। स्पष्ट है, पुलिस को निश्चित सूचना न थी वरना नॉटबावर पर्याप्त सशस्त्र सिपाहियो को साथ लेकर ही जाता। प्राप्त जानकारी के आधार पर विश्वासघात के सदेह के लिय गुंजाइश ही नही है।

इलाहाबाद में भैया आज़ाद की शहादत के समय कटरे के मकान मे उनके साथ सुरेन्द्र पाडे, भवानीसिंह और मैं ही रहते थे परन्तु इलाहाबाद के बाहर कानपुर, मेरठ, दिल्ली आदि मे दूसरे लोग भी थे। उन सब की उपेक्षा करके मैं और पाडे रूस नही भाग जा सकते थे। एक तरह से रूस जाने का विचार उस समय के लिये स्थगित कर देना पडा। नेहरू जी रुपये का प्रबध हमारे काम मे सहायता के लिये नही केवल रूस चले जाने के लिये ही करने को तैयार हुए थे इसलिये शेप रुपये के सम्बध मे मैं शिवमूर्तिसिंह स मिला ही नही। मेरे पास जो हजार रुपया था, वह भी साथियो की तात्कालिक व्यवस्था करने मे ही व्यय होने लगा। दुर्गा भाभी या सुशीला दीदी के लिये हमे कुछ नही करना पडा क्योंकि उस समय उनसे हमारा कोई सम्पर्क नही था। आज़ाद की शहादत को हम मे से प्रत्येक व्यक्ति ने अपने निजी आत्मीय की मृत्यु के रूप मे अनुभव किया। कानपुर जाकर मैंने प्रकाशवती को यह समाचार दिया तो मैं बोल ही न पा रहा था और फिर सहमा कह दिया, "भाई भैया शहीद हो गये।" सुन कर प्रकाशवती पहले तो आँखें खुली रहते भी जैसे आदमी चेतना खो बैठे, वैसे देखती ही रह गयी। फिर बहुत रोयी। दल के सभी लोगों को आज़ाद से ऐसा व्यक्तिगत लगाव था जैसे केले की गहर मे प्रत्येक फली बीच के डंडे से जुडी रहती है। अनपढ आज़ाद की योग्यता और उनके व्यक्तित्व का महत्त्व उनकी अनुपस्थिति में ही मालूम हुआ क्योंकि तब दल के बचे हुये लोगों को एक साथ बनाये रखना असम्भव-सा जान पडने लगा।

●

आज़ाद की शहादत के तुरन्त बाद या बहुत समय तक दल के नये नेता का निश्चय नही हुआ। कुछ लोग सुरेन्द्र पाडे के प्रथम लाहौर षड्यन्त्र से सम्बधित और पुराने होने के कारण और मेरे भी दूसरे साथियों स पुराने होने के कारण आदेश और सुझाव के लिये हम लोगों की ओर देखने लगे। एक और साथी काशीराम भी उतना ही पुराना था। कैलाशपति के बयानो के कारण उसकी गिरफ्तारी के भी वारट जारी थे। प्रश्न था, अब किया क्या जाये ? जब भी कुछ करने का प्रश्न आता, तभी खर्च के लिये रुपये

का भी प्रश्न सामने आ जाता। मैं काम के लिये जान पर खतरा लेने से तो कतरा नहीं रहा था परन्तु डकैती नहीं करना चाहता था। उन दिनों लेनिन का जीवन चरित्र तथा कुछ और भी ऐसी पुस्तकें पढ़ ली थी जिनके कारण मैं और पांडे इस बात पर सहमत थे कि हम अपने गुप्त संगठन को विचारों की दृष्टि से दृढ़ और व्यापक बनाने पर अधिक महत्व देना चाहिये। कानपुर और इलाहाबाद में आजाद से भी इस सम्बन्ध में बातें होती थी। वे भी इस बात से सहमत थे कि हमें अपना व्यापक सार्वजनिक आधार बनाना चाहिये। हम चाहते थे कि पर्चे और छोटी छोटी पुस्तिकाएँ लगातार छापने के लिये अपना एक प्रेस बनाया जाय। उस प्रेस के सभी कर्मचारी अपने साथी हों। इससे साथियों के लिये निवास और निर्वाह की समस्या भी किसी हद तक हल हो सके परन्तु मेरे इस सुझाव के प्रति दूसरों में कोई उत्साह नहीं दिखाई देता था। शायद वे इसे जिम्मेदारी टालना समझ रहे थे। कार्यक्रम के विषय में सहमत हो जाने पर भी यह प्रश्न तो सबके सामने था ही कि हम किसका निर्देश मानें? या दूसरे हमारा निर्देश क्यों न मानें? पुनः संगठन तो सभी चाहते थे परन्तु संगठन किसके निर्देश से होना? उस बीच मैं, काशीराम और भवानीसहाय आदि से सम्पर्क स्थापित करने मेरठ चला गया। कानपुर के कुछ साथी और भवानीसिंह आदि सुरेन्द्र पांडे के सम्पर्क में थे।

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत

२३ मार्च १९३१ को लाहौर जेल में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी पर लटका दिया गया। इस अवसर पर देश भर में व्यापक शोक हड़तालें हुईं। उस समय तक मुस्लिम लीग और कांग्रेस में ब्रिटिश साम्राज्यशाही खूब गहरी फूट डलवा चुकी थी। अधिकांश मुसलमानों में यह धारणा खूब गहरी पैठ चुकी थी कि कांग्रेस हिन्दू राज चाहती है। मुस्लिम लीग और साम्प्रदायिक मुसलमान शिक्षा और प्रगति में स्वयं को पिछड़ा अनुभव करके कांग्रेस की प्रतिद्वन्द्विता में अँग्रेजों की शह पाकर राष्ट्रीय भावना का ठुकराने में ही सतोष पाते थे। क्रान्तिकारी शहीदों के शोक में हड़ताल कराने के लिये कानपुर में कांग्रेस ने प्रमुख भाग लिया था। पुलिस के भड़काने से कुछ मुसलमान कांग्रेस की अवज्ञा करने के लिये हड़ताल में सहयोग का विरोध कर रहे थे। ऐसा व्यवहार ब्रिटिश सरकार के कृपापात्र बनने का भी सरल उपाय था। सर्वसाधारण जनता की दृष्टि में इस हड़ताल में सहयोग न देना देश के शहीदों की उपेक्षा करना था। जनता अपने मान्य शहीदों का ऐसा अपमान न सह सकती थी। कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया।

श्रद्धेय गणेशशंकर जी विद्यार्थी हिन्दू बस्ती में फँसे हुए कुछ मुसलमानों की रक्षा के लिये गये थे। वहाँ कुछ अनजान या साम्प्रदायिकता में अन्धे मुसलमानों ने ही उन्हें छुरा भोंक कर शहीद कर दिया। फिर क्या था, दंगे ने वह रूप ले लिया कि उसे सँभाल सकना पुलिस के बूते के बाहर हो गया। एक दिन के बजाय कानपुर में पूरे पन्द्रह दिन कोई दुकान न खुल सकी। कानपुर के हिन्दू-मुसलमानों को कई बरस के लिये नसीहत हो गयी।

इस दंगे का समाचार मुझे मेरठ में मिला था। दिल्ली आया तो और भी भयंकर समाचार मिले। प्रकाशवती तब कानपुर की प्रेमनगर की नयी बस्ती के एक मकान में थी। मैं तुरन्त कानपुर के लिये चल पड़ा। सुबह सूर्योदय से कुछ पहले ही कानपुर पहुँचा। स्टेशन से बाहर निकलने पर देखा कि साधारणतः वहाँ बनी रहने वाली भीड़

और चहल-पहल की जगह मरघट-सा सन्नाटा था। गाडी से बहुत कम मुसाफिर उतरे थे और जो उतरे अधिकांश स्टेशन पर ही ठिठके रहे। बाहर केवल पाँच-सात इक्के खडे थे। मैं जब तक पहुँचा पहले आने वालो ने इक्के ले लिये थे। अब एक ही इक्का शेष था। इक्के को मैंने प्रेमनगर चलने के लिए कहा। मुझे पोशाक से हिन्दू समझ कर इक्के वाले ने कहा, "साहब, मैं बांसमण्डी से घूम कर (अर्थात् मुस्लिम बस्ती में से होकर) चलूँगा।" वह मुसलमान था।

मैंने पूछा, "इतना चक्कर देने की क्या जरूरत है ?"

उसने साफ-साफ कह दिया कि हिन्दू बस्ती से होकर जाने की उसमें हिम्मत नही है। सोचा, जब इसे हिन्दू इलाके में भय है तो मेरा हिन्दू पोशाक में मुस्लिम इलाके म जाना कौन बुद्धिमत्ता होगी। यह भी समझ लिया कि स्थिति बहुत खराब है। पैदल ही चला। प्रेमनगर तक जाने म तो हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही बस्तिया से गुजरना पडता था। जाये बिना भी नही रह सकता था। अभी सूर्य नही निकला था। छोटा-सा बिस्तर बगल मे दबाये चल पडा। बहुत चौकन्ना, पुलिस से लडने के लिए तो मैं तैयार था परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दगे मे शहीद हो जाने के लिय नही। यह दगे का पाँचवाँ दिन था परन्तु पुलिस का पहरा केवल मुख्य चौराहो पर ही था। पुलिस को स्वय भय था या अंग्रेज सरकार ने हिन्दू-मुसलमानो को एक दूसरे को गहरे बैरी बन जाने की छूट द दी थी। हालसी रोड के आखिरी हिस्से और जनरलगज से गुजरते हुए बार-बार पिस्तौल पर हाथ चला जाता था परन्तु हुआ कुछ नही।

प्रेमनगर मे पहुँचकर मकान मे ताला पडा पाया। ताला पहचाना हुआ अपना ही था। समझा कि इस मकान से तो प्रकाशवती अपनी इच्छा मे ही गयी होंगी, पर होंगी कहाँ ? दस बजे हेदर वर्किंग स्कूल खुलने पर चौधरी रामधनसिंह से ही पूछा जा सकता था। मैं अनुमान से स्कूल के बोर्डिंग की ओर गया। रामधन मिल गये। पता लगा, प्रेमनगर मे बहुत भय था। समीप जनरलगज से दगे की दूसरी रात मुहल्ले पर मुसलमानों की भीड चढ आयी थी। चौधरी और प्रकाशवती दोनो के ही कलेजे साम्प्रदायिक दगे में शहीद बन जाने के भय से कॉप रहे थे। घर मे पिस्तौल और एक माउजर राइफल भी थी। उन्होंने हिम्मत की। छत पर चढ कर दो फायर कर दिये और ललकारा सबको भून डालेंगे। भीड छँट गयी। अब भीड के साथ पुलिस का भी डर हो गया। दूसरे दिन वे लोग सुबह ही वहाँ से निकल गये। प्रकाशवती को भी सब हिन्दू स्त्रियो के साथ एक कोठरी मे बन्द हो जाना पडा। बाद मे वह किस्सा सुना-सुना कर वे खूब हँसा करती थी। इस दगे के बाद कानपुर की अवस्था सुधरने मे कई दिन लगे।

१६२६-३० और ३१ मे 'इन्कलाब जिन्दाबाद !' और 'भगतसिंह की जय!,' 'गाँधी

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत

२३ मार्च १९३१ को लाहौर जेल में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी पर लटका दिया गया। इस अवसर पर देश भर में व्यापक शोक हड़तालें हुई। उस समय तक मुस्लिम लीग और कांग्रेस में ब्रिटिश साम्राज्यशाही खूब गहरी फूट डलवा चुकी थी। अधिकांश मुसलमानों में यह धारणा खूब गहरी पैठ चुकी थी कि कांग्रेस हिन्दू राज चाहती है। मुस्लिम लीग और साम्प्रदायिक मुसलमान शिक्षा और प्रगति में स्वयं को पिछड़ा अनुभव करके कांग्रेस की प्रतिद्वन्द्विता में अँग्रेजों की शह पाकर राष्ट्रीय भावना को ठुकराने में ही सन्तोष पाते थे। क्रान्तिकारी शहीदों के शोक में हड़ताल कराने के लिये कानपुर में कांग्रेस ने प्रमुख भाग लिया था। पुलिस के भड़काने से कुछ मुसलमान कांग्रेस की अवज्ञा करने के लिये हड़ताल में सहयोग का विरोध कर रहे थे। ऐसा व्यवहार ब्रिटिश सरकार के कृपापात्र बनने का भी सरल उपाय था। सर्वसाधारण जनता की दृष्टि में इस हड़ताल में सहयोग न देना देश के शहीदों की उपेक्षा करना था। जनता अपने मान्य शहीदों का ऐसा अपमान न सह सकती थी। कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया।

श्रद्धेय गणेशशंकर जी विद्यार्थी हिन्दू बस्ती में फँसे हुए कुछ मुसलमानों की रक्षा के लिये गये थे। वहाँ कुछ अनजान या साम्प्रदायिकता में अन्धे मुसलमानों ने ही उन्हें छुरा भोंक कर शहीद कर दिया। फिर क्या था दंगे ने वह रूप ले लिया कि उसे सँभाल सकना पुलिस के बूते के बाहर हो गया। एक दिन के बजाय कानपुर में पूरे पन्द्रह दिन कोई दुकान न खुल सकी। कानपुर के हिन्दू मुसलमानों को कई बरस के लिये नसीहत हो गयी।

इस दंगे का समाचार मुझे मेरठ में मिला था। दिल्ली आया तो और भी भयंकर समाचार मिले। प्रकाशवती तब कानपुर की प्रेमनगर की नयी बस्ती के एक मकान में थी। मैं तुरन्त कानपुर के लिये चल पड़ा। सुबह सूर्योदय से कुछ पहले ही कानपुर पहुँचा। स्टेशन से बाहर निकलने पर देखा कि साधारणतः वहाँ बनी रहने वाली भीड़

और चहल-पहल की जगह मरघट-सा सन्नाटा था। गाडी से बहुत कम मुसाफिर उतरे थे और जो उतरे अधिकाश स्टेशन पर ही ठिठके रहे। बाहर केवल पाँच-सात इक्के खडे थे। मैं जब तक पहुँचा पहले आने वालो ने इक्के ले लिये थे। अब एक ही इक्का शेष था। इक्के को मैंने प्रेमनगर चलने के लिए कहा। मुझे पोशाक से हिन्दू समझ कर इक्के वाले ने कहा, "साहब, मै बाँसमण्डी से घूम कर (अर्थात् मुस्लिम बस्ती मे से होकर) चलूँगा।" वह मुसलमान था।

मैंने पूछा, "इतना चक्कर देने की क्या जरूरत है ?"

उसने साफ-साफ कह दिया कि हिन्दू बस्ती से होकर जाने की उसमें हिम्मत नही है। सोचा, जब इसे हिन्दू इलाके मे भय है तो मेरा हिन्दू पोशाक मे मुस्लिम इलाके मे जाना कौन बुद्धिमत्ता होगी। यह भी समझ लिया कि स्थिति बहुत खराब है। पैदल ही चला। प्रेमनगर तक जाने मे तो हिन्दू और मुस्लिम दोनो ही बस्तिया से गुजरना पडता था। जाये बिना भी नही रह सकता था। अभी सूर्य नहीं निकला था। छोटा सा बिस्तर बगल मे दबाये चल पडा। बहुत चौकन्ना, पुलिस से लडने के लिए तो मैं तैयार था परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दगे मे शहीद हो जाने के लिये नही। यह दगे का पाँचवाँ दिन था परन्तु पुलिस का पहरा केवल मुख्य चौराहो पर ही था। पुलिस को स्वय भय था या अग्रेज सरकार ने हिन्दू-मुसलमानो को एक दूसरे को गहरे बैरी बन जाने की छूट दे दी थी। हालसी रोड के आखिरी हिस्से और जनरलगज से गुजरते हुए बार-बार पिस्तौल पर हाथ चला जाता था परन्तु हुआ कुछ नही।

प्रेमनगर मे पहुँचकर मकान मे ताला पडा पाया। ताला पहचाना हुआ अपना ही था। समझा कि इस मकान से तो प्रकाशवती अपनी इच्छा से ही गयी होगी, पर होगी कहाँ ? दस बजे मैंदर वकिंग स्कूल खुलने पर चौधरी रामधनसिंह से ही पूछा जा सकता था। मैं अनुमान से स्कूल के बोर्डिंग की ओर गया। रामधन मिल गये। पता लगा, प्रेमनगर मे बहुत भय था। समीप जनरलगज से दगे की दूसरी रात मुहल्ले पर मुसलमानों की भीड चढ आयी थी। चौधरी और प्रकाशवती दोनो के ही कलेजे साम्प्रदायिक दगे मे शहीद बन जाने के भय से काँप रहे थे। घर मे पिस्तौल और एक माउजर राइफल भी थी। उन्होंने हिम्मत की। छत पर चढ कर दो फायर कर दिये और ललकारा सबको भून डालेंगे। भीड छँट गयी। अब भीड के साथ पुलिस का भी डर हो गया। दूसरे दिन वे लोग सुबह ही वहाँ से निकल गये। प्रकाशवती को भी सब हिन्दू स्त्रियों के साथ एक कोठरी मे बन्द हो जाना पडा। बाद मे वह किस्सा सुना-सुना कर वे खूब हँसा करती थी। इस दगे के बाद कानपुर की अवस्था सुधरने मे कई दिन लगे।

१९२९-३० और ३१ मे 'इन्कलाब जिन्दाबाद !' और 'भगतसिंह की जय!,' 'गाँधी

जी की जय !'' से कम सुनाई नहीं देती थी। कांग्रेस के सर्वसाधारण लोगों की गांधी जी से यह माँग थी कि सरकार से समझौते की शर्तों में भगतसिंह और उनके साथियों की फाँसी की सजा रद्द की जाने की माँग भी रखी जाये। गाँधी जी ने इस माँग को समझौते की शर्त बनाने से इनकार करके इस प्रसंग में वाइसराय से केवल प्रार्थना भर करना ही स्वीकार किया था। जो भी हो, जनता को बहुत आशा थी कि उनकी भावना की उपेक्षा नहीं की जायेगी। भगतसिंह आदि की फाँसी की सजा मनसूख हो जायेगी। अंग्रेज सरकार ने भी इस प्रश्न को अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी जाने पर जनता को बहुत आघात पहुँचा। सर्वसाधारण जनता को इस बात से भी विकट क्षोभ हुआ कि गाँधी जी ने इन शहीदों को फाँसी न दी जाने के प्रश्न को उचित महत्त्व नहीं दिया।

इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि गाँधी जी ने इस समझौते के लिए जो ग्यारह शर्तें वाइसराय के सामने पेश की थीं, उनमें एक शर्त देश भर में शराब निषेध की भी थी पर भगतसिंह आदि को फाँसी न दिये जाने की नहीं। गाँधी जी शराब निषेध के लिए सरकारी शक्ति से जनता पर दबाव डालना नैतिक समझते थे। परन्तु भगतसिंह आदि की फाँसी रद्द करने के लिये विदेशी सरकार पर जनमत का दबाव डालना अनैतिक समझते थे।

मार्च १९३१ के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन कराची में हुआ था। उस समय जनता गाँधी जी द्वारा भगतसिंह और उसके साथियों की उपेक्षा के लिये अपना क्षोभ प्रकट किये बिना न रह सकी। इन शहीदों के शोक में कांग्रेस में गाँधी जी को काले झंडे दिखाये गये और काले फूल भी भेंट किये गये थे। गाँधी जी ने विनय से काले फूलों को स्वीकार कर मान लिया था कि वे भगतसिंह को बचाने में असमर्थ रहे। सर्वसाधारण के लिये यह समझ सकना कठिन है कि जनभावना के प्रतीक बन चुके भगतसिंह आदि की प्राणरक्षा को समझौते की शर्त बनाने में गाँधी जी असमर्थ क्यों थे ! इस कांग्रेस अधिवेशन में पंडित नेहरु ने नवयुवकों और उग्र लोगों के सन्तोष के लिये राष्ट्र के उद्योग-धन्धों और पैदावार के मुख्य साधनों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव भी रखा था। १९४७ में कांग्रेस के शासन की बागडोर सँभाल लेने और नेहरू जी के स्वयं उसके प्रधानमंत्री बन जाने पर उन्हें १९३१ के प्रस्तावों की माँगें उस अनुपात में अव्यावहारिक और नियात्मक जल्दबाजी जान पड़ने लगी। १९६९ में कांग्रेस के दो दल बन जाने पर जनमत को आकर्षित करने की प्रतिद्वन्द्विता में फिर समाजवादी व्यवस्था के नारे दिये जाने लगे हैं।

जनता का मन विदेशी सरकार के प्रति दारुण और असमर्थ घृणा से भर गया था। प्रतिक्रिया में भगतसिंह और उनके साथियों को प्रतिहिंसा में बर्बरता से फाँसी पर

लटकाने के, इनके शवो का अनादर करने के और इन शहीदो के साहस के बहुत से अतिरंजित वर्णन भी जनता मे फैल गये थे। लोग सरकार के प्रति घृणा, क्रोध और शहीदो के प्रति आदर प्रकट करने के लिये इन बातो को खूब बढ़ा-चढ़ा कर कहते थे। सुनने वाले कुछ और बढ़ा कर दूसरो को सुना देते।

अवसरवश दूसरे लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्त सरदारसिंह, जहाँगीरीलाल, कुन्दनलाल, जयप्रकाश, धर्मपाल आदि इन साथियो की फाँसी के समय लाहौर सेन्ट्रल जेल मे ही थे। इन लोगो की कोठरियाँ भी फाँसी पाने वालो की कोठरियो और फाँसी घर के समीप ही थी। कभी-कभी सामना और बातचीत का अवसर भी हो जाता था। अपनी अपनी कोठरियो से भी पुकार कर बातचीत हो सकती थी। वार्डरो और पहरेदारो की मारफत सदेश और खाने की चीजें लेते-देते रहते थे। दूसरे लाहौर षड्यन्त्र मुकद्दमे का कहना है कि भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु तीनो ही अन्तिम दिन तक पूर्ण रूप से स्वस्थ मानसिक अवस्था मे थे। उन्हे सतोष था कि वे अपने उद्देश्य के लिये बलिदान हो रहे है। फाँसी की कोठरी मे भगतसिंह को केवल एक बात से कलख हुआ था। वह थी, उसके पिता सरदार किशनसिंह का पुत्र की प्राणभिक्षा के लिये अँग्रेज गवर्नर की सेवा मे प्रार्थना-पत्र भेजना। गवर्नर ने तो यह प्रार्थना नामजूर कर ही दी थी परन्तु भगतसिंह को यह बात बहुत अपमानजनक लगी थी। यह बात सुनकर उसने खिन्नता से कहा था, "My father has stabbed me in the back" (पिता ने ही मेरी पीठ मे छुरी भोंक दी।)

इन लोगो की फाँसी के लिये २४ मार्च, १९३१ तारीख निश्चित हुई थी। अँग्रेज सरकार की आशका थी कि इस अवसर पर जनता जेल के सामने बहुत बडा प्रदर्शन कर सकती है और सम्भव है इन शहीदो के शव माँग कर उसका बहुत बडा जुलूस निकाला जाये। यह सब सरकार विरोधी भावना का ही प्रदर्शन होता। इन सम्भावनाओ का प्रतिकार करने के लिये गवर्नर की अनुमति से यह काम कुछ पहले ही निबटा देना उचित समझा गया।

२३ मार्च को दूसरे लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्तो को दोपहर बाद ही अदालत से लौटा लिया गया। तीन-चार बजे सभी कैदियो को बारको और कोठरियों मे बन्द कर दिया गया। सफाई-झाडाई होने लगी। भगतसिंह की ओर सबसे समीप धर्मपाल की ही कोठरी थी। भगतसिंह ने अपनी कोठरी से पुकार कर पूछा, "धर्म, आज तुम लोग अदालत से इतनी जल्दी क्यो आ गये?"

धर्मपाल ने उत्तर दिया, "लोग कहते है, जेलो के बडे इन्स्पेक्टर और डिप्टी कमिश्नर वगैरा मुआइने के लिये आ रहे है।"

भगतसिंह ने कहा, "अरे भोले लोगो हम ही यह मुआइना करने जा रहे है।'

उसी समय इन तीनो को नहाने के लिये पानी दे दिया गया। जेल का कायदा है कि मृत्यु दण्ड पाने वाले को फाँसी के हाते की ओर ले जाने से पहले नहाने के लिये पानी दे दिया जाता है। भगतसिंह को जेल के अधिकारियों में से ही किसी ने पहले सूचना दे दी होगी। जेल के निरीक्षण की बात पर मजाक करते हुये भगतसिंह ने धर्मपाल से यह भी कहा था, " तुम लोगो ने जो मीठे चावल भेजे थे, हम सागो ने खा लिये। न खाते तो ठीक रहता।" फाँसी के लिये निश्चित सुबह से पहली रात दण्ड पाने वाले प्राय निराहार रह जाते है ताकि फाँसी के झटके से मल मूत्र निकल जाने की सम्भावना न रहे। जयप्रकाश वगैरह ने उससे स्मृति के लिये कुछ चीजें माँग रखी थी। भगतसिंह ने कुछ समय पूर्व ही अपनी सभी चीजें हजामत का सामान, पैंसिल, बटन से लेकर दियासलाई की खाली डिबिया तक बाँट दी थी परन्तु बडे अफसरो का सन्देह न होने देने के लिये चुप था।

सुखदेव की कोठरी से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की ऊँची पुकार सुनायी दी और झगडा होता जान पडा। मालूम हुआ कि उसे हथकडी लगायी जा रही थी और वह विरोध कर रहा था। फाँसी के लिय ले जाते समय कैदियो के हाथ पीठ पीछे बाँध देने का कायदा है। जेल के सबसे बडे और बूढे वार्डर चतरसिंह न भगतसिंह से प्रार्थना की कि हम पर ही रहम कीजिये। हथकडी लगाने का हुक्म मिला है और यह कायदा है, मान जाइये। भगतसिंह के कहने पर राजगुरु और सुखदव ने हथकडियाँ लगवा ली। भगतसिंह ने साथियो को पुकार कर कहा 'अच्छा भाई चलते है।"

दूसरे साथियो ने अपनी कोठरियो से इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाने शुरू किये। अनुकरण में जेल भर के कैदी नारे लगाने लगे। इन नारो की आवाजें जेल के बाहर समीप ही पंडित के० सन्तानम के बँगले तक पहुँच रही थी। उन्होंने नारो के कारण का अनुमान कर सरदार किशनसिंह को टेलीफोन कर दिया। नारे बन्द हो गये। समीप कोठरियो मे बन्द साथी फाँसी का तख्ता गिरने की आहट सुन पाने के लिये साँस रोके चुप थे। धर्मपाल का कहना है कि उसकी घडी के हिसाब से सध्या ■ बजकर २३ मिनट पर फाँसी का तख्ता गिरने की आहट आयी थी। पूरा जेल फिर 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'भगतसिंह जिन्दाबाद', 'सुखदव जिन्दाबाद', 'राजगुरु जिन्दाबाद' के नारो से गूँज उठा। इन नारो की गूँज के कारण आध घटे तक हमारे साथी आपस में बात न कर सके। बाद मे जेल अफसरो ने हमारे साथियो को बताया कि फाँसी के तख्ते पर पहुँच कर भगतसिंह ने सुपरिन्टेन्डेन्ट से अनुरोध किया था—हमे दो मिनट का अवकाश दें ताकि हम सतोष से नारे लगा सकें। आशा है, आप हमारी इतनी बात

शहीद शालिग्राम शुक्ल

जेल मे शहीद मणीन्द्रनाथ बैनर्जी

प्रकाशवती (१६३५)

मान लेंगे। सुपरिन्टेन्डेन्ट मौन स्वीकृति में खड़ा रहा। तीनों शहीदों ने एक साथ नारे लगाये—

Long live revolution ! (इन्कलाब जिन्दाबाद !)

Down with imperialism ! (साम्राज्यवाद का नाश हो !)

उस दिन पूरे जेल के कैदियों ने खाना नहीं खाया। सम्भव है, जेल के हिन्दुस्तानी अफसर सरकारी ड्यूटी पूरी करते हुये भी, मन में चोट या ग्लानि अनुभव करके उस दिन खाना न खा सके हों या उन्होंने दुख अनुभव किया हो। जेल का दारोगा खान साहिब मुहम्मद अकबर फाँसी के दो-तीन दिन बाद सरदारसिंह आदि से मिला तो अपने आप ही जिक्र किया—नौकरी की गुलामी में सरकारी हुक्म तो पूरा करना ही पड़ा लेकिन तबियत परेशान है। खाना सामने आता है तो जहर मालूम होता है। लानत है इस खाने पर जिसके लिये यह गुलामी करनी पड़ रही है।

यह पंक्तियाँ लिखते समय एक बात याद आ गयी—१६३० में पेशावर में सरकारी हुक्म से आन्दोलनकारी जनता पर गोली चलाने से इन्कार करने वाले गढ़वाली सिपाहियों की गाँधी जी ने निन्दा की थी क्योंकि वे सिपाही गाँधी जी के विचार में कर्त्तव्य से च्युत हो गये थे। लाहौर जेल में हिन्दुस्तानी सिपाहियों और अफसरों ने भगतसिंह आदि को फाँसी पर लटका देने की आज्ञा तो पूरी की परन्तु उन्होंने इसके लिये जो दुख अनुभव किया गाँधी जी की दृष्टि में वह भी पाप ही रहा होगा। अर्थात् गाँधी जी के अनुसार मानवता और राष्ट्रीय भावना की अपेक्षा मालिक की गुलामी निबाहना ही बड़ा धर्म था।

यह आशा नहीं थी कि सरकार शहीदों के शवों का प्रदर्शन और उचित सत्कार करने के लिये इनके शरीर उनके सम्बन्धियों को दे देगी। लोग इस बात के लिये भी बहुत आशंकित थे कि सरकार शहीदों के शवों को कहीं दूर ले जाकर इनके प्रति उपेक्षा या निरादर का व्यवहार न करे, इसलिये लोग लाहौर से बाहर जाने वाली सभी सड़कों पर चौकसी रखे हुये थे। फिरोजपुर जाने वाली सड़क पर भगतसिंह की बहिन अमरकौर कुछ साथियों के साथ थी। आधी रात के लगभग पुलिस गाड़ियों को फिरोजपुर की तरफ जाते देखकर इन लोगों ने अनुमान कर लिया कि शहीदों के शव सतलुज नदी की ओर, लाहौर से लगभग साठ-पैंसठ मील दूर ले जाये जा रहे हैं। दिन निकलने तक बहुत से लोग सतलुज के रेल-पुल पर पहुँच गये। वहाँ तीन चिताएँ जल रही थीं परन्तु पुलिस लौट चुकी थी। संध्या तक वहाँ खूब भीड़ लग गयी। उस स्थान से चिताओं की राख या अस्थियाँ आदि जो कुछ भी मिला, लोग श्रद्धा से उठा ले गये। बाद में मार्च १६४७ तक वहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता रहा। अब वह भाग पाकिस्तान में है।

कुछ ऐसी अफवाहें भी फैली थी कि पुलिस ने इन शहीदों के मृत शरीरों के साथ भी प्रतिहिंसा का व्यवहार किया था अर्थात् शरीरों को चिता पर भस्म करने के पहले उनके टुकड़े कर दिये गये थे और हिन्दू रीति या प्रथा को पूरा नहीं निबाहा गया था। अफवाहों के निराकरण के लिये सरकार ने उसी रात विज्ञप्ति प्रकाशित की थी *कि भगतसिंह का अन्त्येष्टि संस्कार सिख विधि से करने के लिये एक ग्रंथी* (सिख पुरोहित) तथा सुखदेव और राजगुरु के लिये एक ब्राह्मण पुरोहित को नियुक्त किया गया था। उनकी चिताऐं भी नदी के किनारे उचित स्थान पर बनायी गयी थी। सरकार द्वारा अनुष्ठान में जनता की श्रद्धा भावना की आशा तो हो नहीं सकती थी परन्तु जो लोग अँग्रेजी सरकार के ढंग से परिचित हैं, उन्हें शहीदों का अंगच्छेद किया जाने की बात पर विश्वास न होगा। आखिर सरकार को इसकी जरूरत क्या थी? अँग्रेज शासक इस बात के लिये सदा सतर्क रहते थे कि वे बर्बर न समझे जायें या जनता की उत्तेजना के लिये अनावश्यक कारण न बन जायें। वे न्याय और कानूनी नैतिकता का आडम्बर कायम रखते थे। भारतीय पुलिस और सेना पर नैतिक प्रभाव बनाये रखने के लिये ऐसा व्यवहार आवश्यक और सहायक था।

कुछ और भी ऐसी असंगत अफवाहें फैलायी गयी थी जिनसे इन शहीदों के मनुष्येतर होने की भावना झलकती है। उदाहरणतः फाँसी की कोठरी में प्रसन्नता से उनका वजन बहुत अधिक बढ़ जाना और उनका फाँसी के तख्ते पर कूद जाने के लिये व्याकुल और आतुर रहना। जेल का अनुभव पाये लोग प्रायः जानते हैं कि फाँसी की कोठरी में अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोगों का वजन बढ़ जाता है। इसके कारण शारीरिक हैं, फाँसी की कोठरी में बंद व्यक्तियों को कुछ दिन का मेहमान मान कर खाना अपेक्षाकृत अच्छा दिया जाता है। उन्हें नित्य आध सेर दूध भी दिया जाता है। उन्हें जेल के काम की मेहनत नहीं करनी पड़ती। फाँसी के भय का आतंक तो सजा पाने वाले पर सबसे अधिक तभी होता है जब पहले-पहल सेशन अदालत से फाँसी का हुक्म होता है। उसके बाद हाईकोर्ट से भी सजा बहाल रहने पर गवर्नर के यहाँ दया की प्रार्थना पर भरोसा रहता है। प्रार्थना अस्वीकृत हो जाने पर भी निर्णय या फाँसी की तारीख अपराधी को बतायी नहीं जाती। बस रात भर पहले, बल्कि घंटे-दो-घंटे पहले जब उसे तौल कर देखा जाता है *या नहा-धोकर भगवान का नाम लेने के लिये कह दिया जाता* है, तभी वह जान पाता है कि उसका अन्त समय आ गया है।

प्रायः ही लोग फाँसी की कोठरी में छः महीने या साल भर तक प्रतीक्षा में बन्द रह जाते हैं। मानसिक रूप से इस अवसर के लिये तैयार भी हो ही जाते हैं। सौ में से दस-पाँच ही ऐसे निकलते हैं जो फाँसी के तख्ते की ओर ले जाये जाते समय रोते या चिल्लाते हैं या जिन्हें खींच कर ले जाना पड़ता है। अक्सर अभियुक्त राम-राम

। अल्लाह-अल्लाह पुकारते स्वयं ही उस ओर चले जाते है । कत्ल के कुछ अपराधी से भी आ जाते हैं जो निर्भय प्रवृत्ति के कारण अन्त समय तक हँसते य। गाते रहते । ये ऐसे लोग होते हैं जो स्वभाव से अपराधी प्रवृत्ति के नही होते परन्तु आत्म-म्मान या अपने विश्वास से कर्त्तव्य की भावना मे कत्ल कर बैठते हैं परन्तु ऐसे लोगो ी कर्त्तव्य भावना पारिवारिक या वैयक्तिक होती है, सामाजिक या राष्ट्रीय नही ।

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के फाँसी की कोठरियो मे रहते समय भी उनके ास मे एक ऐसा ही व्यक्ति केसरसिंह नाम का था । इन लोगों के फाँसी की कोठरियों ं जाने के समय केसरसिंह वहाँ पहले से मौजूद था । उस पर अपने बहनोई और गाँव े नम्बरदार के कत्ल का मुकदमा था । पुलिस लाशें नही पा सकी थी इसलिए केशरसिंह ो हाईकोर्ट से छूट जाने की आशा थी। वह सब मे कहा करता था, अभी मुझे एक त्ल और करना है । लौट कर फाँसी चढूँगा । केसरसिंह छूट गया और सचमुच दो ास बाद नायब थानेदार का कत्ल करके फिर लौट आया । सेशन ने उसे फिर फासी ी सजा का हुक्म दे दिया । इस बार वह हाईकोर्ट मे अपील नही करना चाहता था । उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी चाची की प्रार्थना पर अपील कर दी गई । कत्ल किये गये व्यक्ति की लाश, प्रमाणस्वरूप इस बार भी नही मिली थी। सम्भव था कि छूट जाता। केसरसिंह ने दर्खास्त दे दी कि मैं कुछ कत्लो और लाशो का भेद पुलिस को देना चाहता हूँ। पुलिस उसे बेड़ियाँ पहना कर पहरे मे ले गयी। केसरसिंह ने अपने तीनो कत्लो की लाशें बरामद करवा दी और अदालत मे कत्ल कबूल कर दिये । वह फिर फाँसी की कोठरी में आ गया उस आतशक, सुजाक की विकट बीमारियाँ थी। फाँसी की कोठरी मे दिन भर निलज्ज और अश्लील गीत ऊँचे स्वर मे गाया करता था। शायद फाँसी पर चढ़ कर शांति पा जाने के लिए बेचैन था । एक दिन उसे हमारे साथियों ने समझाया 'तू इतना बहादुर आदमी है, ऐसे गन्दे गीत तुझे शोभा नही देते।"

केसरसिंह ने पूछा,—"तो फिर क्या गाया करूँ ? कुछ तो गाऊँ कि समय कटे !"

साथियो ने कहा,—"भाई, तू और कुछ नही समझता तो भगवान या वाहगुरु का ही नाम लिया कर । गन्दे तो न बका कर।"

केसरसिंह इन लोगो की बात मानता था। उसने स्वीकार कर लिया,—"बहुत अच्छा अब मैं गाया करूँगा—मौला मैं कुक्कड खादे तेरे, तू बक्ष दे औगुन मेर ।" (हे मालिक, मैंने तेरे बहुत से मुर्गे खाये हैं, तू मेरे अपराध क्षमा कर।) केसरसिंह फाँसी होने की ओर जा रहा था तब भी यही गीत गा रहा था ।

केसरसिंह जैसे लोगो की मानसिक अवस्था स्वस्थ और सम नही समझी जा सकती। ऐसे लोग अपने जीवन से खिन्न होकर मृत्यु से शान्ति की आशा करते है ।

ऐसे लोगो की मानसिक प्रवृत्ति को वीरता नही कहा जा सकता। जीवन से उपराम होकर शान्ति के लिये मृत्यु की शरण चाहना वीरता नहीं है। भगतसिंह और उसके साथी न जीवन से खिन्न थे और न उनकी मानसिक अवस्था विकृत थी, न वे जीवन से घबरा कर शान्ति के लिये मृत्यु चाहते थे। उनका लक्ष्य मानवता का कल्याण था। मानवीय अधिकारो को पाने का कर्त्तव्य पूरा करने के लिये उन्होने मृत्यु को स्वीकार किया था। इस परिस्थिति का सामना उन्होने स्वस्थ, सम मानसिक अवस्था से किया। यही उनकी वीरता थी।

इन तीनो शहीदो की एक-दूसरे से किसी प्रकार की तुलना करना उचित नही जँचता परन्तु औचित्य के विचार से ही कहना पड़ता है कि सुखदेव के साथ अन्याय हुआ है। उसकी भावना को ठीक से समझा नही गया। उसके और दूसरे साथियो के दृष्टिकोण, प्रकृति मे अन्तर होने से उसका व्यवहार भी कुछ विचित्र होता था। पहली बात थी, सुखदेव की गिरफ्तारी के बाद आवेश मे कुछ बयान दे देना। इसी बात से उसके और दूसरे साथियो के व्यवहार मे अन्तर आ गया था। बाद मे उसकी भावना की ओर ध्यान न देकर उसके व्यवहार की भिन्नता की ओर ही ध्यान जाता रहा। सुखदेव के अन्त तक के पूरे व्यवहार को देख कर ही उसे ठीक समझा जा सकता है। फाँसी के दिन सुखदेव के व्यवहार से स्पष्ट है कि वह साहस मे किसी की अपेक्षा कम नही बल्कि कुछ अधिक उग्र ही था। शत्रु पक्ष से किसी प्रकार के सौजन्य की आशा करना या उनके प्रति सौजन्य दिखाना उसके स्वभाव मे न था। मुकदमे के विषय मे भी उसका व्यवहार और दृष्टिकोण ऐसा ही था। दूसरे साथियो का विचार था, यदि मुकदमे और कानून के दाँव-पेचो से दण्ड से बचा जा सकता है तो क्यो न बचा जाये। सुखदेव को मुकदमा लड़ना भी शत्रु से इस प्रकार का सहयोग ही जान पडता था। उसका दृष्टिकोण था—विदेशी सरकार से हमारी लड़ाई है। हम लड रहे है। उन्हे जो करना है, कर लें। उसका आरम्भिक बयान अपने काम की स्वीकृति के रूप मे इसी भावना का परिणाम था। उसके दृष्टिकोण मे गलती चाहे हो परन्तु कायरता या जान बचाने की भावना नही थी।

पुनः संगठन का प्रयत्न

कुछ सहायक

मैं दिल्ली आने-जाने लगा था। महाशय कृष्ण जी को रुपये-पैसे के लिये फिर परेशान कर रहा था। खासकर मैं दल के नाम पर लिया रुपया वैयक्तिक आवश्यकताओं के लिए खर्च नहीं करना चाहता था पर 'यह लक्ष्मण रेखा' निभती नहीं थी क्योंकि व्यक्तिगत उपयोग के नाम पर लिया रुपया ही अधिकांश में दल के काम में लग जाता था। एक दिन कृष्ण जी ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, दो नये भक्तों से परिचय करा देता हूँ। अब मेरी जान छोड़ो।"

कृष्ण जी की पत्नी के भाई ध्रुवदेव हमारी वजह से एक बार हवालात काट आने पर भी सहायता करते रहते थे। अब कृष्ण जी ने अजमेरी दरवाजे के भीतर रोशन थियेटर के समीप की गली में रहने वाले एक सज्जन प्रभुदत्त शर्मा से परिचय करा दिया। प्रभुदत्त का अपना खूब बड़ा मकान और सम्पन्न परिवार था। उन दिनों वे शौकिया हवाई जहाज उड़ाना सीख रहे थे। बाद में वे सबसे पहले और मुख्य भारतीय सिविल पाइलट बन गये थे। प्रभुदत्त की सहायता की कोई सीमा नहीं थी। उनके पास अपनी छोटी मोटर थी। जहाँ कहीं मुझे जाना होता वे प्रायः ही पहुँचा देने के लिए प्रस्तुत रहते। यदि कभी स्वयं साथ जाने में खतरा समझते तो कह देते, "तुम गाड़ी ले जाओ। पकड़े जाओगे तो कह दूँगा, मेरी गाड़ी चोरी हो गई है। जहाँ तुम्हारे खिलाफ इतने मुकदमे है, मोटर चोरी का एक और मुकदमा सही!" उन्हें यह भी मालूम था कि लाहौर और देहली षड्यन्त्र के मुकदमे में हमारे कुछ साथियों ने मुखबिर बन कर दल की सहायता देने वाले कई लोगों को संकट में डाल दिया था इसलिये वे चाहते थे कि मैं उनका परिचय दल के किसी दूसरे आदमी को न दूँ। मैंने भी उनके इस अनुरोध का अक्षरशः पालन किया।

पहचानती है।"

पाडे की दूसरी बात तो कम से कम ठीक ही थी। अभी दुबारा वारन्ट न होने पर भी वह फरार जैसा ही था। अस्तु, मैंने ही कानपुर आना-जाना स्वीकार कर लिया। मई मास मे फिर कानपुर मे बुलावा आया कि संगठन के सम्बन्ध मे सब मिल कर फैसला करेंगे। मैं अमुक दिन कानपुर मे ग्यारह बजे सरसैया घाट पर मिलूं।

जहाँ तक याद है, कानपुर जाकर गुलजारीलाल के यहाँ ही ठहरा था। दोपहर मे उन्ही की साइकिल लेकर सरसैया घाट पहुँचा। मई का महीना, चिलचिलाती धूप थी। ऐसे समय सरसैया घाट सूना होने की आशा थी। घाट पर पहुँच कर देखा, घाट से ऊपर किनारे के एक तरफ पीपल के पेड के नीचे शिव जी के छोटे से मन्दिर के चबूतरे पर अपने साथी काशीराम, भवानीसहाय और राजेन्द्र निगम बैठे ताश फेंट रहे हैं। सुरेन्द्र पाडे और किसी दूसरे साथी की प्रतीक्षा थी। इधर-उधर की बातो मे पाँच सात मिनट ही गुजरे होंगे। मेरा ध्यान कुछ कदम पर खडे चार आदमियो और एक इक्के की ओर गया। इन लोगो के पास दो साइकिलें भी थी। अपने साथियो से पूछा, "यह कौन लोग है? कैसे, कब से खडे है।"

काशीराम ने उत्तर दिया, "न जाने कौन है। मेरे पीछे-पीछे चले आये है। कब से खडे है।"

काशीराम से उत्तर सुनकर मैंने उसकी बुद्धि पर विस्मय प्रकट किया, "अजीब आदमी हो! कोई पीछा कर रहा था तो उसे साथ ही ले आये? पीछा करने वाला सी० आई० डी० के अतिरिक्त और कौन होगा?"

काशीराम ने कहा, "मैंने तो घूम-घाम कर पीछा छुडाने की कोशिश की लेकिन यह लोग मानते ही नही।"

काशीराम की इस सादगी पर क्रोध आया। अभी और भी साथी आने वाले थे। मैने कहा, "यह तो तुमने बुरा किया। सभी को संकट मे डालोगे।' पर अब क्या हो सकता था। दूसरे लोगो के आ जाने से पहले ही इनसे निबट लेना या वह जगह छोड देना उचित था। एक हाथ ताश बाँटा कि देखें वे लोग क्या करते हैं। उन्हे उसी जगह जमे खडे देखकर मैंने उन्हे समीप पुकार लिया "अरे भाई खडे क्या देखते हो? आओ न दो हाथ ताश के ही हो जायें।"

"हम खडे हैं। आपसे कुछ कहते थोडे है। आप लोग खेलिये!" उत्तर मिला।

'पर खडे क्यो हो? कुछ काम है हमसे?" मैंने फिर पूछा।

"कुछ काम नही है। आप लोग खेलिये।" उन्होंने उत्तर दिया।

'हम लोग यहाँ अकेले मे अपने हँसी मजाक और खेल के लिये आये है। किसी

का खड़े होकर ताकना तो अच्छा नहीं लगता।" मैंने अनुरोध किया।

"हम आपसे कुछ नहीं कह रहे है। आप अपना खेल खेलिये।" फिर उत्तर मिला।

अब क्या सन्देह था। मैंने उन्हें सुना कर अपने साथियों से कहा, "यह लोग यहाँ बैठना चाहते हैं तो चलो, हम ही कहीं और चलें।"

हम चारों आदमी उठ खड़े हुये और साइकिलें लेकर सड़क पर आकर 'लाल इमली मिल' की ओर चलने लगे। उनमें से दो साइकिलों पर और दो खूब तेज इक्के पर हमारे पीछे आ रहे थे। उस समय राजेन्द्र निगम के विरुद्ध वारण्ट नहीं था। मैंने उससे कहा, "आगे फटने वाले रास्ते से तुम हालसी रोड की ओर चले जाना। अगर इनमें से कोई तुम्हारा पीछा करेगा तो यह बँट जायेंगे। तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगे। शेष को हम देख लेंगे।" निगम उन दिनों कांग्रेस दफ्तर में रहता था।

लाल इमली के चौक पर आकर निगम हालसी रोड की ओर घूम गया। उन लोगों ने निगम का पीछा नहीं किया। हम बायें, कचहरी जाती सड़क पर मुड़ गये। मैंने काशीराम और भवानीसहाय से कहा, "साइकिलें खूब तेज चलाओ। जब मैं कहूँ तो एकदम रुक जाना।" हम लोग खूब तेज चले। हमारा पीछा करने वाले भी उतने ही तेज हो गये। इक्के का घोड़ा बढ़िया था। पटापट खूब तेज चला आ रहा था। सोचा, आगे तो कचहरी आ जायगी। वहाँ भीड़ में हमारा बचाव और कठिन हो जायगा। मैंने अपने साथियों से सहसा कहा, "स्टॉप!"

हम तीनों ने अपने साइकिल ब्रेक लगाकर रोक दिये। हमारा पीछा करने वाले पहले से खबरदार न होने के कारण हमसे आगे निकल गये। हमारे रुक जाने पर वे भी रुक गये और लौट कर हमारी ओर आ गये। इस प्रयत्न में उनमें से एक आदमी की कमर में कुर्ते के नीचे लटकते रिवाल्वर की झलक मुझे मिल गयी। मैंने उन लोगों को फिर सम्बोधन किया, "आखिर आप लोग चाहते क्या है?"

इस बार उनमें से एक ने काशीराम की ओर संकेत करके उत्तर दिया, "हम इन्हें अपने साथ थाने ले जायेंगे।"

"क्यों?" मैंने पूछा।

"इनके नाम वारण्ट है।"

"इनके नाम वारण्ट कैसे हो सकता है।" मैंने पूछा, "अच्छा, क्या नाम है इनका?"

"काशीराम।" उत्तर मिला।

"मेरा नाम तो जगदीश है।" काशीराम बोला। मैंने भी उसका समर्थन किया। उन लोगों ने कहा, "अगर ऐसी बात है तो यह हमारे साथ कोतवाली चलें।

वहाँ फैसला हो जायेगा।"

मैंने फिर कहा, "यह कोतवाली आकर खुद बात कर लेंगे। आप जाइये। हम इन्हें कोतवाली ले आयेंगे।"

ऐसा प्रस्ताव वे लोग क्या मानते। मैं अवसर की प्रतीक्षा में था। अस्तु, मैंने काशीराम से कहा, "अच्छा भाई, यह लोग कह रहे हैं तो इनकी बात मान लो। तुम इनके साथ जाओ। हम तुम्हारे भाई को लेकर कोतवाली आते हैं।"

काशीराम घबराया, "नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। मैं क्यों जाऊँ? मेरा नाम जगदीश है।"

मैंने उसे डाँटा, "जाते क्यों नहीं, जब यह लोग कह रहे हैं। तुम्हें पुलिस का कहना मानना चाहिये। तुम्हारा क्या हर्ज है?"

स्वाभाविक ही था कि काशीराम घबरा जाता कि मैं उसे मुसीबत में अकेले धकेल रहा हूँ।

"मैं चला जाऊँ भैया?" उसने निराशा से पूछा।

मैंने और भी डाँटा, "कह तो रहा हूँ, जाओ। पुलिस से क्या झगड़ा? हम तुम्हारे भाई को लेकर अभी आते हैं। घबराने की क्या बात है?"

गहरा साँस लेकर काशीराम ने कहा, "अच्छा!" और भाग्य भरोसे अपनी साइकिल घुमाने लगा। शायद यह सोच कर कि अब अकेले जो बन पड़ेगा, करेगा।

पुलिस वालों ने उसकी साइकिल का हैंडल थाम कर कहा, "आप इक्के पर बैठ जाइये। साइकिल आपकी हम इक्के के पीछे बाँध देंगे।"

काशीराम ने अपनी साइकिल न छोड़ने की जिद् की। वह यही सोचता होगा कि साइकल पास रहने से ही भाग जाने की आशा हो सकती है। मैंने फिर डाँटा, "यह लोग जो कहते हैं वही क्यों नहीं करते हो जी?"

काशीराम ने बहुत ही निराशा में साइकिल छोड़ दी और पुलिस वालों के कहने से इक्के पर बैठ गया। पुलिस के दो आदमी इक्के वाले से रस्सी लेकर साइकिल को इक्के के पीछे बाँधने लगे। दूसरे दो भी उसी ओर देख रहे थे। मैंने अपनी साइकिल कुछ पीछे हटा कर और कमर से पिस्तौल निकालकर दो पुलिस वालों को एक-एक गोली मार दी। मिलिटरी का पिस्तौल था। उसकी गोली बहुत बड़ी थी। दोनों एक-एक गोली में ही गिर कर चिल्लाने लगे। शेष दो में से एक साइकिल पर भागा और एक सड़क किनारे बँगले की बाड़ के भीतर कूद गया।

काशीराम इक्के से कूद आया और उसने भी एक गोली एक गिरे हुये सिपाही को मार दी। मैंने उससे और भवानीसहाय से एकदम साइकिलों पर चल देने के लिये

कहा और उनके पीछे-पीछे स्वय हाथ मे थमे पिस्तौल से भागे हुए सिपाही की ओर गोली चलाता हुआ साईकिल पर चला। एक सिपाही जो साइकिल पर समीप के बँगले की ओर गया था, अब आड लेकर मुझ पर गोली चला रहा था पर इतनी दूर से और तेज चलती साईकिल पर उसका निशाना क्या लगता। उत्तर मे मैंने उसकी ओर भी एक गोली चला दी।

लौट कर चुन्नीगंज मे गुलजारीलाल जी की कोठरी मे शरण ली। इस घटना के बाद कानपुर मे विचार-परामर्श क्या करते। अगले दिन मैं दिल्ली लौट गया।

दूसरे दिन कानपुर के पत्रो मे पढा था कि दोनो ही सिपाहियों की अवस्था चिंताजनक थी। एक के तो गोली पीठ की ओर से फेफड़े के पास से वार कर बचती निकल गयी थी, दूसरे के पेट मे काफी जख्म कर गयी थी।

दिल्ली से कानपुर जाने के लिये रुपया सुमित्रा दीदी से लिया था। यह भी उन्हें मालूम था कि मैं किसी काम से कानपुर जा रहा हूँ। मेरे लौटने से पहले ही दिल्ली के समाचार पत्रो मे भी कानपुर की घटना छप गयी थी। दिल्ली लौट कर सुमित्रा जी से मिलना हुआ तो उन्होंने पूछा, 'भैया, कानपुर मे यह क्या किया तुमने ?"

उनका समाधान किया, "वे लोग खामुखा हमें मारना चाहते थे। अपना बचाव तो करना ही पड़ता है।" घायल हो जाने वाले सिपाहियों के प्रति उन्हें बहुत सहानुभूति थी। कानपुर के वे सिपाही तो काशीराम को ही ढूँढ रहे थे परन्तु उनके बयो सरकार का विश्वास हो गया था कि कानपुर काड के लिये यशपाल जिम्मेदार था। मेरी गिरफ्तारी के बाद मुझ पर इस घटना के लिये भी मुकदमा दायर किया गया था। कुछ दिन बाद राजेन्द्र निगम कानपुर मे गिरफ्तार कर लिया गया। वह घटना के स्थान, समय पर भी न था। इसी मामले मे उस सात वर्ष के लिये जेल मे डाल दिया गया। यह अँग्रेजी न्याय का एक नमूना था। इस काड के लिय किसी को तो दड मिलना ही चाहिये था वर्ना पुलिस का निकम्मापन साबित हो जाता। जो हाथ आ गया वही सही।

सुमित्रा दीदी ने पहले से कह रखा था कि राखी के दिन मैं अवश्य ही दिल्ली मे रहूँ। राखी के दिन वे लगभग नौ बजे हमारे यहाँ आयीं। उन्हें कुछ उदास देख कर पूछा, 'क्यों, क्या बात है ?"

' भैया, आज मेरी इन्सल्ट हो गयी।" दीदी ने उत्तर दिया।

'क्यों ? कैसे ? क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

उन दिनों गाँधी जी सन् १६३१ की गोलमेज कान्फ्रेंस के लिये लदन जाने वाले थे। शायद उसी प्रसग मे नेहरू जी दिल्ली आये थे और नारायणदत्त जी के यहाँ ही ठहरे थे। राखी के दिन सुबह सुमित्रा राखी लेकर नेहरू जी के पास पहुँची 'मैं

आपको भाई बनाने के लिये राखी बाँधना चाहती हूँ।"

"क्यों, क्या जरूरत है?" नेहरू जी बोले, "मेरी दो बहनें काफी हैं। दुनिया भर की लड़कियों को बहन बनाते फिरने का शौक मुझे नहीं है।"

सुमित्रा जी पर घड़ों पानी पड़ गया। चुप खड़ी रह गयीं। उनका मुँह लटक गया। नेहरू जी ने कहा, "अच्छा, लाओ बाँध दो।"

सुमित्रा जी ने मुझसे कहा, "ऐसी अवस्था में मन तो नहीं कर रहा था। स्वयं ही जाकर कहा था, इसलिये राखी बाँध दी परन्तु बहुत अपमान अनुभव हुआ।"

मैंने हँस कर कहा, "क्यों बाँध दी। आपको कहना था—पंडित जी, आपकी बात मेरी समझ में आ गयी। दुनियाँ भर के लोगों को भाई बनाने की क्या जरूरत? रहने दीजिये।"

सुमित्रा दीदी का नहरू जी की बात कड़वी लगना स्वाभाविक था परन्तु नेहरू जी की बात में गलती क्या थी? किसी लड़की को बहिन या लड़के को भाई बनाये बिना क्या स्त्री-पुरुषों में परिचय और सौजन्य तथा मित्रता का भाव हो ही नहीं सकता? मुझे स्वयं दुनिया भर की स्त्रियों को माता और बहिन की दृष्टि से देखने के उपदेश का अर्थ यही जान पड़ता है कि हम साधारणतः सभी स्त्री-पुरुषों में यौन सम्बन्ध की ही आशंका लिये रहते हैं। ऐसे पुरुष भी चमत्कार ही होंगे जो सभी स्त्रियों के प्रति यौन-भावना रख सकते हैं। एक सामान्य स्वस्थ मस्तिष्क से तो ऐसी विराट आसक्ति की आशा नहीं की जा सकती।

एक बार फिर कानपुर से संदेश मिला कि मिल कर संगठन के सम्बंध में बात कर ली जाये। इस बार मुझे कानपुर नहीं बुलाया गया। हापुड़ में मिलना निश्चय हुआ। भावी कार्यक्रम के सम्बध में मैंने प्रस्ताव रखा कि हमारे दल का आधार हमारी विचारधारा है। इन विचारों के प्रति सहानुभूति फैला कर हमें सर्वसाधारण में दल का विस्तार करना चाहिये। जहाँ भी हमारे विचार के लोग हों, हमारा कार्यक्रम स्वयं चलता रहे, इत्यादि इत्यादि। सुरेन्द्र पांडे के भी ऐसे ही विचार थे। क्रियात्मक रूप से मेरा प्रस्ताव था कि हम सभी को यथासम्भव व्यक्तिगत रूप में स्वावलम्बी बन जाना चाहिये। विचारों के प्रचार का हमारे लिये एकमात्र साधन गुप्त प्रेस हो सकता है। इसलिये हम लोगों को जहाँ सम्भव हो प्रेसों में कम्पोजीटरी या प्रेस के दूसरे कामों में लग जाना चाहिये ताकि फिलहाल निर्वाह के लिये डकैती अथवा माँग-ताँग से छुट्टी मिले।

मेरे इस प्रस्ताव से पांडे या और भी कोई दूसरा साथी सहमत दिखाई नहीं दिया। पांडे का विचार जान पड़ता था कि जहाँ भी आवश्यकता हो, शस्त्र लेकर डकैती करने

या ऐसे कामो की जिम्मेदारी यशपाल पर रहे। वह इन कामो के लिये उपयुक्त है। दल का सैद्धान्तिक मार्ग निर्देशन और संगठन पाडे करता रहे। यह बात मुझे कुछ अच्छी नही लगी। रात मे विलम्ब हो जाने से किसी परिणाम पर पहुँचे बिना बातचीत छोड कर हम लोग फर्श पर बिछी चटाई पर इधर-उधर लुढक कर सो गये थे। सुबह नीद खुलते-खुलते कान मे आवाज पडी। मेरी पीठ की ओर भवानीसिंह और पाडे काफी ऊँचे और खिन्न स्वर मे बात कर रहे थे। बात अपने ही सम्बध मे जान पडी इसलिये चुपचाप सुनता रहा। भवानीसिंह ने कहा, " वाह साहब, यह हमें कम्पोजीटर बन जाने की सलाह दे रहे है। वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम चलाने के लिये बिजली का बटन क्या दबा दिया, अपने आपको जाने क्या समझने लगे ।" कुछ देर बाद उठ कर बैठा तो यह प्रकट नही किया कि मैं उनकी बात सुन रहा था। अपने मन मे निश्चय कर लिया कि इन लोगो को मुझ पर विश्वास नही है। हापुड से चलने के लिये तैयार होकर मैने इतना कह दिया, 'आप स्वय फैसला कर लीजिये। मुझे आप लोगो का निर्णय जँचेगा तो साथ दूँगा।'

लगभग उन्ही दिनो की बात है। एक दिन सूर्यास्त से कुछ पूर्व मैं चावडी बाजार की घनी भीड मे से फुटपाथ पर जामा मस्जिद की ओर चला जा रहा था। सहसा क्या देखता हूँ कि ठीक मेरे सामने ही कानपुर की घटना के चार सिपाहियो मे से एक चला आ रहा है। बस, दो ही कदम का अन्तर रह गया था कि हम दोनो की आँखें अचानक चार हो गयी। कानपुर की घटना के समय हमारा पीछा करने वालो मे वह आदमी इक्के पर था। उसके पहलवानी ढग, पहनावे और पक्के साँवले रग के कारण उसे पहचानने मे कोई दुविधा नही हुई। वह उस समय भी कुरता धोती ही पहने था। मैं भी अवसरवश उस समय कानपुर की घटना के समय की तरह धोती ही पहने था। दो सिपाहियो के गोली खाकर गिर पडने पर वही सिपाही भाग कर सामने के बगले की आड से मुझ पर गोली चलाने लगा था।

सिपाही से आँखें चार होते ही मैने साँस भर कर उसकी आँखो मे घूर-कर देखा। वह चोटी से ऐडी तक काँप उठा। मै कमर पर हाथ रख कर उसके समीप हो गया और आँखो से उसके पीठ पीछे इशारा किया—चुपचाप चल जाओ।

सिपाही बहुत तेज चाल से एकदम लौट कर चल पडा। मैं वैसे ही खडा उसकी ओर देखता रहा। प्राय तीस कदम जाकर उसने घूम कर पीछे की ओर देखा। मुझे वैसे ही खडे देखकर वह दौड पडा। मैं समीप की गली मे से घुस खूब तेज चलता हुआ देखता जा रहा था कि कोई पीछा तो नही कर रहा। अपनी सुरक्षित जगह पहुँच कर सोचा, इस समय सिपाही निश्चय ही निशस्त्र रहा होगा। प्राणो के भय ने उसे वैसे चुप करा दिया। हैदराबाद (सिंध) स्टेशन वाली घटना भी याद आयी। यह सिपाही

कोतवाली में आकर यदि मुझे देख कर भी चुपचाप भाग आने की बात कहता तो खामुखा नौकरी से बरखास्त ही होता।

इस सिपाही से एक बार फिर सामना हुआ। वह विकट परिस्थिति थी। उ मुझे पहचानने के लिये ही लाकर सामने खड़ा कर दिया गया था पर वह पहचान ह न सका। पहचान न सकने का रहस्य प्रसंग आने पर ही बताना ठीक रहेगा।

अब मेरे दिमाग में फिर रूस चले जाने का खयाल प्रबल हो उठा था। सोच लिया—जिन लोगों को मुझ पर विश्वास नहीं, उनकी मुझ पर क्या जिम्मेदारी प्रकाशवती ने भी यही सलाह दी।

इन दिनों दिल्ली में लाहौर नेशनल हाई स्कूल के हेडमास्टर गुरुदत्त जी से मुला बात हो गयी। उन्होंने भरोसा दिया, "तुम अगर विदेश जाना चाहते हो तो प्रकाशवती हमारे यहाँ रह जायेंगी।"

गुरुदत्त जी नेशनल स्कूल टूट जाने के बाद उत्तर प्रदेश के अमेठी ताल्लुके के राजा रणञ्जयसिंह के प्राइवेट सक्रेटरी का काम कर रहे थे। एक तरह से बात तय हो गयी। प्रभुदत्त शर्मा से भी बात की। उसने सलाह दी कि रुपये का कुछ तो प्रबन्ध मैं कर दूंगा, कुछ सुमित्रा दीदी से कहो। सुमित्रा तो पहले ही इस बात पर जोर दे रही थी कि मैं आत्मरक्षा के लिये विदेश चला जाऊँ।

गुरुदत्त जी के साथ प्रकाशवती अमेठी चली गयी। हमने दिल्ली वाला मकान छोड़ दिया। मेरा यह खयाल था कि सरहद के रास्ते रूस पहुँचने के प्रयत्न में बहुत खतरा होगा। कहीं पठान लुटेरों ने ही समाप्त कर दिया तो क्या फायदा? या रूस की सीमा में पहुँचने पर जासूस समझ लिया गया और सोवियत की जेल में डाल दिया गया तो क्या फायदा? क्यों न ऐसे लोगों के माध्यम से जाऊं जिनका रूस से सम्पर्क हो। तभी वहाँ मेरा विश्वास किया जा सकेगा। इस विचार का एक कारण यह था कि एम० एन० राय रूस से भारत लौट आये थे और अभी गिरफ्तार नहीं हुये थे। उस समय वे डाक्टर अहमद के नाम से बम्बई में थे। किसी एक सूत्र से सुना था कि उन्होंने मुझसे मिलने की इच्छा भी प्रकट की थी। उस समय तक मैं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और एम० एन० राय के कार्यक्रम के भेद के विषय में कुछ नहीं जानता था। मेरठ षड्यन्त्र का मामला चल रहा था। मैं मेरठ जाकर इस केस के जमानत पर रिहा अभियुक्त हचिन्सन से मिला और इच्छा प्रकट की कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से मुझे यह प्रमाण पत्र दे दिया जाये कि मैं अँग्रेज सरकार से लड़ने वाला फरार क्रान्तिकारी हूँ और विश्वास के योग्य हूँ।

हचिन्सन ने आश्वासन दिया, इसमें विशेष कठिनाई नहीं होगी परन्तु इसके

लिये मुझे बम्बई जाना होगा। उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन दूसरे ढंग का था। उस समय सुहासिनी (सरोजिनी नायडू की छोटी बहिन) कम्युनिस्ट पार्टी की प्रेज़ीडेंट थी। मैं जब बम्बई पहुँचा वे बीमार थी। साथी रणदिवे से बात हुई। यह लोग प्रमाण-पत्र देने में हिचक रहे थे कि यदि मैं वहीं गिरफ्तार हो गया तो मेरे पास उनका प्रमाण-पत्र मिलने से उनकी पार्टी और आतंकवादियों में सम्पर्क का प्रमाण बन जायेगा। कलकत्ता के ऐसे आदमियों से परिचय करा देने के लिये तैयार थे जिनकी सहायता से समुद्री रास्ते से विदेश जाना सम्भव हो सकता। बम्बई में उनके स्थानों पर रहते समय मेरा शस्त्र रखना भी वे उचित नहीं समझते थे।

मैंने रणदिवे से एम० एन० राय से मिल सकने के विषय में भी बात की। मेरा अनुरोध सुन कर रणदिवे ने कहा, "उसका उपाय तुम स्वयं करो। परन्तु यदि तुम एम० एन० राय से सम्पर्क रखना चाहते हो तो हमारी पार्टी से कोई आशा न करो।" यह सुन इसके बाद ही पता चला कि एम० एन० राय भारत लौटने से पहले कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल से झगड़ कर के आये थे और उनके विरुद्ध चीन में विश्वासघात करने का आरोप या अपवाद था।

मैं बम्बई से लौट आया कि सब बातों का निश्चय करके ही वहाँ लौट कर विदेश जाने की व्यवस्था करूँगा। प्रकाशवती से बात करने के लिये अमेठी गया। वह सभी प्रकार सहमत थी। लौटते समय प्रतापगढ़ स्टेशन पर गाड़ी बदलने के लिये वेटिंग रूम में प्रतीक्षा कर रहा था। गुजराती सेठों की तरह लम्बा कोट, बढ़िया धोती और टोपी पहने था। सहसा देखा कि पूरा स्टेशन पुलिस से घिर गया है। चोर की दाढ़ी में तिनका! यही ख्याल आया किसी तरह पुलिस को मेरे वेटिंग रूम में होने का सन्देह हो गया है। इस जगह से बिलकुल अपरिचित था। सोचा, लड़कर मरने का समय आ गया।

पुलिस कायदे से कुछ-कुछ अन्तर से सभी जगह खड़ी थी। मैंने अटैचीकेस को कमरे के बीचोंबीच पड़ी मेज पर खोल कर रख लिया कि देर तक लड़ने के लिये इसकी थोड़ी-बहुत आड़ रहेगी। वेटिंग रूम का दरवाजा जालीदार था। बाहर मैं स्पष्ट देख सकता था पर बाहर से भीतर न दिखायी दे सकता था। बार-बार झांक कर देख रहा था कि पुलिस वेटिंग रूम की तरफ आती ही होगी। आखिर देखा कि दो इंस्पेक्टर अपनी पगड़िया के झब्बे ठीक करते हुये वेटिंग रूम की ओर आ रहे हैं। दोनों के कंधे से वर्दी के रिवाल्वर भी लटके हुए थे। उनके पीछे कुछ सशस्त्र कान्स्टेबल भी थे। झट जाकर अटैचीकेस के पीछे होकर पिस्तौल लेकर उसका सेफ्टीकैच हटा दिया कि उनके भीतर कदम रखते ही पहली चोट मैं ही करूँगा।

एक कान्स्टेबल ने दरवाजा खोला। एक इन्स्पेक्टर ने भीतर झाँका परन्तु मुस्करा कर बहुत सन्जीदगी से सलाम करके बोला, "आदाब अर्ज है। आपको कुछ जहमत होगी"

उसके ढंग से पिस्तौल को चुपके से अटैचीकेस में ही रखकर मैंने भी बहुत विनय से उत्तर दिया, "आइये तशरीफ लाइये, क्या हुक्म है?"

इन्स्पेक्टर ने बताया, "गवर्नर साहब की स्पेशल का इंजन यहाँ पानी लेगा। कायदा है कि ऐसे वक्त स्टेशन पर मुसाफिर नहीं रहने हैं। तकलीफ न हो तो सामान को ताला लगवा कर जरा बाहर टहल आइये।"

आश्वस्त हो मैंने बम्बइया हिंदी में उत्तर दिया, "जैसा आपका कायदा और हुक्म। हम तो इसमें कुछ नहीं जानता पर हम गाड़ी बदलने को बैठा था। इधर कोई जगह जानता नहीं।"

"तो फिर जरा तकलीफ कीजियेगा कि जितनी देर स्पेशल यहाँ रहे, आप बाहर न आइयेगा, बस आठ-दस मिनिट! परेशानी तो होगी लेकिन मजबूर हूँ, कायदे से।" बात आयी-गयी हुई पर इस घटना से इतना तो स्पष्ट ही है कि सदा ही कितना तनाव दिमाग पर बना रहता था।

सुमित्रा दीदी मसूरी में थी। उनसे रुपये के सम्बन्ध में बात करनी थी। मसूरी पहुँचा। मसूरी जाने वाले साहब लोगों की ही पोशाक में था। सन्देह से परे बड़े होटलों में जाने के खर्च की कठिनाई थी। यों भी पूछताछ से बचने के लिये होटल ठीक नहीं थे। एक बड़े बँगले पर लिखा था—किराये के लिये कमरे खाली। जाकर बात की। उन्होंने पूछा, "परिवार साथ है या अकेले ही है?" अनुमान किया अकेले आदमी को जगह देने में घबरा रहे है। उन्हें सान्त्वना दी, "जगह मिल जाये तो पत्र लिख दूँगा। पत्नी आ जायगी।" जगह मिल गयी।

सुमित्रा दीदी के यहाँ मिलने के लिये पहुँचा। उनकी बड़ी बहिन ही पहले मिलीं। देहली में कभी उनके यहाँ जाता था तो खद्दर के धोती, कुर्त्ता और टोपी पहने रहता था। उन्होंने सुमित्रा जी से जो मेरे विषय में पूछा था तो सुमित्रा जी ने कह दिया था, "एक डाक्टर है। काँग्रेस में काम करते है।"

"डाक्टर है! प्रैक्टिस तो क्या चलती होगी इनकी?" उनकी बहिन ने पूछा था और उन्होंने उत्तर दे दिया था, "हाँ, ऐसे ही होमियोपैथ है बेचारे।"

इस बार मैं उनके यहाँ गया तो बिर्चिस, कोट और टाई पहने था। बहिन जी को पहचानने में उलझन हुई और पहचाना तो ताने से बोलीं—"कहिये डाक्टर साहब, खद्दर कहाँ गया?"

"अब क्या जरूरत है खद्दर की?" मैंने उत्तर दिया, "वह तो स्वराज्य पाने के

लिये ही था। गांधी जी स्वराज्य लेने लदन (गोलमेज कान्फ्रेंस मे) गये तो है। अब क्या जररत है खद्दर के झगडे की?" बहिन जी इस उत्तर से क्या सतुष्ट होती।

सुमित्रा जी से मालूम हुआ कि मसूरी मे वे कुछ भी नही कर सकती। दिल्ली जाकर ही कुछ सोचेगी। दिल्ली वे तभी जाती जब उनका परिवार जाता। लाइब्रेरी बाजार मे से गुजरते समय अचानक लाहौर की एक परिचित कुमारी जी मिल गयी। देख कर बहुत प्रसन्न हुई। उनके साथ ही दिल्ली के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता सूरी परिवार की लडकी भी थी। वे दोनो मुझे अपने यहाँ ले गयी। उन्होंने प्रकाशवती के सम्बन्ध मे पूछा, "कहाँ है?" उत्तर दिया, "वह कही और है।"

वे दोनो कुमारियाँ किसी के यहाँ मेहमान थी। उस मकान मे जगह कम ही थी परन्तु उन्होंने उदारता के साथ रहने का निमन्त्रण दे दिया। उन्हे बताया कि जगह तो काफी बडी ले चुका हूँ यो ही पडी है।

"तो हम लोग ही वहाँ चलो चलें!" कुमारियो ने प्रस्ताव किया।

"मुझे तो कुछ ऐतराज नही।" मुस्करा कर उत्तर दिया, "मेरे साथ रहने मे जो खतरा है, उसके अतिरिक्त यह भी झझट है कि बगले मे रहने वाले पडोसी आप मे से एक को मेरी पत्नी समझ लेंगे क्योकि मैंने उन्हे कह दिया है कि मेरी पत्नी आने वाली है।"

मिस सूरी तो जोर से हँस दी, "उसमें क्या है।" परन्तु दूसरी कुमारी जी को यह बात अपमानजनक लगी। सम्भव है, मेरे मुस्करा कर कहने से कोई विशेष अभिप्राय जान पडा हो। उनका क्रोध और भी बढ गया क्योकि अगले ही दिन उन्होंने मुझे प्रकाशवती के साथ सडक पर देख लिया। उन्हे विश्वास हो गया कि मैंने उनसे झूठ कहा था। बात काफी बढ गयी।

प्रकाशवती अचानक ही मसूरी पहुँच गयी। मुझे उनके जल्दी आने की आशा न थी। बात यह हुई थी कि अमेठी मे उनके प्रति सन्देह का कोई कारण अनुमान होने से उन्हें वहाँ से तुरन्त हट जाना पडा था। उन्हे यह मालूम था कि मै मसूरी गया हूँ। वे मसूरी आ गयी और नारायणदत्त जी का ठिकाना पूछ कर सुमित्रा जी के यहाँ पहुँच गयी। मैं स्वय सडक पर प्रकाशवती को सुमित्रा जी के साथ देख कर विस्मित रह गया था।

सूरी परिवार की दोनो बहिनो ने हमे आश्रय और सहायता देने के लिये प्रस्ताव किया, मैं और प्रकाशवती चुपचाप उनके साथ रह जायें। वे लोग देहरादून मे एक मकान किराये पर ले रही थी। हम लोगो को ऐसा निमन्त्रण देने का अर्थ निश्चय भय और आशका को न्यौता देना था। हमने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वह मकान देहरादून मे खुडबडे मुहल्ले के परे बदाल नदी के किनारे था। बडी शान्ति के

दिन थे। समय मिला तो मैंने पढ़ना शुरू कर दिया और आस्कर वाइल्ड के एक नाटक 'वीरा दि निहिलिस्ट' का अनुवाद भी कर डाला। किसी काम से दिल्ली गया था। सूरी परिवार की मार्फत दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के मैनेजर देवीप्रसाद जी शर्मा से परिचय हो गया था। उनसे अनुरोध किया कि मैं लिख सकता हूँ यदि कोई प्रकाशक चाहे तो मेरी लिखी चीजों को चाहे जिस नाम से या एक निश्चित नाम से प्रकाशित करता रहे और मुझे पारिश्रमिक दे दिया करे। मैं स्वयं कमा कर अपना निर्वाह करना चाहता हूँ। शर्मा जी ने आश्वासन दिया कि यत्न करेंगे। उन्होंने उस समय के एक सफल प्रकाशक ऋषभचरण जी जैन से परिचय करा दिया। वे लुई फिशर की पुस्तक 'गांधी और लेनिन' का अनुवाद करवाना चाहते थे। छ-सात सौ पृष्ठ की अच्छी बड़ी पुस्तक थी। ऋषभचरण जी ने दो सौ रुपया तो मुझे पेशगी ही दे दिया। मैंने सोचा कुछ विश्राम का समय आया।

ऋषभचरण जी ने एक और भी अनुरोध किया कि मैं एक बार उनके मकान पर अवश्य आऊँ। देवीप्रसाद जी के साथ वहाँ गया। बैठक में बैठा था। ऋषभचरण जी कपड़ों में लिपटा एक बन्डल-सा हाथों पर सम्भाले भीतर से ले आये। समीप आने पर देखा तो प्रायः उसी दिन का जन्मा एक बालक था। ऋषभचरण बोले, "मेरा पुत्र है। इसे अपनी गोद में लेकर आशीर्वाद दीजिये कि आपके ही समान शूर वीर और साहसी हो।"

उन्हें समझाया, "मैं शूर-वीर नहीं हूँ। जैसी परिस्थितियाँ आ पड़ी हैं अपना कर्त्तव्य समझ कर निबाह रहा हूँ।" पर वे भला क्यों मानने लगे। अस्तु आशीर्वाद दिया। जाने वे नौनिहाल कितने शूर वीर बने होंगे। १९६० के पश्चात इस नौनिहाल से कई बार भेंट हुई है। अपनी अपेक्षा उसके स्वस्थ कद और सद्व्यवहार से सन्तोष होता है।

अपनी कमाई का भी कुछ पैसा हाथ आने लगा था। हम लोग जरा ढंग से रहने लगे। देहरादून में डी० ए० वी० कालिज के पीछे करणपुर मुहल्ले में एक छोटा-सा सुथरा मकान ले लिया था। बाँस की बनी सस्ती मेज कुर्सी भी ले आये और खिड़कियों में पर्दे लगा लिये। मैं दिन भर अनुवाद किया करता। सन्ध्या समय घूमा करते। देहरादून में कई परिचित भी मिल गये। सौभाग्य से सभी विश्वास योग्य थे। नयी जगह में नया परिचय, नये नाम धाम देते थे। सुमित्रा दीदी का दिया हुआ डाक्टर का खिताब भी साथ चिपका हुआ था। पहनने के लिये प्रभुदत्त, सुमित्रा दीदी और जसवन्त सिंह की कृपा से अच्छा खासा सूट और रेशमी कमीजें थी। चौधरी रामधनसिंह ने स्वयं बना कर एक जोड़ा सुन्दर जूता भी दिया था इसलिये सम्भ्रान्त वेश।

मिस सूरी पहले भी देहरादून में रह चुकी थी। घूमते-फिरते उनकी परिचित और उनकी समवयस्का एक मराठी अध्यापिका से भी परिचय हो गया। उनसे यह मुलाकात मेरी और प्रकाशवती की अलग-अलग हुई थी। मिस सूरी ने प्रकाशवती का परिचय रिश्ते की बहन के रूप में दिया था। मुझसे मुलाकात होने पर मेरा परिचय रिश्ते के भाई डाक्टर के रूप में करा दिया। एक साथ मिलने पर हमारा सम्बन्ध पति-पत्नी का नहीं बताया जा सकता था इसलिये डाक्टर को कुंआरा ही बता दिया गया। डाक्टर साहब के कपड़े-लत्ते काफी अच्छे रहते थे। बताया, विलायत से पास करके आये हैं। बम्बई में प्रैक्टिस शुरू की है। मन्सूरी आये थे। देहरादून में भी कुछ दिन रह रहे हैं। कुआरे, युवा और सम्पन्न डाक्टर के प्रति बीस-बाइस वर्ष की कुमारी बेटी की माँ का सहृदय हो जाना आश्चर्य की बात नहीं थी।

अध्यापिका और उनकी माँ के पड़ोस में एक और उसी आयु की बंग कुमारी अध्यापिका भी थी। इनके पिता उस समय देहरादून आये हुये थे। इन सज्जन को भी डाक्टर साहब का परिचय पाकर बहुत सुख हुआ। सप्ताह में एक दिन इधर चाय हो जाती तो दूसरे दिन दूसरी ओर। यह सब सहृदयता यशपाल के रूप-गुण के प्रति नहीं, विलायत से पढ़ कर आये, बम्बई में हार्नबाई रोड पर प्रैक्टिस शुरू करने वाले अविवाहित डाक्टर प्राणनाथ के प्रति थी। बंग कुमारी के पिता इलाहाबाद से सम्भवतः 'पायानियर' के सम्वाददाता थे इसलिये बातचीत में उन्होंने इग्लैंड और लन्दन के विषय में कुछ जिज्ञासा की। बहुत से इगलिश उपन्यास पढ़ चुका था। लन्दन-ग्लासगो के कई स्थानों के नाम बताकर उनका समाधान कर सकता था।

एक दिन महाराष्ट्र अध्यापिका की माता का सन्देशा मिला कि उनकी तबीयत खराब है। डाक्टर साहब देख जायें तो बहुत कृपा हो। यह झूठ के पाल में पहला तीर लगा। अस्तु, जाना तो पड़ा और जाकर कहा कि मैं तो डेन्टिस्ट डाक्टर हूँ। आप को ज्वर है। किसी दूसरे डाक्टर को बुला लें। आखिर वृद्धा के दाँत में कष्ट सब तक न होता। वह दिन भी आ ही गया। दांत का कष्ट स्वयं भी काफी भुगत चुका था। कई बार डेन्टिस्ट के यहाँ जाना पड़ा था। माँ वृद्धा का मुँह खुलवा कर और बिजली की टार्च से बहुत ध्यान से देखकर कहा, "आप के दाँत में काफी खराबी है। मेरे औजार यहाँ नहीं हैं। आप किसी डेन्टिस्ट के यहाँ दिखाइये। दर्द रोकने के लिये एस्परीन की पुड़िया खाइये और क्लोव आयल की फुरेरी लगा लीजिये।" उस समय तो बात बन गई पर बनी रह न सकी। कैसे? यह गिरफ्तारी के बाद के प्रसंग में बताऊँगा, एक बार बोला झूठ कितनी दूर तक पीछा करता है।

इस प्रेम की बात टलती ही जा रही थी। कुछ समय बीतने पर अपने प्रति

साथियों का पूर्ण विश्वास न होने के तिरस्कार की चोट भी उतनी तीखी न रही थी। सोच लिया था कि जो साथी पूर्ण विश्वास से मेरे साथ काम कर सकते है, उनके साथ मिलकर क्यों न फिर से सगठन बाँधा जाये। सूरी परिवार काग्रेस के लोगो मे तो खूब परिचित था ही, क्रांतिकारियो मे भी उनका परिचय कम न था। यत्न करते ही देहली मे रामसिंह, हरिबन्धु समझदार और मेरठ मे राजेन्द्रसिंह (वारियर), रणधीरसिंह आदि ऐसे लोग मिल गये जो स्वय मुझे खोज रहे थे। मेरठ के राजेन्द्रसिंह और रणधीर तीन-तीन पिस्तौलें भी अपने प्रयत्न से ले आये थे। भाभी माँ भी कानपुर से दिल्ली आकर मुझे खोज रही थी। इतने दिन तक दल का सगठन बिखरा रहने और कुछ न होने से वे बहुत विरक्त थी। उनका विश्वास था कि मै जरूर कुछ कर सकूँगा। पूर्वी उत्तर प्रदेश से कृष्णशकर श्रीवास्तव ने अपने साथियों के पूरे सहयोग का आश्वासन दिया। उसने दिल्ली मे एक आयरिश महिला सावित्री देवी (उर्फ मिसेज जाफरअली) से भी परिचय कराया। सावित्री बैरिस्टर जाफरअली से पृथक् होकर माटेसरी पद्धति से बच्चो की शिक्षा का काम करके अपना निर्वाह कर रही थी। आयरिश होने के नाते उन्हे अग्रेजो से चिढ थी और अब भारत का अपना देश मान कर विदेशी अग्रेजी सरकार को इस देश से हटाने के प्रयत्न मे साथ देना चाहती थी। इन सभी लोगो की राष्ट्रीय भावना की दिशा हि० स० प्र० स० की समाजवादी भावना के अनुकूल थी।

सूरी परिवार का सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी से भी परिचय और सम्पर्क था। इतने सहयोग की आशा से उत्साहित होकर मैंने इन दोनो से भी मिल लेना उचित समझा। पहले सुशीला दीदी से सूरी के मकान पर मुलाकात हुई। दीदी को ऐसा स्वस्थ और इतने अच्छे ढग से पहरे-ओढे देखने का अवसर न पहले कभी हुआ था और न बाद मे हुआ। बहुत अच्छा लगा परन्तु बात करने पर उतना नही। उन्होने साफ कह दिया कि उन्होंने बहुत कुछ देख और कर लिया है और अधिक झझट मे फँसना नही चाहती। उनके एक-दो दिन बाद दुर्गा भाभी से मुलाकात हुई। भाभी ने उससे कुछ नरम उत्तर दिया, "आप लोग कर रहे है तो बहुत अच्छा है। कुछ होता देखूँगी तो मैं भी साथ हो जाऊँगी।" इसका कारण मुझे उस समय यही जान पडा कि मेरे सबध मे उन्हे जाने क्या-क्या बातें सुनने को मिली होगी। वे अधिकतर सुखदेवराज के ही सम्पर्क मे ही रही थी।

गुप्त और रहस्य की अवस्था मे रहने वाला के बारे मे रहस्यमय बातें बन ही जाती हैं। गैरजिम्मेदार लोगो का तो कहना ही क्या। उस समय तक समाचार पत्रों मे भी दो बार यशपाल की गिरफ्तारी के समाचार पढ चुका था। यह भी सुना कि कुछ हमारे मेहरबानो ने सहृदय लोगो से यह कह कर कि यशपाल और प्रकाशवती बडे सकट की

अवस्था में है, प्रकाशवती को एक बच्चा हो गया है, रातें पेडों के नीचे काटनी पडती हैं आदि, काफी रुपया हमारी सहायता करने के नाम पर ले लिया था। यह धन कभी हम लोगो तक नही पहुँचा। दूसरी ओर यह भी सुना कि यशपाल शराब की बोतलें पी जाता है। दल के नाम पर हजारों रुपया लेकर उडा रहा है।

शराब के अपवाद के किस्से का आधार यह था कि उन दिनों दिल्ली में पचकुइयाँ सडक पर अपने पुराने साथी आनन्दस्वामी जी (फिरोजपुर और लाहौर मे साथी कृष्णा दास भल्ला) से भेट हो गयी थी। आनन्दस्वामी वैद्यक सीख कर कुछ आयुर्वेदीय विशेष औषधियाँ बनाने लगे थे। मिलने पर उन्होने मेरे गिरे हुए स्वास्थ्य के लिए बहुत चिंता प्रकट की। उन्होंने कुछ पुडियाँ और चार बोतलें एक प्रकार के वसती से रंग के अर्क की दे दी। इन बोतलों में आमाशय और यकृत की सहायता के लिये शायद कुमार्यासव था। यही बोतलें शराब समझ ली गयी। सफाई देने की जरूरत तो नही परन्तु १९४१ (सेवाग्राम में गाँधी जी से भेट के दिन) तक मेरे मन में शराब के प्रति एक भयंकर विरक्ति थी। बियर की भी एक बूँद तक मैं अपने लिये अक्षम्य समझता था। उस दिन सध्या नागपुर में ही समझा था कि वह कठमुल्लापन भी एक प्रकार का अन्धविश्वास है पर अफवाहो का क्या किया जा सकता था। कपडे तो लागा ने ऐसे ही बनवा दिये थे जिनसे समृद्धि या फिजूलखर्ची का आभास हो सकता था।

कृष्णशकर और राजेन्द्रसिंह ने सूचना दी—कानपुर के लोग भी चाहते हैं कि एक बार फिर सगठन सम्बन्धी बातें तय कर ली जाये और फिर संयुक्त रूप से और उचित ढग से काम हो। मिलने के लिये लोगों ने गढमुक्तेश्वर तीर्थ और समय गंगा-स्नान का मेला निश्चित किया। वही मेले में विचार के लिये मिलना तय हुआ। जनवरी के आरम्भ की कडी सर्दी थी। मैं और प्रकाशवती दोनों इस बैठक में गये थे। बैठक में इतने अधिक लागों को देख कर कुछ विस्मय हुआ था। इससे पूर्व ऐसी बैठकों में प्रतिनिधि रूप में सात-आठ से अधिक आदमी नहीं होते थे। सुरेन्द्र पाडे, साथी माँ आदि भी आये थे। पजाब से पाडे की बहिन सुशीला और कुछ लोग, जिन्हें मैं जानता नहीं था, आये थे। मेरे मन मे आशंका उठी कि पाडे दल-बल लेकर आया है कि बहुमत से अपनी बात मना सके। मन में खामखाह क्रोध भर आया कि मुझे यहाँ बुला कर बेवकूफ बनाना चाहते हैं।

पाडे ने लम्बे वक्तव्य में परिस्थिति स्पष्ट करना आरम्भ किया। सैद्धान्तिक मतभेद मुझे पाडे से कुछ नहीं था। परन्तु मुझे यह स्वीकार नहीं था कि पाडे सिद्धान्तों और संगठन का काम सम्भाले कर केवल खतरे का सामना करने की जिम्मेदारी मुझ पर डाल दे। पाडे ने सैद्धान्तिक और सशस्त्र दोनों ही तरह के कामों की आवश्यकता स्वीकार कर साफ-साफ कह दिया कि सशस्त्र काम के लिये वह स्वयं को अयोग्य

से हस्ताक्षर करते थे। आजाद के शहीद हो जाने की बात सभी को मालूम थी और जगह-जगह मुखबिरों के बयानों से यह भी मालूम हो चुका था कि हि०स०प्र०स० के कमांडर-इन-चीफ चन्द्रशेखर आजाद थे। इस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति काल्पनिक न जान पड़े इसलिये मैंने इस घोषणा पर अपने असली नाम से हस्ताक्षर किये। समाचार पत्रों से यह सभी को मालूम हो चुका था कि फरार यशपाल एक वास्तविक व्यक्ति है, कल्पित व्यक्ति नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि इसमें मेरा अहंकार और प्रसिद्धि प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा छिपी थी लेकिन इस कार्य में अँग्रेजी सरकार के क्रोध को निमंत्रण भी कम नहीं था। इससे पहले हम अपने घोषणा पत्र केवल अँग्रेजी में प्रकाशित करते थे। इस बार मैंने इसे मुख्य रूप से हिन्दी और उर्दू में छपाये जाने का आग्रह किया।

मैंने सोचा कि अब काम करना है तो देश के एक कोने, देहरादून में रहने से नहीं हो सकता। उस समय देहरादून आज की तरह भीड़ और कोलाहल से भरा बड़ा नगर नहीं एक शांत उपवन-सा था। देहरादून प्राय वय प्राप्त, काम-काज से छुट्टी पाये हुए लोगों की जगह थी जहाँ कल्पना और कला की साधना सुविधा से की जा सकती थी। देहरादून छोड़कर दिल्ली में रहने का निश्चय किया। जनवरी में प्रकाशवती और मैं दोनों ही दिल्ली आ गये। दिल्ली में अभी कोई जगह नहीं ली थी। हम सूरी परिवार के मकान में ही टिके हुये थे। इलाहाबाद से लौट कर जगह ठीक करने का विचार था।

जनवरी २२ सुबह की गाड़ी से इलाहाबाद जाना था। उस रात सूरी परिवार के मकान में बैठक की तरह उपयोग होने वाले बड़े कमरे के फर्श पर ही बिस्तर लगा कर सो गया था। सुबह जल्दी उठा तो समीप ही भगत जी (श्रीकृष्ण सूरी के पिता) कम्बल ओढ़े बैठे थे। उन्हें दमे का कष्ट था। नींद कम आती थी। मैं उनसे बात करने लगा, "भगत जी, रात बहुत विचित्र स्वप्न देखा है।" भगत जी को रात देखा स्वप्न सुनाया, "मैं गिरफ्तार हो गया हूँ। मुझे फाँसी पर लटकाया जा रहा है।" उस समय तक फाँसी लगाने की व्यवस्था देखने का अवसर न हुआ था। उसके विषय में सुना ही था। स्वप्न में दिखाई दिया था कि चारों ओर हथियारबन्द पुलिस खड़ी है। दो खड़ी शहतीरों के ऊपर रखी एक शहतीर से लटकी खूब सफेद सूत की रस्सी का फंदा मेरे गले में डाल दिया है। मुझसे अँग्रेजी में पूछा गया—तुम्हें कुछ कहना है? मैंने उत्तर दिया—मुझे कुछ नहीं कहना। इसके बाद मेरे पाँवों के नीचे के तख्ते को कई बार खींचा गया पर वह हटा नहीं और मेरी आँख खुल गयी।

भगत जी ने स्वप्न सुन कर इसका अर्थ बताया कि कोई आपत्ति मुझ पर आने वाली थी लेकिन टल गयी है। आपत्ति आने की आशंका तो बनी ही रहती थी और

लोगों से सुन-सुन कर यह भी विश्वास था कि या तो गिरफ्तार होते समय लड़ते हुये मारा जाऊँगा वर्ना फाँसी तो मुझे हो ही जायगी। आज़ाद की तरह अपनी आखिरी गोली स्वयं सिर में मार लेने का विचार मुझे कभी नहीं आया। शायद उतना साहस न था।

इलाहाबाद गाड़ी रात नौ-साढ़े नौ पहुँचती थी। कृष्णशंकर श्रीवास्तव ने इलाहाबाद में अपने मिलने का पता हिवेट रोड, कृष्णा होटल के ऊपर आयरिश महिला सावित्री देवी का मकान बताया था। मेरा इरादा था कि अपनी पुरानी परिचित जगहों में ही कहीं ठहर जाऊँगा। कृष्णशंकर से सुबह मिल लूँगा परन्तु वह स्टेशन पर ही लेने आ पहुँचा था। मुझे यह आदर कुछ अधिक ही जान पड़ा। वह लेने आया था तो उसी के साथ जाना पड़ा। उसने मुझे आयरिश महिला के ही मकान पर पहुँचा दिया। यह स्थिति मुझे उसी समय खटकी। खटकी इसलिये कि देशी पोशाक और देशी बस्ती में रहने वाली यूरोपियन महिला की ओर सभी का ध्यान जाना स्वाभाविक था। मेरे वहाँ जाने से मेरी ओर भी ध्यान आकर्षित होता। मैं ऐसी स्थिति से सदा बचने की कोशिश करता था। सावित्री जी ने इतनी आत्मीयता से आतिथ्य किया कि मैं कुछ कह ही नहीं सकता था।

मैं सो जाने की तैयारी करने लगा। अपना गरम कोट सिरहाने के ऊपर खूँटी पर टाँग दिया था। आज़ाद का मुझे विशेष रूप से दिया आठ गोली का बड़ा पिस्तौल और फालतू मैगज़ीन इसी कोट की जेब में थे। सोते समय मैं अपना पिस्तौल और मैगज़ीन तकिये के नीचे रख लेता था।

रात बिस्तर में सोते समय अपना पिस्तौल तकिये के नीचे रख लेना मेरी आदत बन गयी थी। पिस्तौल तकिये के नीचे मौजूद होने की चेतना नींद में भी बनी रहती थी। इसके परिणाम स्वरूप एक बार विकट घटना होते-होते रह गयी थी। कह चुका हूँ, उस साल बरसात में हम लोग देहरादून के खुडबड़े मुहल्ले में थे। एक रात बरामदे में सो रहे थे। मेरी चारपाई से प्राय पाँच-छ फुट परे भूरी की बड़ी बहिन अपने कुछ मास के बच्चे के साथ सो रही थीं। बीच में स्टूल पर हरीकेन लालटेन जल रही थी। नींद में खटमल काट जाने से बच्चा रो पड़ा। माँ ने उठ कर बिस्तरे से खटमल बीनने शुरू किये। उनकी नज़र मेरे तकिये की ओर गयी तो उन्हें वहाँ भी एक मोटा खटमल चलता दिखाई दिया। खटमल काटने से मैं भी परेशान होऊँगा, इस विचार से वह मेरे तकिये से खटमल उठाने लगीं। खटमल तकिये के नीचे घुस गया। खटमल को पकड़ने के लिये उन्होंने तकिये का सिरा उठाया हो या कि मैंने नींद की अर्द्ध-चेतना में अपना हाथ मार कर उनका हाथ परे हटा दिया दूसरे हाथ में पिस्तौल लेकर

उनकी ओर लक्ष्य किया ही था कि वे पुकार उठी, "भैया !" तब तक मैं सुध मे आ गया।

कृष्णशकर श्रीवास्तव ने कहा, "मैं मिलने वालो से सुबह का समय और स्थान निश्चय करने जा रहा हूँ। अब सुबह ही पाँच-साढे पाँच लौटूँगा।" वह जाने के लिये उठा तो उसने अपना अलवान (सस्ता साल) एक ओर डाल दिया और कहा, "भैया बडा जाडा है। तुम्हारा कोट पहन जाऊँ ?"

मैंने उसे पिस्तौल निकाल कर मुझे दे देने और कोट ले जाने के लिये कह दिया। श्रीवास्तव न दीवार के समीप पडे रिवाल्वर की ओर सकेत कर कहा, "यह है रिवाल्वर। मदर के पास और भी है।" श्रीवास्तव सावित्री जी को 'मदर' या 'माँ' कह कर सम्बोधन करता था। वे भी उसे पुत्र ही मानती थी। वह सुबह तडके जल्दी लौटने के लिये कह कर चला गया।

उसके जाते ही समीप पडे रिवाल्वर को तकिये के नीचे रखने से पहले मैंने गोलियाँ निकाल कर खाली चला कर देखा तो पाया कि उसकी चर्खी अटकती थी पर दूसरे हाथ से घुमा देने से चल पडती थी। दो-तीन बार रवाँ करके देखा और रिवाल्वर तकिये के नीचे रख कर सो गया। दूसरे रिवाल्वर के विषय मे मैंने कुछ न पूछा।

सुबह जल्दी नीद खुल जाने की मेरी आदत बचपन से चली आ रही है। नीद खुलने पर घडी देखी, सवा पाँच बजे थे। देखा कि सावित्री जी भी उठ बैठी थी। उन्होने पूछा, "चाय बनाऊँ ?" उठते ही बिस्तरे मे एक प्याला चाय मिल जाना भी अच्छा लगता है। वे स्पिरिट-स्टोव जलाकर चाय बनाने लगी। ख्याल आया, श्रीवास्तव आता ही होगा।

सावित्री जी की जगह दूसरी मजिल पर थी। जीने पर आहट मालूम हुई। अनुमान किया, श्रीवास्तव होगा पर आहट कुछ अधिक कदमो की जान पडी।

"कोई आ रहा है।" सावित्री जी ने कहा।

"यह तो कई लोगो के आने की आहट है ?" मैंने उत्तर दिया।

तुरत दरवाजा खटका और खटकाने के ढग मे धमकी जान पडी।

"कौन है ?" सावित्री जी ने अँग्रेजी मे पूछा।

"दरवाजा खोलो !" दूसरी ओर से अँग्रेजी मे हुक्म आया।

"मैं पूछती हूँ, कौन है ?"

"पुलिस ! जल्दी दरवाजा खोलो !"

रोयें खडे हो गये। मेरे मस्तिष्क म बिजली दौड गयी—अतिम समय आ गया !

सावित्री जी ने मेरी ओर शका से देख, कर दरवाजे की ओर उत्तर दिया,

पुलिस को यहाँ क्या काम है ?"

"हम मकान की तलाशी लेना चाहते हैं। जल्दी खोलो नही तो दरवाजा तोड दिया जायगा।" बातचीत अंग्रेजी मे हुई।

सावित्री जी ने मेरी ओर देखा।

"आप दरवाजा खोल दीजिये और एक तरफ हट जाइये। मैं लडूँगा। आप बीच मे न आइयेगा। आप दरवाजा खोलिये।" मैंने तकिये के नीचे से रिवाल्वर लेते हुये कहा।

सावित्री जी दरवाजे की ओर गयी। मैंने रिवाल्वर दरवाजे की ओर साधा। मतलब था, दरवाजा खुलते ही भीतर आने पर गोली चला सकूँ। तुरन्त ख्याल आया, पहिले गोली सावित्री जी को ही लगेगी। दूसरी जगह देखूँ। मैं भीतर के कमरे की ओर गया। ऐसे समय तर्क के लिये अवसर नही रहता। पहले से बने विचार ही काम करते हैं। मन मे दोनो ही बातें थी, भाग जाने की कोई राह मिले तो भाग जाऊँ, नही तो आड लेकर अच्छी तरह लडूँ।

मकान से अपरिचित था। पिछले कमरे के साथ बगल मे छोटा आँगन था। आँगन मे पहली बार इसी समय गया था। सामने अपने सिर से ऊँची नालीदार टीन की दीवार थी। दीवार पर हाथो का जोर देकर दूसरी ओर कूद रहा था। पीठ पीछे से गोली चलने की आवाज आयी और मेरे सिर के ऊपर से सनसनाती हुई एक गोली निकल गयी। दूसरी ओर चकले पत्थर के फर्श पर पाँव लगते ही समीप फर्श पर एक गोली आकर लगी।

मैंने मुडकर उकडूँ बैठ कर देखा कि एक यूरोपियन टीन की दीवार के कोने से मुझ पर पिस्तौल से गोली चला रहा है। मैंने उसकी ओर गोली चलायी। यूरोपियन का सिर नीचे छिप गया। नीचे गली से धडाधड कई राईफलें चलने की आवाजें आने लगी।

ज्यों ही यूरोपियन दीवार के ऊपर सिर निकाल कर मुझ पर गोली चलाता मैं भी उस पर गोली चला देता। मेरे हाथ का रिवाल्वर अड रहा था। उसे हर बार दूसरे हाथ से चालू करना पडता था। मेरा प्रतिद्वन्द्वी दो गोलियाँ मार लेता, इतने मे मैं एक ही चला पाता। इस रिवाल्वर मे छ ही गोलियाँ थी। जल्दी मे और गोलियाँ नही ले सका था। गोलियाँ समाप्त हो गयी। मुझ पर चलायी गयी कोई भी गोली मुझे नही लगी। कुछ तो यूरोपियन को अपने बचाव की घबराहट थी, कुछ अँधेरे के

उनकी ओर लक्ष्य किया ही था कि वे पुकार उठीं, "भैया !" तब तक मैं सुध में आ गया।

कृष्णशंकर श्रीवास्तव ने कहा, "मैं मिलने वालो से सुबह का समय और स्थान निश्चय करने जा रहा हूँ। अब सुबह ही पाँच-साढ़े पाँच लौटूँगा।" वह जाने के लिये उठा तो उसने अपना अलवान (सस्ता शाल) एक ओर डाल दिया और कहा, "भैया बड़ा जाड़ा है। तुम्हारा कोट पहन जाऊँ ?"

मैंने उसे पिस्तौल निकाल कर मुझे दे देने और कोट ले जाने के लिये कह दिया। श्रीवास्तव ने दीवार के समीप पड़े रिवाल्वर की ओर संकेत कर कहा, "यह है रिवाल्वर। मदर के पास और भी है।" श्रीवास्तव सावित्री जी को 'मदर' या 'माँ' कह कर सम्बोधन करता था। वे भी उसे पुत्र ही मानती थीं। वह सुबह तड़के जल्दी लौटने के लिये कह कर चला गया।

उसके जाते ही समीप पड़े रिवाल्वर को तकिये के नीचे रखने से पहले मैंने गोलियाँ निकाल कर खाली चला कर देखा तो पाया कि उसकी चर्खी अटकती थी पर दूसरे हाथ से घुमा देने से चल पड़ती थी। दो-तीन बार ऐसा करके देखा और रिवाल्वर तकिये के नीचे रख कर सो गया। दूसरे रिवाल्वर के विषय में मैंने कुछ न पूछा।

सुबह जल्दी नींद खुल जाने की मेरी आदत बचपन से चली आ रही है। नींद खुलने पर घड़ी देखी, सवा पाँच बजे थे। देखा कि सावित्री जी भी उठ बैठी थीं। उन्होंने पूछा, "चाय बनाऊँ ?" उठते ही बिस्तरे में एक प्याला चाय मिल जाना भी अच्छा लगता है। वे स्पिरिट-स्टोव जलाकर चाय बनाने लगीं। खयाल आया श्रीवास्तव आता ही होगा।

सावित्री जी की जगह दूसरी मंजिल पर थी। जीने पर आहट मालूम हुई। अनुमान किया, श्रीवास्तव होगा पर आहट कुछ अधिक कदमों की जान पड़ी।

"कोई आ रहा है।" सावित्री जी ने कहा।

"यह तो कई लोगों के आने की आहट है ?" मैंने उत्तर दिया।

तुरत दरवाजा खटका और खटकाने के ढंग में धमकी जान पड़ी।

"कौन है ?" सावित्री जी ने अँग्रेजी में पूछा।

"दरवाजा खोलो !" दूसरी ओर से अँग्रेजी में हुक्म आया।

"मैं पूछती हूँ, कौन है ?"

"पुलिस ! जल्दी दरवाजा खोलो !"

रोयें खड़े हो गये। मेरे मस्तिष्क में बिजली दौड़ गयी—अंतिम समय आ गया !

सावित्री जी ने मेरी ओर शंका से देख कर दरवाजे की ओर उत्तर दिया,

पुलिस को यहाँ क्या काम है ?"

'हम मकान की तलाशी लेना चाहते हैं। जल्दी खोलो नही तो दरवाजा तोड दिया जायगा।" बातचीत अंग्रेजी मे हुई।

सावित्री जी ने मेरी ओर देखा।

"आप दरवाजा खोल दीजिये और एक तरफ हट जाइये। मैं लड़ूँगा। आप बीच में न आइयेगा। आप दरवाजा खोलिये।" मैंने तकिये के नीचे से रिवाल्वर लेते हुये कहा।

सावित्री जी दरवाजे की ओर गयीं। मैंने रिवाल्वर दरवाजे की ओर साधा। मतलब था, दरवाजा खुलते ही भीतर आने पर गोली चला सकूँ। तुरन्त ख्याल आया, पहिले गोली सावित्री जी को ही लगेगी। दूसरी जगह देखूँ। मैं भीतर के कमरे की ओर गया। ऐसे समय तर्क के लिये अवसर नही रहता। पहले मे बने विचार ही काम करते हैं। मन मे दोनों ही बातें थी, भाग जाने की कोई राह मिले तो भाग जाऊँ, नही तो आड लेकर अच्छी तरह लड़ूँ।

मकान से अपरिचित था। पिछले कमरे के साथ बगल मे छोटा आँगन था। आँगन मे पहली बार इसी समय गया था। सामने अपने सिर से ऊँची नालीदार टीन की दीवार थी। दीवार पर हाथों का जोर देकर दूसरी ओर कूद रहा था। पीठ पीछे से गोली चलने की आवाज आयी और मेरे सिर के ऊपर से सनसनाती हुई एक गोली निकल गयी। दूसरी ओर चकले पत्थर के फर्श पर पाँव लगते ही समीप फर्श पर एक गोली आकर लगी।

मैंने मुड़कर उकड़ूँ बैठ कर देखा कि एक यूरोपियन टीन की दीवार के कोने से मुझ पर पिस्तौल से गोली चला रहा है। मैंने उसकी ओर गोली चलायी। यूरोपियन का सिर नीचे छिप गया। नीचे गली से धड़ाधड़ कई राईफलें चलने की आवाजें आने लगी।

ज्यों ही यूरोपियन दीवार के ऊपर सिर निकाल कर मुझ पर गोली चलाता मैं भी उस पर गोली चला देता। मेरे हाथ का रिवाल्वर अड़ रहा था। उसे हर बार दूसरे हाथ से चालू करना पडता था। मेरा प्रतिद्वन्दी दो गोलियाँ मार लेता, इतने मे मैं एक ही चला पाता। इस रिवाल्वर मे छ ही गोलियाँ थी। जल्दी मे और गोलियाँ नही ले सका था। गोलियाँ समाप्त हो गयी। मुझ पर चलायी गयी कोई भी गोली मुझे नही लगी। कुछ तो यूरोपियन को अपने बचाव की घबराहट थी, कुछ अँधेरे के

कारण। यह स्थिति मेरी भी थी।* मेरी गोलियाँ समाप्त हो जाने पर जब यूरोपियन ने सिर निकाल कर मुझ पर गोली चलायी तो मैंने खाली रिवाल्वर उस पर दे मारा।

इस बार यूरोपियन से सिर उठाय, तो पिस्तौल मेरी ओर साध कर भी उसने गोली नहीं चलायी और बोला, "Now you are unarmed" (अब तुम्हारे पास हथियार नहीं है।)

वह एक क्षण के लिये ठिठका। उसका स्वर बदल गया, "अच्छा इस ओर आ जाइये। मैं मदद करूँ?" यूरोपियन अफसर ने किसी ऊँची चीज पर पाँव रख कर अपना हाथ सहायता के लिये टीन की दीवार के इस ओर लटका दिया।

'धन्यवाद!"

मैं सहायता के बिना ही उस ओर आने के लिये दीवार पर उचका और उस ओर कूद गया। अब देखा कि टीन की दीवार को थामने के लिये दीवार के साथ डेढ़-दो फुट ऊँची थूनी बनी हुई थी। यूरोपियन इसी थूनी पर पाँव रख कर टीन की दीवार के ऊपर से गोली चला रहा था और मुझे सहायता देने के लिये भी उसने उस थूनी पर पाँव रख कर मेरी ओर हाथ लटकाया था।

"कोई चोट तो नहीं लगी?" यूरोपियन ने मुझसे पूछा।

"नहीं, धन्यवाद। आशा है, आपको भी चोट नहीं लगी होगी।" मैंने कहा।

यूरोपियन ने घुटने के पास मेरे पायजामे पर बने खून के धब्बे की ओर संकेत किया, 'यह दाग कैसा है?"

मैंने टटोल कर देखा और उत्तर दिया, "कुछ नहीं, टीन से खोंच लग गयी है।"

यूरोपियन ने अपना परिचय दिया, "मेरा नाम डी० पिल्डिच है। मैं स्पेशल पुलिस का सुपरिन्टेन्डेन्ट हूँ। मैं जानता हूँ, आप मिस्टर यशपाल हैं।"

"धन्यवाद।"

इसी समय एक थानेदार या हैड कांस्टेबल एक अँगोछा बँटते हुए मेरे हाथ बाँध देने के लिये आगे बढ़ा। पिल्डिच ने उसे पीछे हटने के लिये कह कर मुझे सम्बोधन किया, "मैं समझता हूँ, इसकी कोई जरूरत नहीं। क्या खयाल है?"

"जैसा आप उचित समझें। मेरे खयाल में तो नहीं है।"

पिल्डिच ने कहा आप बिस्तर से ही उठे हैं। कपड़े पहन लीजिये। हम प्रतीक्षा करेंगे।"

*सन् १९७१ अवकाश प्राप्त इन्सपेक्टर जनरल, पुलिस नरेश चन्द्र मिश्र ने याद दिलाया, मेरी गिरफ्तारी के समय वे स्पेशल सुपरिन्टेंडेंट पिल्डिच के साथ थे। एक कोने से पिल्डिच मुझ पर गोली चला रहा था, दूसरे कोने से मिश्र जी। मिश्र जी १९३२ में इलाहाबाद में स्पेशल डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस थे।

मैं सोते समय केवल कमीज-पाजामा पहने था। "जरूरत नहीं, ऐसे ही ठीक है", मैंने उत्तर दिया, "ऐसे ही रहता हूँ।"

"नहीं नहीं, हम जानते हैं आप ढग से कपडे पहनते हैं। कोई जल्दी नही है। कपडे पहन लीजिये। बहुत सर्दी भी है।"

'मैं एक कम्बल ले लूँगा, बस ?"

'जैसी आप की इच्छा।"

चलते समय मैंने सावित्री जी को नमस्कार कर क्षमा माँगी, "खेद है मेरी वजह से आपको भी कष्ट हुआ।"

सावित्री जी ने सिर ऊँचा कर उत्तर दिया, "खेद नहीं, इस बात के लिये मुझे गर्व है।" और पिल्डिच की ओर सकेत कर कहती गयी, "मैं इन अग्रेज अत्याचारियो से बहुत घृणा करती हूँ।"

स्पष्ट ही था कि सावित्री जी को मुकदमे मे अज्ञान की आड लेकर सजा से बच जाने की चिन्ता नही थी।

पिल्डिच ने थानेदार को हुक्म दिया, "इस घर की तलाशी लेकर मुनासिब कार्रवाई की जाय।" और मुझे लेकर एक दूसरे अफसर और तीन-चार कास्टेबलो के साथ मकान के जीने से नीचे उतर गया। नीचे सड़क पर एक कार और दो-तीन पुलिस लारियाँ खडी हुई थी। कांग्रेस का झण्डा लिये कुछ लोग विस्मय मे एक ओर खडे थे। यह राष्ट्रीय सप्ताह (२६ जनवरी) की प्रभातफेरी करने वाला दल था। वे लोग देश की स्वतन्त्रता की पुकार कर रहे थे। अपने ढग मे मैं भी यही कर रहा था परन्तु हम एक दूसरे के लिये बेगाने थे। गोलियो की आहट से कुछ और लोग इकट्ठे हो गये थे।

एक कार मे पहले पिल्डिच बैठा। बीच मे मुझे बैठाया गया। मेरी दूसरी ओर एक और अफसर बैठा। ड्राइवर के साथ सशस्त्र सिपाही था। गाडी चल पडी। आगे और पीछे एक-एक पुलिस लॉरी चल रही थी। कुछ ही दूर जाकर पिल्डिच ने मेरे दूसरी ओर बैठे अफसर का परिचय कराया। यह एक डिप्टी सुपरिन्टेंडेन्ट मि० मिश्र थे।

मिश्र जी बात करने लगे, "आप पजाबी हैं न ? मैं पजाब मे बहुत दिन रहा हूँ। पजाबी स्वभाव से बहादुर होते हैं।" वे पजाबी मे बोलने लगे, "बहुत सर्दी है। चल कर चाय पियेंगे या लस्सी ? पजाबियो को सर्दी मे भी लस्सी ही भाती है।"

मैंने जरा सख्ती से मिश्र जी की ओर देखकर अग्रेजी मे उत्तर दिया, "मुझे इस तरह के मजाक पसन्द नही हैं।"

मिश्र जी चुप हो गये और एक क्षण बाद उन्होने उत्तर दिया, "I am sorry (मुझे खेद है।)"

मिश्र जी की बात से चिढ जाने मे कोई तुक नही थी। उन्होंने मज़ाक भी नही किया था। मेरा यह व्यवहार हार कर या मार खाकर भी सम्मान बनाये रखने का ही व्यर्थ प्रयत्न था।

गाडी कैनिंग रोड पुलिस स्टेशन के भीतर पहुँच गयी। ड्यूटी के लोग दौड आये। पिल्डिच ने हवालात की एक कोठरी मे एक कुर्सी और छोटी मेज रख दी जाने का हुक्म दिया। मुझसे पूछा, "चाय लाने के लिये कह दूं?"

"जी हाँ, धन्यवाद।"

"कोई जरूरत हो तो आप मुझे सन्देश भेज सकते हैं। शायद मैं स्वय मिलूं।" पिल्डिच ने कहा।

पिल्डिच और मिश्र जी चले गये। हवालात की कोठरी का लोहे की छडों का दरवाजा बन्द हो गया। दरवाजे पर बडा ताला। एक सिपाही सगीन चढी रायफल लेकर सामने पहरे पर खडा हो गया।

हमारे साथियों का विश्वास था कि मैं विश्वासघात के कारण पकडा गया हूँ। मेरे जेल मे रहते समय मुकदमे की पैरवी करने वाले वकीलो की मार्फत इस सम्बन्ध मे मुझसे पूछा भी गया। जैसे मैंने घटना का वर्णन किया है, मुझे उस समय कृष्णशकर श्रीवास्तव पर सदेह था—उसका मुझे सावित्री जी के यहाँ ले जा कर टिका देना, मेरा पिस्तौल लेकर चले जाना और सुबह पुलिस का आ पहुँचना, पिल्डिच का स्वय ही कहना कि आप मिस्टर यशपाल है, आदि बातें बहुत स्पष्ट थी। मेरे इलाहाबाद आने की बात केवल कृष्णशकर को ही मालूम थी। किसी अन्य को यह समाचार उसी से मिल सकता था।

सावित्री जी पर तो मैंने स्वप्न मे भी सन्देह नही किया। मेरी गिरफ्तारी के समय उनका व्यवहार बहुत स्पष्ट था। मुझे आश्रय देने के कारण उन्हे चार वर्ष जेल की सजा मिली थी। जेल मे रहते समय मैंने अफवाह सुनी थी कि किसी ने कृष्णशकर पर गोली भी चलाई थी पर सफल न हुआ। बाद मे वह अपनी रक्षा के लिये सत्याग्रह करके जेल चला गया था।

जेल से छूटने पर भी जब लोगो ने यही प्रश्न मुझसे पूछा। मेरा उत्तर था, "अब सब समाप्त हो चुका है। इस झगडे को उठाने की जरूरत नही।" बहुत दिन तक सोचते-सोचते यह भी ख्याल आने लगा था, सम्भव है उस रात कृष्णशकर ने जाकर जिन आदमियो से बात की हो, उनमे से किसी ने पुलिस को खबर पहुँचा दी हो। कृष्णशकर इतना तो समझ ही सकता था कि मेरे सावित्री जी के यहाँ गिरफ्तार होने

पर वे भी जरूर मुसीबत मे फँसेगी। सावित्री जी के लिये कृष्णशकर के मन मे कुछ आदर होना ही चाहिये था। सावित्री जी को उस पर अन्धविश्वास था। उन्होने केवल कृष्णशकर पर कभी सन्देह नही किया बल्कि १६३८ मे मेरी रिहाई के बाद, जब मैं भुवाली मे था, वे कृष्णशकर को लेकर मेरे पास आयी। उन्होने अनुरोध किया कि मैं लिखकर दे दूँ कि मुझे कृष्णशकर श्रीवास्तव पर सन्देह नही है।

मैंने उस समय भी उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। मेरे कारण उन्हे पहुँचे कष्ट के लिये खेद प्रकट किया और कहा, मैं अब यह नही कह सकता कि सोलह आने निश्चय ही कृष्णशकर श्रीवास्तव ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मुझे मालूम नही पुलिस को सूचना किसने दी है। इसलिये मैं यह लिखकर भी नही दे सकता कि कृष्णशकर श्रीवास्तव ने यह काम नही किया।"

सावित्री जी के मकान पर गिरफ्तार होते समय जब मैंने अपने कारण उन्हे होने वाली परेशानी के लिए खेद प्रकट किया था तो उन्होने उत्तर दिया था—कोई खेद नही। मुझे इसके लिये गर्व है। जेल मे रहते समय भी मेरी वकील श्यामकुमारी नेहरू मजाक किया करती थी, 'तुमने बुढिया पर क्या जादू कर दिया। सुना है वह हवालात की कोठरी मे तुम पर कविता लिखा करती है।' लेकिन १६३८ मे कृष्णशकर के पक्ष मे उनका अनुरोध पूरा न कर सकने के बाद मैंने सुना कि अब वे लोगो से कहती थी—यशपाल बडा नीच और कृतघ्न है। अफसोस, मैंने उसके लिये कष्ट सहा। मनुष्य का मन और विचार कब-कैसे बदल जाते है।

भारत म सशस्त्र क्राति के लिये हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना द्वारा किये गये प्रयत्नो स सम्बद्ध मेरे सस्मरण तो मेरी गिरफ्तारी की घटना से ही समाप्त हो जाते हैं परन्तु पाठको की जिज्ञासा के विचार से कुछ और प्रसगो की चर्चा भी सगत हो सकती है। उदाहरणत जेलो म क्रान्तिकारियो के अनुभव और फिर कांग्रेसी शासन म उनकी जेलो से रिहाई की समस्याएँ तथा बदली हुई परिस्थितियो मे हमारे साथियो के विचार व्यवहार।

जेल में

हवालात और पुलिस

इलाहाबाद में ह्विट रोड पर सावित्री जी के मकान मे गिरफ्तार करके मुझे कैनिंग रोड पर पुलिस थाने में पहुँचा कर हवालात मे बन्द कर दिया गया। भय और उत्तेजना की परिस्थितियो का प्रभाव निश्चय ही मेरे व्यवहार पर पड़ा। परिस्थितियो का मतलब उस समय मेरे चारो ओर की स्थिति से है, साथ ही मेरे मन में बैठी धारणाओ और आशंकाओ से भी है। मुख्य धारणा या आशका थी यदि लाहौर षड्यन्त्र के मामले मे यदि सुखदेव को फाँसी की सजा दी गयी है तो लाहौर, दिल्ली, कानपुर के मुकदमो को मिलाकर मुझे वह सजा न दी जाने का कोई कारण नही। इस धारणा मे दूसरे लोगो का विश्वास भी सार्थक था। मुझे जानने वाले प्रायः सभी लोगो को ऐसा ही अनुमान या चिंता थी। यह भी आशका थी कि पुलिस मुझे अधिक से अधिक कष्ट देकर मुझसे अनेक घटनाओ और दूसरे लोगो की बाबत जानना चाहेगी। इन आशकाओ के परिणामस्वरूप धारणा थी—मुझे मृत्यु के लिये और सभी सम्भव यातनाएँ सहने के लिए तैयार रहना चाहिये। मैंने अपना बस चलते कोई कसर नही छोड़ी है। अपने शत्रु से भी मुझे ऐसे ही व्यवहार की आशा करनी चाहिये। अपने वैयक्तिक सम्मान और अपने दल के सम्मान के प्रति मेरा कर्त्तव्य है कि मैं कष्ट को दृढ़ता और साहस से सह करआत्मसम्मान को सुरक्षित रखूं। यदि मैं तिल भर भी दबा तो फिर सँभलने का अवसर न रहेगा। अपने कर्तव्य और सम्मान की अति सतर्कता की चिंता से मेरे व्यवहार मे अनावश्यक उग्रता आ जाना भी विस्मय की बात न थी। इसी मानसिक स्थिति के कारण श्री मिश्र के सौजन्य का उत्तर रुखाई से दिया था। जेल से मुक्ति के बहुत बरस बाद लखनऊ मे, भेंट मे उन्होने मुझसे पहचान कर, मुस्कराकर कहा था, अब हम भिन्न स्थितियो मे मिल रहे हैं। अपनी उस समय की अभद्रता याद आ गयी थी। और उस पुरानी अभद्रता के लिये खेद प्रकट करके सन्तोष पाया था।

हवालात का दरवाजा बन्द होने के प्रायः दस मिनट बाद एक सिपाही ने आकर पुकारा—"यह चाय ले लो।"

मैं दरवाजे की ओर पीठ किये बैठा था। पलट कर देखा, अलुमीनियम का मैला गिलास दरवाजे के सीखचो से भीतर रख दिया गया था। इस प्रकार चाय दिया जाना तिरस्कार लगा। सिपाही दो-चार कदम ही लौटा होगा। मैंने वह गिलास उठा कर आँगने मे बाहर फेंक दिया।

पाँचेक मिनट बाद दारोगा साहब आये। वे सहानुभूति से बोले—"चाय आप ने फेंक दी ?"

'मैं ऐसी चाय नहीं पीता हूँ।" उत्तर दिया।

"अच्छा, ट्रे मे भिजवा दी जाय ?"

"जी हाँ!"

कुछ देर बाद, शायद नजदीक के किसी होटल से, ट्रे मे चाय की केतली, दूध और शक्कर अलग-अलग और प्याली वगैरा आ गये। दरोगा साहब ने मुआफी भी माँग ली—"यह लोग जगली जानवर है, चाय पीना क्या जानें!" दारोगा जी के इस सौजन्य का कारण मेरे सक्ट झेलने के उद्देश्य से सहानुभूति थी या मुझे सुसस्कृत समझना था! खैर, मैं जगली जानवर की तरह सीखचो मे बन्द हो ही चुका था।

आधे-पौने घटे के करीब और गुजरा होगा। कोठरी के बाहर बहुत दौड-धूप और मुस्तैदी जान पडी। दो सिपाही राइफलो पर सगीनें चढाकर दरवाजे के जगले के साथ खडे हो गये। हवालात का दरवाजा खुला। दो अँग्रेजो ने कोठरी मे प्रवेश किया। एक जरा भारी मे क्द का नाटा-सा और दूसरा अच्छा कद्दावर था। दोनो ही प्रौढ थे।

"गुड मार्निंग, At last we have got you (आखिर तुम पकडे ही गये)!" इन मे से एक ने भीतर आते हुये ताना कस दिया।

'गुड मार्निंग।" उत्तर देकर कुर्सी से उठकर मैंने कहा, "कुर्सी कोठरी मे एक ही है। आप लोगों को कहाँ बैठने के लिये कहूँ? मैं यह भी नही जानता कि किन सज्जनो से बात करने का सौभाग्य मुझे मिला है।"

उनमें नाटे कद का व्यक्ति ही बात कर रहा था—"आप मिस्टर यशपाल हैं। आप हम नही पहचानते ?" उस ने विस्मय प्रकट किया, "हमारी खोपडी उडा देने के लिये पिस्तौल लिये आपने बीसियो चक्कर हमारे बँगलो के लगाये होंगे।"

साहब की इस अहम्मन्यता पर उस समय भी मुस्कराहट आ गयी। उसे सान्त्वना दी—"हो सकता है ऐसी आशका के कारण आप लोगो को कई रातें नीद न आ सकी हों या इस विचार से आपने गर्व भी अनुभव किया हो पर मेरा यह दुर्भाग्य है कि मैं आप लोगों को पहचानता भी नहीं।"

साहब का मिजाज जमीन पर आया, बोले—"मेरा नाम हॉलिन्स है। मैं यू० पी०

पुलिस का इंसपेक्टर जनरल हूँ। ये मिस्टर शॉ हैं, यू० पी० की खुफिया पुलिस के डिप्टी इंसपेक्टर जनरल।" साहब ने अपने साथी की ओर संकेत किया।

हॉलिन्स से मुलाकात का जिक्र मैंने 'सिंहावलोकन' के पहले भाग में भी किया है। उस समय मैंने उस का नाम हालैन्ड्स लिखा था। अभी अक्टूबर १९५४ में इंगलैंड से प्रकाशित पत्रिका 'मैन ओनली' में S T Hollins, C I E. के संस्मरण भारत में फैली अराजकता और अपराधों के विषय में पढ़े हैं। अपनी गिरफ्तारी के दिन उस के उच्चारण से मैंने हालैंड्स समझा था। हॉलिन्स के इन संस्मरणों में आजाद की शहादत और मेरी गिरफ्तारी का भी वर्णन है। बाइस वर्ष में हॉलिन्स मेरा नाम भूल गया है। स्मृति विभ्रम से उस ने और भी कुछ अनर्गल बातें लिखी हैं। उदाहरणतः उस ने लिखा है कि वायसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट ३१ दिसम्बर को हुआ था, सावित्री की मृत्यु एक बरस बाद जेल में हो गयी थी। यह बातें गलत हैं। कह ही चुका हूँ कि सावित्री जी मुझ से १९३८ जुलाई में, भुवाली में मिली थी।

हॉलिन्स से मैंने कहा— आप के दर्शनों के लिये आभारी हूँ। आप की क्या सेवा कर सकता हूँ?'

हॉलिन्स ने तुरन्त प्रश्न किया—"आप बहुत सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। आपने यह मार्ग क्यों अपनाया?"

दूसरा तो कोई मार्ग ही नहीं है। किसी दूसरे तरीके से आप सुनते ही नहीं," उत्तर दिया। यह स्पष्ट ही था कि वह हमारे सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्नों की ओर संकेत कर रहा था। अन्य बात हो भी क्या सकती थी?

हॉलिन्स ने आँखें झपका कर पूछा—'क्या मतलब है आप का?"

'मतलब साफ ही है।" मैंने कहा, 'सभी जानते हैं कि इस देश के ९९ प्रतिशत लोग भूखे-नंगे, बिना किसी आशा के पशुओं जैसा जीवन बिता रहे हैं। विदेशी गुलामी ने उन्हें परवश और असहाय बना रखा है। इस विदेशी गुलामी से मुक्ति के लिये यत्न करना हमारे लिये स्वाभाविक है।"

हॉलिन्स ने स्वीकार किया था कि इस देश के सर्वसाधारण की अवस्था शोचनीय थी और हमें स्वाधीनता प्राप्ति के लिये यत्न करने का भी प्राकृतिक अधिकार था परन्तु साथ ही उसने यह सीख भी दी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये गाँधी जी के मार्ग पर चलना ही अधिक उचित था।

हॉलिन्स को तो उस समय यही उत्तर दिया था कि ब्रिटिश सरकार यदि गाँधी जी के मार्ग को उचित और न्यायपूर्ण समझती है तो कांग्रेसी आन्दोलनों पर लाठी चार्ज और गोली की बौछार क्यों की जाती है? कांग्रेस को गैरकानूनी क्यों करार दे दिया

गया है ?* एक अंग्रेज शासक को तो मैं यही उत्तर दे सकता था परन्तु एक क्रान्तिकारी के दृष्टिकोण से, अपने शत्रु द्वारा गाँधीवादी आन्दोलनों को उचित मार्ग बताना उस समय मेरे लिये इस बात का काफी पुष्ट प्रमाण था कि देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये यह सत्याग्रह आन्दोलन व्यर्थ है। हमारे स्वतन्त्रता के आदर्शों और उनकी प्राप्ति के लिये संघर्ष मे गाँधीवादी सिद्धान्त हमारे विरुद्ध और अंग्रेज साम्राज्यशाही के सहायक है। गाँधी जी द्वारा गढ़वाली सिपाहियो के अहिंसात्मक विद्रोह की भी निन्दा मेरे विचार मे अपनी धारणा के लिये प्रबल प्रमाण था।

सस्मरण की घटनाओ के प्रसग मे यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि गाँधी जी को अंग्रेज साम्राज्यशाही का समर्थक कहने से मेरा अभिप्राय क्या है ? डी० जी० तेन्दूलकर ने 'टाइम्स आफ इण्डिया' अक्तूबर १६५४ के प्रथम सप्ताह के अक मे एक पत्र द्वारा इस बात पर बहुत आपत्ति की थी कि सोवियत विश्वकोष मे दिये गये गाँधी जी के परिचय मे उन्हे ब्रिटिश साम्राज्यशाही का सहायक और भारतीय जन-साधारण के स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन का विरोधी कहा गया है। कम से कम हॉलिन्स जैसे जिम्मेवार अफसर, जिनका कर्तव्य भारतीय जनता के स्वतन्त्रता के आन्दोलन को कुचलना था, उस समय गाँधीवादी स्वातन्त्र्य आन्दोलन से लड़ते हुए भी अन्य ब्रिटिश सरकार विरोधी सघर्षों की तुलना मे गाँधी जी और उनके आन्दोलन को अपना सहायक ही समझते थे।

आज भारत के ब्रिटिश शासन से मुक्त हो जाने पर गाँधी जी को अंग्रेज साम्राज्यशाही का सहायक कहने का अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा कायम व्यवस्था और ब्रिटिश के शासन का पृथक्-पृथक् करके देखना होगा। गाँधी जी अंग्रेजों को भारत से चले जाने के लिये कह कर भी उनकी साम्राज्यशाही व्यवस्था, जिसका आधार सामन्तवादी और पूँजीवादी व्यवस्था थी, को आँच नहीं आने देना चाहते थे। उस व्यवस्था को बगावत से नष्ट कर देश के शासन की बागडोर सर्व-साधारण जनता के हाथ चले जाने या समाजवादी भावना से पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा के लिये जहाँ तक आवश्यक था वे अंग्रेजी शासन की सहायता करते रहे। ब्रिटिश शासन समाप्त करने के यत्न मे ब्रिटिश शासन द्वारा रक्षित सामन्तवादी और पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर देने की अपेक्षा वे ब्रिटिश साम्राज्यशाही को ही कायम रखने के लिये तैयार थे। गाँधी जी ने 'हरिजन' अप्रैल १६४१ के अक मे यह बात स्वय

---

*१६३१ मे अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस द्वारा लगानबन्दी आन्दोलन आरम्भ करने पर कांग्रेस को गैरकानूनी सस्था करार दे दिया था।

स्वीकार की थी—"I hope I am not expected knowingly to undertake a fight that must end in anarchy and red ruin." स्पष्ट है, गांधी जी अराजकता और लाल विध्वंस आने देने की अपेक्षा अंग्रेजी शासन को ही कल्याणकारी समझते थे।

गांधी जी किसी भी प्रकार भारत में ब्रिटिश सत्ता के सहायक थे, यह बात कांग्रेसजनों को कड़वी जरूर लगती है क्योंकि कांग्रेस ने ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा स्वराज्य पा लेने का मिथ्या गर्व खड़ा कर लिया है। बरमा, लंका, और भारत में अंग्रेजी शासन का अन्त और पाकिस्तान का जन्म एक ही घटनाक्रम और परिस्थितियों के परिणाम हैं। यदि दूसरे विश्वयुद्ध के परिणाम में उत्पन्न हो गयी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण, १६४७ में भारत का शासन अंग्रेज पूंजीपति वर्ग के हाथ से भारतीय पूंजीपति वर्ग के हाथ में आ जाने को अहिंसात्मक क्रान्ति की विजय कहा जाये तो पाकिस्तान का जन्म भी एक अहिंसात्मक क्रान्ति की सफलता ही मानना पड़ेगा परन्तु पाकिस्तान बनाये जाने के लिये तो कभी कोई अहिंसात्मक आन्दोलन या सत्याग्रह नहीं किया गया? जिन्ना साहब ने उसके लिये कभी उपवास नहीं किया, न कष्ट सह कर हृदय परिवर्तन का ही आन्दोलन चलाया था। जिन्ना को अहिंसा और प्रेम से हृदय परिवर्तन के सामर्थ्य पर गर्व भी न था। ब्रिटेन द्वारा कांग्रेस का भारत का शासन सौंप दिया जाना गांधीवादी अहिंसात्मक क्रान्ति की विजय का परिणाम नहीं है। यह दूसरे विश्वयुद्ध द्वारा उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में ब्रिटेन के लिये आत्मरक्षा का एकमात्र उपाय था, क्योंकि उन्हें कम्युनिज्म के प्रसार का भय था। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मि० एटली ने अपने ५ सितम्बर, १६५० के भाषण में स्पष्ट स्वीकार किया था—" कम्युनिज्म अपना प्रभाव अनेक गुप्त तरीकों से संसार भर में फैला रहा है। एशिया और अफ्रीका में इस प्रभाव को रोकने के लिये हमने भारत, पाकिस्तान और लंका को स्वतन्त्रता देकर उन्हें कम्युनिज्म के विरुद्ध कामनवेल्थ के मोर्चे में अपना साझीदार और सहायक बना लिया है।"* इसके अतिरिक्त अंग्रेज यदि भारत को अपने वश में रख सकना असम्भव समझने लगे थे तो वह कांग्रेस द्वारा गैरकानूनी नमक बना लेने के कारण नहीं था बल्कि दूसरे महायुद्ध के समय जापान की सहायता से इण्डियन नेशनल आर्मी के और १६४२ के भारतीय नौ-सेना के विद्रोहों के उदाहरणों से भारतीय जनता में गहरे विद्रोह की भावना को समझ लेना था। अस्तु,

बातचीत के बाद हॉलिन्स ने पूछा—"आपको यहाँ कोई कष्ट तो नहीं?"

---

*(National Herald, Sept , 6, 1950)

'कष्ट देने के लिये ही तो मुझे यहाँ लाया गया है और मैं उसके लिये तैयार भी हूँ।" उत्तर दिया।

क्या मतलब ?"

'मैं आप से लड़ता रहा हूँ। अब आप के बस में हूँ। मुझे जैसे चाहे रखिये वर्ना यह क्या आदमी के रहने की जगह है ? " हवालात की कोठरी की ओर संकेत किया।

"यह सब ठीक हो जायगा। आपको ऐसे नहीं रखा जा सकता। हम ब्रिटिश लोग प्रतिहिंसा की भावना नहीं रखते। यदि आपको जर्मनों या रूसियों से वास्ता पड़ता तो देखते। हम लोग मानवता का खयाल रखते हैं। स्वयं ही देख सकोगे, जितनी भी सुविधाएँ उचित होंगी, कानूनी या दूसरी, देने से हमें सन्तोष होगा।"

हालिन्स के जाने के कुछ देर बाद फिर हवालात का दरवाजा खुला। बाहर लगभग एक दर्जन सशस्त्र सिपाही खड़े थे। थानेदार ने कहा—"आप को दूसरी जगह जाना होगा।"

मुझे पुलिस गाड़ी में बैठाया गया। इलाहाबाद की सड़कें और स्थान परिचित थे। यहाँ बीसियों बार स्वतन्त्र घूमा-फिरा था। अब बन्दी बना उन्हीं सड़कों पर ले चला आ रहा था। मुझे कटरे के पास कचहरी के पीछे गोरा हवालात में पहुँचाया गया। कैनिंग रोड थाने की हवालात की अपेक्षा खूब बड़ा, रोशन, गुसलखाने के साथ कमरा था। दरवाजे-खिड़कियाँ यहाँ भी लोहे की मोटी-मोटी सीखों से जड़ी हुई थीं। चारों तरफ ऊँची पक्की ईंट की चारदिवारी से घिरा हुआ छोटा-सा आँगन। आगे-पीछे जंगलों से कुछ दूरी पर खड़े सशस्त्र सिपाही दीखते थे। यहाँ का इचार्ज एक अंग्रेज या ऐंग्लो-इण्डियन था। उसने मुझे बन्द करने से पहले मेरी तलाशी ली। सावित्री जी के मकान से आते समय केवल दो चीजें साथ लेते आया था—एक कम्बल और एक अपना कलम। यह कलम सुमित्रा दीदी की भेंट थी। उस समय बाजार में मिल सकने वाला सबसे अच्छा कलम था। कुछ कलम का मोह, कुछ भेंट का खयाल, कलम ले लिया था। अफसर ने वह कलम ले लिया और आश्वासन दिया—"जब यहाँ से जाओगे, लौटा दिया जायगा। हवालात में कागज-कलम रखने का नियम नहीं है।"

यूरोपियन हवालात में बन्द किये जाते समय एक बट्टी नहाने का साबुन, एक तौलिया, दाँत माँजने का ब्रुश और मंजन भी दिया गया। कमरे में लोहे का पलग, गद्दा और चादर-कम्बल भी थे। साढ़े-नौ बजे नाश्ता आ गया—मक्खन-रोटी, अंडे और चाय। यह जगह भी अपराधियों को बन्द करने के लिये ही थी परन्तु शासक जाति के अपराधियों के लिये। मुझे यहाँ पहुँचाये जाने का कारण अधिक सुरक्षित जगह में रखने का विचार था या पुलिस को मुखबिरों से मिली मेरे जीवन के आधुनिक अभ्यासों

की खबर रही हो। हवालात के अफसर ने दो-तीन सस्ते ढग के चलतू उपन्यास भी दे दिये कि पढ कर समय काट सकूँ परन्तु इतनी जल्दी पढने क्या बैठ जाता।

अनुमान था कि यहाँ काफी समय रहना पडेगा, यानि कुछ दिन के लिये ठिकाने पर पहुँच गया हूँ। गिरफ्तारी के समय गोली चलाये तीन-चार घण्टे बीत चुके थे। कुछ खा-पी लिया था। जगह भी बुरी नही थी। उस स्थिति मे इससे और अच्छी जगह की आशा कर भी न सकता था। अब सोचने का समय था कि आगे क्या करना होगा? सोचने लायक कोई बात नही सूझी। जब तक सामने समस्या का आभास न हो उसके बारे मे सोचा ही क्या जा सकता है। यह खयाल था कि लाहौर और दिल्ली के मुकदमो मे जरूर पेश किया जाऊँगा और किसी न किसी मामले मे फाँसी पर लटका दिया जाऊँगा, कुछ दिनो या महीने दो महीने की बात है। कमरे मे टहलने लगा।

उस कमरे मे मुझ से पहले दिन बिता गये लोग जगह-जगह दीवार का चूना खुरच कर अपने नाम लिख गये थे। अपना नाम कायम कर जाने का भी क्या मोह होता है! बच्चे जिस नयी जगह जाते है, अपना नाम लिख देते है। कुछ लोगो मे यह बचपन बडी उम्र तक बना रहता है। साधन होने पर लोग यह बचकाना शौक पूरा करने के लिये किले और बडे-बडे स्मारक बना जाते है। कुछ बहुत उदासी भरी कविताओ की अँग्रेजी मे पक्तियाँ भी जगह-जगह लिखी हुई थी। उनका प्रभाव हो अपनी मानसिक स्थिति के कारण, मैं भी गुनगुनाने लगा। —"कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले महफिल, चिरागे सहर ने बुझा चाहता हूँ।" और इसके हो—"गालिब खस्ता के बगैर कौन काम बन्द है, रोइये जारोजार क्यो कीजिये हाय हाय क्यो।" जब भी मन मे उद्वेग या भावना उमड आती है, गाना या गुनगुनाना उमडने लगता है।

खुद ही खयाल आया, कौन रो रहा है और कौन हाय हाय कर रहा है मेरे लिये! अपने प्रति स्वय ही करुणा अनुभव करने से क्या फायदा? अपनी माँ, भाई और प्रकाशवती का खयाल आया। वह खयाल भुला देने की चेष्टा की। क्या लाभ था सोचने से जानता था उन लोगो को बहुत दुख होगा परन्तु उन्हे दुख से बचाने का उपाय तो मैं कुछ कर नही सकता था। अपने विचार मे उन्हे दुख न देने का उपाय मैं यही कर सकता था कि अपने व्यवहार मे किसी प्रकार की निर्बलता न आने दूँ। ताकि वे मेरे लिये गर्व कर सकें।

दोपहर के समय दरवाजा खुला और एक स्थूल शरीर, गरम कोट-पतलून पहने व्यक्ति भीतर आये। उनके पीछे एक सिपाही खूब बडा थाल, दूसरे थाल और तौलिये से ढका हुआ उठाये था। कुर्सी पर बैठ कर उन्होने अपना परिचय दिया—' 'मैं जे० बैनर्जी,

डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट, पुलिस हूँ।"

याद आ गया। खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बैनर्जी को बनारस मे एक क्रान्तिकारी ने उनकी ब्रिटिश सेवा का फल देने के लिये गोली मारी थी। यह वही सज्जन थे। बैनर्जी ने बताया मेरी गिरफ्तारी की बात सुन कर उन्हे बहुत दुख हुआ और उन्होने सोचा कि जाकर देख तो आयें कि मेरी कैसी हालत है। उन्हे यह भी खयाल आया कि मैं भले घर का लडका हूँ। मेरे खाने-पीने का जाने क्या प्रबंध किया गया होगा इसलिये वे मेरे लिये कुछ खाना भी साथ लेते आये थे। उन्होने आग्रह किया कि पहले मैं खा लूँ तब बात करेंगे।

मैंने विश्वास प्रकट किया—"यहाँ सब प्रबन्ध सन्तोषजनक जान पड रहा है। खाने का प्रबन्ध भी ठीक ही होगा।" परन्तु वे नही माने। थाल खोलकर मेरे सामने रख दिया और बहुत ही आत्मीयता से, जैसे बहुत दिन बाद परदेश से लौटे परिवार के लडके को भोजन कराया जाता है, एक-एक चीज की ओर सकेत कर खाने का आग्रह करने लगे। खाना बहुत अच्छा बगाली ढग का था। अच्छे बगाली खाने की तरह उसमे मिठाई भी थी। याद है, खजूर का गुड पहली बार उसी दिन खाया था।

मैं खा चुका तो बातचीत शुरू हुई। बैनर्जी के आने का उद्देश्य था कि सकट के समय जितनी सम्भव हो मेरी सहायता की जाये। उन्होंने याद दिलाया कि मेरी गिरफ्तारी की खबर पाकर मेरे सम्बन्धी दुख से कलपेंगे। खास कर 'यग लेडी' (प्रकाशवती) पर क्या बीतगी? कुछ ऐसा उपाय किया जाना चाहिये कि कानूनी झझट से छुट्टी पाकर मैं अपना शेष जीवन पारिवारिक सुख-शाति से बिता सकूँ। मेरे जैसे योग्य नौजवान का जीवन व्यर्थ नष्ट नही होना चाहिये। वे यह भी जानते ही थे कि मैं चोर-डाकू नही हूँ। अपने विचार मे मैंने सब कुछ नि स्वार्थ भाव से ऊँचे मकसद के लिये किया है। सब से बडी बात यह है कि कुछ और नौजवान भी देशभक्ति की भावना से मेरी तरह अपने जीवनो को जोखिम मे डाल रहे है, उन्हे भी बचाया जा सके। उन्होंने पजाबी होने के नाते मेरे बहादुर और स्पष्टवादी होने की भी आशा प्रकट की—जब तक लडे, खूब लडे। जब लडाई खतम तो साफ-साफ बात से झगडा खतम। यह भी बताया कि पिल्डिच साहब भी मेरी निर्भीकता और शिष्टाचार की प्रशसा कर रहे थे। उन्हे मुझ से व्यक्तिगत वैर नही है।

बैनर्जी ने बताया, वे नित्य गीता का पाठ करते थे। गीता के उपदेशानुसार आचरण का प्रयत्न करते थे। यानि अपने कर्म को धर्म समझ कर उसे पूरा करते थे और फल की चिन्ता भगवान पर छोड देते थे। उन्होंने मुझे भी ऐसा ही करने के लिये कहा। गीता के श्लोकों के उद्धरण भी दिये। उन.का कि देश के नौजवानो को अपनी जिन्दगियाँ

बरबाद करने से बचाना वे अपना वैयक्तिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने बताया बनारस में स्वयं उनके ही भाजे मणीन्द्र ने उन पर गोली चला दी थी। लोग मणीन्द्र को पकड़ कर पीटने लगे तो उन्होंने उसे छुड़ा दिया—"अबोध लड़के को न मारो। वह कुछ नहीं समझता।" मणीन्द्र की गोली उनके पेट को छीलती हुई निकल गयी थी। वे बाद में भी गीता के उपदेशानुसार अपना कर्त्तव्य निबाहते रहे। हाँ, अँग्रेजी सरकार ने उनके शुभ कर्मों का फल देने के लिये उन्हें रायबहादुर की पदवी से भूषित कर दिया था।

मैंने बैनर्जी के कृपा के लिये धन्यवाद देकर विश्वास दिलाया, मैं भी अपनी समझ से गीता के अनुसार ही आचरण करना चाहता हूँ। जो कर्त्तव्य समझा, करने की कोशिश की, अब उसका फल चाहे जो हो। भगवान ने सगे-सम्बन्धियों का मोह छोड़ कर कर्त्तव्य-पालन का उपदेश दिया है। यह सम्बन्ध तो नश्वर शरीर के हैं, उसीके साथ समाप्त भी हो जायेंगे। किसी को दुख देने का क्या प्रश्न है, सब का अपना-अपना कर्मफल भोग है।

बैनर्जी तीन दिन तक दोपहर में लगातार आते रहे। साथ बढ़िया भोजन भी लाते थे। सध्या भोजन भिजवा देते थे दोपहर में गीता को लेकर चर्चा होती रहती और वे बराबर खेद प्रकट करते कि इतनी समझ-बूझ और प्रतिभा का धनी नौजवान ऐसे बरबाद हो जाये। वे ऐसा न होने देने की प्रतिज्ञा किये बैठे थे, चाहे मैं नाराज ही क्यों न हो जाऊँ। बातचीत में कुछ समय बीत जाता था।

चौथे या पाँचवें दिन दोपहर के समय दरवाजा खुला और खबर मिली कि दूसरी जगह चलना होगा। खयाल आया, इन लोगों ने इतने दिन भलमनसाहत से समझा कर देख लिया। अब यह दूसरा उपाय करेंगे। बहुत उपाय सुन रखे थे—उल्टा टाँग देना, बेहिसाब पिटाई, नाखूनों में पिन गाड़ देना और जाने क्या-क्या! मन ही मन सोचा तैयार ही जाओ!

प्राय दर्जन भर सशस्त्र सिपाहियों से सुरक्षित पुलिस की बस द्वारा मुझे मलाका जेल (इलाहाबाद जिला जेल) में पहुँचा दिया गया। अब तक किसी भी समय मुझे हथकड़ी नहीं लगायी गयी थी। जेल के भीतर पहुँचते ही एक लुहार मेरे पाँवों में बेड़ियाँ पहनाने के लिए आ गया। मैंने जेलर के सामने आपत्ति की, 'मैं राजनीतिक कैदी हूँ, बेड़ियाँ नहीं पहनूँगा।'

'यह सब हमें कुछ मालूम नहीं है। जिस दफा में चालान आया है, उसमें बेड़ियाँ पहनाई जायेंगी।" उत्तर मिला।

"आप बेड़ियाँ पहनायेंगे तो मैं विरोध में न भोजन करूँगा और न कोई दूसरा आवश्यक काम।"

'ये तुम जानो।"

बेड़ियाँ पहना दी गयी और जेल के भीतर के पाँच दरवाजे लाँघ कर, दूर एक हाते के भीतर एक बारक की कोठरी में पहुँचा कर, कोठरी के किवाड़ों पर ताला लगा दिया गया। बारक के लोहे के बड़े फाटक पर भी ताला था। कोठरी का दरवाजा झंगलेदार नहीं, लोहे की चादर का था। दरवाजे में एक सुराख था जिस पर बाहर की ओर ढक्कन था। पहरेदार वार्डर जब चाहता भीतर झाँक सकता था। इस बारक में बीच में गलियारे की तरह जगह खाली थी और दोनों ओर कोठरियाँ बनी हुई थी। एक कोठरियों में एक पागल बन्द था। वह कभी रोता, कभी गाता रहता। दूसरी कोठरी में तनहाई की सजा पाये कैदी बन्द थे। कोठरी में खाट या पलंग नहीं था। मूँज का बना दो फुट चौड़ा और छः फुट लम्बा एक मोटा टाट, दो काले कम्बल बहुत ही कड़े और लोहे का एक तसला पानी पीने के लिये। एक कोने में तारकोल से पुती जगह में मिट्टी का एक बड़ा प्याला शौच-मूत्र के लिये। दिन में भी अँधेरा सा ही रहता था। रात में भी कोई प्रकाश नहीं। दिल में सोचा, "इब्तदाए इश्क है रोता है क्या, आगे-आगे देखना होता है क्या।"

सुबह आधा पाव अधभुना-अधघुना चना, दोपहर और सध्या पाँच-छः बड़ी-बड़ी रोटियाँ और लोहे के तसले में पानी जैसी दाल डाल दी जाती थी मैं कुछ न खा-पीकर भविष्य की प्रतीक्षा में पड़ा-पड़ा ऊँघा-सोया करता था। जाने इतनी नींद कहाँ से आ गयी थी।

चार-पाँच ही दिन ऐसे बीते होंगे। सुबह जेल के अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट (जो इलाहाबाद का सिविल सर्जन भी था) के दर्शन हुये। उस के कोठरी में आने पर भी मैं लेटा ही रहा।

सिविल सर्जन ने पूछा— तुम अशिष्टता का व्यवहार क्यों कर रहे हो?"

मैंने उत्तर दिया—'मेरे साथ भी तो अशिष्टता का व्यवहार किया जा रहा है।'

'क्या? कैसे?"

'यह शिष्ट लोगों के रहने का ढंग और जगह है?" मैंने कोठरी की ओर संकेत करके पूछा।

सिविल सर्जन ने मेरी बात का उत्तर न देकर धमकी दी—'तुम भूख हड़ताल कर रहे हो। यह जेल कानून से अपराध है।"

मैं भूख हड़ताल नहीं कर रहा हूँ। मेरे साथ ठीक ढंग से व्यवहार नहीं किया जा रहा है और न खाने लायक खाना दिया जा रहा है इसलिये मैं नहीं खा सकता।"

दूध-चावल खाओगे?" उसने पूछा।

"दूध-चावल का सवाल नही है। ठीक व्यवहार का प्रश्न है।"

"वह कैसा होता है ?"

"जैसा राजनैतिक कैदियो के साथ होना चाहिये या जैसे कोई सभ्य देश युद्ध-बन्दियों के साथ करता है।"

"तुम तो वायोलेंस के अपराध के अभियुक्त हो।" साहब ने गांधीवादी भाषा का प्रयोग किया।

मैंने उत्तर दिया, "जो भी हो उद्देश्य राजनैतिक ही है।"

"यह हम नही जानते। तुम ऊँची श्रेणी का वर्ताव चाहते हो तो दरखास्त दे दो। तुम्हारी आर्थिक स्थिति की तहकीकात की जायगी। फिर मजिस्ट्रेट का जैसा फैसला होगा। अभी चाहो तो मैं लिहाज मे दूध-चावल दे सकता हूँ।"

"धन्यवाद। लिहाज नही चाहिये। ठीक व्यवहार चाहिये।"

कोठरी का फाटक बन्द हो गया।

अगले या दूसरे दिन दोपहर बाद जेल के दफ्तर मे ले जाकर मुझे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मैं समझ गया कि मुझे मैजिस्ट्रेट के सामने पेश करने की आवश्यकता इसलिये हुई होगी कि पुलिस मुझे तहकीकात के लिये अभी और हवालात मे रखे रहने की इजाजत चाहती है। सम्भव है, बाहर इस बात पर शोर मच रहा हो कि मुझे अदालत मे पेश क्यो नही किया जा रहा। मजिस्ट्रेट ने मुझ से पूछा "कुछ कहना चाहते हो ?"

उत्तर दिया—"मेरे साथ मनुष्यों जैसा व्यवहार नही किया जा रहा है। जब तक मेरे पाँव से बेडियाँ नही निकाली जायेंगी मैं न भोजन करूँगा, न कोई बात करूँगा। व्यवहार राजनैतिक कैदियो जैसा होना चाहिये।"

मजिस्ट्रेट ने कहा, "ऊँची श्रेणी का व्यवहार चाहते हो तो दरखास्त दो।"

मैंने आग्रह किया, "आप से कह रहा हूँ, इसे दरखास्त समझ लीजिये।"

इन आठ-नौ दिनो मे बाहर या जेल के किसी आदमी से बात करने का अवसर नही मिला। यह भी मालूम नही था कि मेरी गिरफ्तारी की बाबत लोगो को पता लगा या नही। और किसी को मेरी चिन्ता है या नही। मेरा निश्चय था कि मैं स्वयं जो कुछ कर सकता हूँ, मुझे उसीकी चिन्ता करनी चाहिये। मुकदमे मे मुझे सफाई देनी क्या है, कुछ नही। यही बताना है कि मैंने जो कुछ किया, वह क्यो किया। जैसे भगतसिंह ने अदालत मे किया था।

यदि यों अज्ञान मे रखे जाने और सात-आठ दिन बेडियाँ पहने भूखा रहने को ही यातना देना कहा जाय तो यातना ही थी परन्तु उस समय मुझे यह कुछ बहुत

बड़ा कष्ट नही जान पड़ा क्योंकि मैं इससे बहुत बड़ी यातनाओं की प्रतीक्षा मे था। कुछ आदमियो या साथियो से बाद मे बात करने पर पता लगा है कि मन मे यह खयाल कि हमारी बाबत किसी को कुछ पता ही नही, हम इस काल कोठरी मे मर भी जाये तो किसी को खबर नही होगी, सबसे बड़ी यातना बन जाता है। जब अभियुक्त अपनी बात बाहर पहुँचाने की मांग करता है तो पुलिस को उसका एक मर्मस्थल मालूम हो जाता है। यह दिखाकर कि तुम्हारी बात बाहर नही जा सकती, तुम बड़े देशभक्त शहीद बन रहे थे लेकिन किसी को तुम्हारी चिन्ता नही, उसे परेशान किया जा सकता है। परेशान होते व्यक्ति की परेशानी को बढ़ाने के लिये उसकी पिटाई-पिटाई भी की जा सकती है। मै ऐसा अनुभूतिशून्य बनकर बैठ गया कि मुझे कोई परेशानी या शिकायत है ही नही।

उस रोज मजिस्ट्रेट से बात होने के अगले दिन बेड़ियाँ कट गयी। उस काल-कोठरी मे लोहे का एक पलग और बिस्तर भी आ गया और बी० कलाम के कांग्रेसी कैदियो के यहाँ से भोजन आने लगा। अगले ही दिन बैनर्जी फिर आ पहुँचे। उन्होने बहुत विस्मय और खेद प्रकट किया—"तुम्हे यहाँ भेजकर इन लोगो ने बड़ी मूर्खता की है। मुझे मालूम ही नही हुआ। यह तुम्हारे लायक जगह नही है। साथ कुछ फल लेते आये थे और भोजन का थाल भी। फिर गीता के उपदेश के अनुसार फल की चिन्ता न कर अपना कर्त्तव्य निश्चय करने का उपदेश शुरू हुआ। परिवार और प्रकाशवती का जिक्र हुआ और यह सम्भव बताया गया कि मुकदमे का यो ही सा उपचार हो जाये और मैं सकट के इस झगड़े से छूट जाऊँ और विलायत चला जाऊँ। यह सब हो सकता था यदि मैं दूसरे नौजवानो का जीवन नष्ट करने वाले आन्दोलन की रोकथाम मे सहयोग दे सकता अर्थात् मुखबिर बन जाता।

अब बैनर्जी का साफ-साफ बात करनी पड़ी। उनका ढग इतना शिष्ट और मधुर था कि मै अकारण ही उद्दडता से बात नही कर सकता था। मैंने कहा—"बैनर्जी महाशय, गीता की बात छोड़िये। गीता का अर्थ किसी की समझ मे नही आ सकता। गीता के उपदेश से युद्ध मे कतराने वाला अर्जुन राज्य के लोभ मे अपने सगे-सम्बन्धियो को मारने के लिये तैयार हो गया था। बहुत से लोग गीता पढ़कर वैरागी बन जाते है। गांधी जी को उसमे अहिंसा का उपदेश मिलता है। आप मुझे गीता के आधार पर अपनी जान बचाने के लिये अपने साथियो के साथ विश्वासघात करने का सुझाव दे रहे है। अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार मेरा निश्चय है कि मैंने जो कुछ किया उचित किया। मुझे मालूम था कि इसका फल भोगना पड़ेगा। मैं उसके लिये तैयार हूँ। आप की सहायता के लिये आभारी हूँ। भोजन मुझे जेल मे मिलता है, आप भोजन

से भिजवाया कीजिये।"

बैनर्जी ने उपेक्षा के भाव में रूप के हाथ हिलाकर कहा—"इन छोटी छोटी बातों को छोड़ो। यह तो मेरे संतोष की बात है।"

भोजन के सम्बन्ध में बैनर्जी की कृपा से बचने की इच्छा का एक कारण था। मुझे इस जेल में आये आठ-दस दिन हो गये थे। अब तक मेरे साथ विशेष व्यवहार हो रहा था इसलिये कैदियों में उत्सुकता हो रही थी कि मैं हूँ कौन? एक दिन तो एक कैदी जमादार एक छोटा-सा पर्चा ही ले आया। इस पर्चे में लगानबन्दी के सत्याग्रही कैदियों ने मेरे सम्बन्ध में जिज्ञासा की थी और सहायता करने की इच्छा भी प्रकट की थी उस सन्देश का कोई उत्तर न दिया था। मुझे शंका थी, यह कैदी जमादार जेलर की ओर से यह भेद तो नहीं ले रहा कि मैं गैरकानूनी काम करता हूँ या नहीं। दूसरे कैदियों को यह कैसे न पता चलता कि बैनर्जी पुलिस के ऊँचे अफसर हैं। उन के यहाँ से मेरे लिये खाना आने के कई अर्थ लगाये जा सकते थे।

बैनर्जी से कुछ कड़ी बात कह देनी पड़ी। कहा, 'देखिये मैं जेल में हूँ। खाना आप के यहाँ से आता है। यदि मुझे कुछ हो गया तो मुझे विष देने का कलंक आप पर आयेगा। ऐसा मैं नहीं चाहता।" बैनर्जी ने कान को हाथ लगाया, 'न भाई, ऐसा सोचते हो तो मैं खाना नहीं भिजवाऊँगा।"

तीसरे-चौथे दिन बैनर्जी ने तंग आकर कहा— आखिर हम अदालती कार्रवाई कब तक रुकवा सकते हैं। मामला एक बार अदालत में चला गया तो फिर उसे रफा-दफा करने या उस का रूप बदल देने की गुंजाइश नहीं रहेगी। तुम्हें अब सोच लेना चाहिये।"

मैंने उत्तर दिया, 'मैं तो स्वयं ही चाहता हूँ कि मामला जल्दी अदालत में आये। यहाँ आप ने मुझे अन्धे कुएँ में डाल रखा है। आप की सद्भावना के लिये मैं कृतज्ञ हूँ परन्तु मेरी स्थिति ऐसी है कि आप मुझ से मिलने न आयें तभी मेरे लिये अच्छा है।" बैनर्जी लम्बी सांस लेकर चले गये पर उन्होंने हार मान ली हो सो बात नहीं। उन्होंने मेरे हृदय परिवर्तन का एक और प्रयत्न किया पर कुछ दिन बाद।

एक-दो दिन बाद मुझे जेल के दफ्तर में बुलाया गया। श्यामकुमारी नेहरू एडवोकेट भेंट के लिये आ गयी थीं। उन्हें पहचान लिया। फरारी की अवस्था में भी उनकी माता उमा नेहरू, पिता मोहनलाल नेहरू और उनसे भी दो बार मिल चुका था। उन्होंने अपने साथ आये दो व्यक्तियों का परिचय कराया। एक स्वयं श्यामकुमारी के चाचा बिहारीलाल नेहरू थे और दूसरे उनके मित्र बैरिस्टर थे। इन लोगों ने मेरी वकालत करना स्वीकार किया था और इसी सम्बन्ध में मुझसे परामर्श करने आये थे।

बात जेल के अफसरो की नजर मे हुई परन्तु अफसर बात नही सुन सकते थे। वे चौकसी रखते थे कि हम लोग कुछ ले-दे न लें। ब्रिटिश सरकार की जेल मे मैंने स्वय अपने मामले की सफाई के लिये वकीलों से गुप्त परामर्श करने का अधिकार का उपयोग किया है। हरेक अभियुक्त चाहे वह किसी भी अपराध का अभियुक्त रहा हो, चाहे जितना खतरनाक और अविश्वसनीय माना गया हो, इस अधिकार का प्रयोग कर सकता था परन्तु सन् १९४९ मे जब मुझे रेलवे हड़ताल की आशका मे व्यर्थ ही जेल मे डाल दिया गया था, यह देखकर विस्मय और दुःख हुआ कि कांग्रेसी राज्य मे कम्युनिस्ट अभियुक्तो को वह अधिकार देने से इन्कार किया जा रहा था। समाचार पत्रो और जनता द्वारा बहुत विरोध होने के कारण मुझे जेल से जल्दी ही छोड दिया गया था। उस समय लालबहादुर शास्त्री उत्तर प्रदेश के पुलिस-मन्त्री थे। मैंने उनका ध्यान इस अन्याय की ओर दिलाया। इस विषय मे उनसे मिलने गया तो शास्त्री जी बैठे चरखा कात रहे थे। उन्होने मेरी शिकायत का उत्तर दिया कि कम्युनिस्ट लोग ऐसे अधिकारों का नाजायज लाभ उठाते है।

शास्त्री जी की यह बात सही मानी जा सकती है परन्तु मैं व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर कह सकता हूँ कि कांग्रेस के सभी नेताओ ने, प० जवाहरलाल नेहरू से लेकर स्वय शास्त्री जी तक, सभी ने ब्रिटिश राज मे ऐसे अधिकारो का मनचाहा या नाजायज लाभ उठाया था। परन्तु इस अधिकार का छीना जाना वे सहन नही कर सकते थे। ब्रिटिश सरकार भी जानती थी कि राजनैतिक कैदी इस अधिकार का दुरुपयोग करते थे परन्तु वे एक बात को नियम मान लेने पर उसका पालन उचित समझते थे। दुर्भाग्य से हमारी कांग्रेस सरकार मे ऐसा साहस नही है। वे चरखा कात तन को ही आचार, नैतिकता और सत्य-अहिंसा की पराकाष्ठा मान कर सन्तोष कर सकते हैं।

श्यामकुमारी जी से मालूम हुआ कि बाहर कुछ लोग मुझे अदालती सहायता देने के लिए कमेटी बना कर चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं। मैंने उनसे कहा—"लाहौर और देहली षड्यन्त्रों से मुकदमो की बात दूसरी थी। वहाँ बहुत से अभियुक्त थे। यहाँ मैं अकेला हूँ। आप लोग सहृदयता से पैरवी कर रहे हैं तो और रुपये की जरूरत क्या है? मैं यह नही चाहता कि मेरी माता को आर्थिक सहायता देने के लिये चन्दा जमा किया जाय।" मुझे यह मालूम हो चुका था कि मेरे छोटे भाई धर्मपाल के गिरफ्तार हो जाने से पहले ही मेरी माता ने लाहौर मे महिला महाविद्यालय के बोर्डिंग हाउस मे सुपरिन्टेन्डेन्ट की नौकरी कर ली थी।

श्यामकुमारी जी ने बताया कि सावित्री जी पर मुझे शरण देने के लिये मुकदमा चल रहा है। यह जानने के लिये कि मेरे साथ विश्वासघात किसने किया होगा,

श्यामकुमारी और उनके साथ आये वकीलों ने मेरी गिरफ्तारी का ब्योरेवार वर्णन पूछा। मुझे यह भी समाचार मिल गया कि प्रकाशवती तथा दूसरे साथी सुरक्षित थे। यह भी पता लगा कि इन्द्रपाल के अपने बयान पलट देने के कारण दूसरे लाहौर षड्यंत्र का मुकदमा गिर गया था और मेरा छोटा भाई धर्मपाल छूट गया था। उन्होंने बताया कि अभी मुझ पर एक मुकदमा शस्त्र रखने के लिये और दो मुकदमे हत्या के लिये चलाये जायेंगे।

मैं अकेला अभियुक्त था। इसलिये मुझ पर षड्यन्त्र का मुकदमा चल नहीं सकता था। उपरोक्त तीनों अपराधों में से किसी किसी के लिये भी कानूनन सात वर्ष जेल से अधिक की सजा नहीं हो सकती थी। सोचा लाहौर और देहली के मामलों में मुझ पर षड्यन्त्र और वायसराय की ट्रेन के नीचे विस्फोट आदि के लिये मुकदमे चलाने होंगे तो मुझे लाहौर या दिल्ली ले जाया जायगा।

बिहारीलाल जी नेहरू ने बताया, "दफा ३०७ का एक मुकदमा कानपुर की घटना के सम्बन्ध में है। *उस मुकदमे के लिये पहले शिनाख्त परेड होगी अर्थात् एक मैजिस्ट्रेट* के सामने कानपुर की घटना से सम्बन्ध रखने वाले सिपाही तुम्हें पहचानने के लिये आयेंगे। यदि वे लोग तुम्हें पहचान न सके तो वह मुकदमा चल ही नहीं सकेगा।"

मैं हँस दिया और कहा, "जिन लोगों से काफी बहस और झगड़ा करके जिन्हें *सामने से गोली मारी है, वे मुझे पहचानेंगे कैसे नहीं।* खास कर जब वे पहचानने के लिये ही आयेंगे। उनमें से एक सिपाही से देहली के चावड़ी बाजार में सामना हो गया था। उस समय भी वह मुझे तुरन्त पहचान गया था। यह बात दूसरी है कि भय से उसके हाथ-पाँव फूल गये थे या उस समय वह निशस्त्र रहने के कारण डर कर भाग गया।' मैंने कहा "पहचान न सकने की बात तो असम्भव (impossible) है।"

नेहरू जी ने समझाया, "यह मत कहो कि असम्भव (impossible) है, यह कह सकते हो कि It is highly improbable (न पहचान सकना बहुत अप्रत्याशित है) *एक बात और है, तुम पर यह मुकदमे राजनैतिक षड्यन्त्र द्वारा हत्या के रूप में* नहीं चलाये जा रहे हैं। तुम पर कोई राजनैतिक अपराध नहीं लगाया गया है इसलिये तुम्हारा स्वयं यह स्वीकार कि 'हाँ, मैंने यह किया है, मैंने वह किया है,' अप्रासंगिक होगा। तुम यदि अपने आप को निर्दोष नहीं बताना चाहते तो बयान देने से इनकार कर सकते हो। *शेष हम देख लेंगे कि क्या हो सकता है।* तुम हमारे रास्ते में रुकावटें न डालना।" वे मेरे लिये इतना कर रहे थे तो उनकी यह सीख माननी ही पड़ी। इसमें मुझे कोई असम्मानजनक बात नहीं लगी।

'उन दिनों मुझे कपड़े तो श्यामकुमारी ने ला दिये थे परन्तु मैं हजामत नहीं बनवा रहा था। जेल के कैदी नाई से हजामत बनवाना मुझे पसन्द नहीं था। सेफ्टीरेजर

रखने की आज्ञा अभी मिली नही थी। अगले दिन मुझे जेल के दफ्तर म बुलाया गया। एक जवान से मैजिस्ट्रेट साहब मौजूद थे। यह थे श्री भगवान सहाय। श्री सहाय १९४७ के बाद उत्तर प्रदेश मे चीफ सेक्रेटरी रहे हैं, भोपाल राज्य के चीफ कमिश्नर रहे और बाद म जम्मू-कश्मीर और हिमाचल के गवर्नर रहे। मि० सहाय ने बताया कि मेरी शिनाख्त करने के लिये मुझे कुछ लोगों के बीच खड़ा किया जायेगा और कानपुर गोलीकाड से सम्बन्धित सिपाहियों को मुझे पहचानने का अवसर दिया जायगा।

मैंने शिनाख्त परेड मे खड़े होने से इनकार कर दिया।

श्री सहाय बहुत तटस्थता से बोले, "सुनिये, अगर आप शिनाख्त परेड मे खड़े होने से इन्कार करेंगे तो मैं लिख दूंगा कि अभियुक्त ने परेड मे खड़े होने से इनकार कर दिया। मुझे कुछ लेना देना नही है लेकिन न्याय के विचार से बता देना उचित है कि आप का इनकार करना आप के विरुद्ध प्रमाण माना जा सकता है। यदि आपको एतराज़ है कि शिनाख्त परेड ठीक ढग से नही हो रही है तो अपना एतराज बताइये। यदि एतराज़ मुनासिब होगा तो उसे दूर करने की कोशिश की जायगी।"

इस युक्ति-युक्त बात का मैंने भी उचित उत्तर दिया। मेरा एतराज़ था कि जिन आदमियों के बीच मे मुझे खड़ा किया जा रहा है, मेरे सिवा वे सब जेल के कैदियों की वर्दी पहने हैं। मेरे चेहरे पर पन्द्रह दिन की हजामत होने से मैं यो ही अलग-सा दिखाई देता हूँ। उचित ढग से शिनाख्त परेड तब होगी जब मुझे मेरे जैसे आदमियो म खड़ा किया जाये। मुझे हजामत बनाने का भी मौका मिलना चाहिये। मेरी यह हजामत ही बता रही है कि मैं सदा से ऐसे नही रहता आया हूँ।

'हां, यह एतराज ठीक है।" मि० सहाय ने स्वीकार कर लिया।

उपाय यह सोचा गया कि मुझे 'सी' क्लास के मामूली कैदियो के बजाय 'बी' क्लास के राजनैतिक कैदियो के साथ खड़ा किया जाये। मुझे कपड़े बदल लेने और हजामत की भी सुविधा दी जाय।

उस समय इलाहाबाद जेल म मोहनलाल गौतम (कांग्रेसी शासन मे उत्तर प्रदेश के स्वायत्त-शासन मंत्री), कानपुर से लोकसभा के सदस्य गोपीनाथसिंह आदि राजनैतिक बन्दी थे। इन लोगों से पुराना परिचय था। यह लोग मेरी सहायता के लिये सभी कुछ करने के लिये तैयार थे। वे खद्दर के उजले कुर्ते-पायजामे और गाँधी टोपी पहने थे वैसा ही एक जोड़ा मेरे लिये भी मगवा दिया। एक नाई बुलाया गया। मुझे याद था कि मैं कानपुर की घटना के दिनो मे छोटी-छोटी मूँछें रखता था। गौतम जी जेल मे पूरी मूँछें रखे थ। उन से अनुरोध किया कि अपनी मूँछें छोटी तरशवा लें। मैंने अपनी मूँछें सफाचट कर दी। शिनाख्त परेड में खड़ा होने के लिये 'बी' क्लास के एक और पजाबी अभियुक्त को बुला लिया गया था। यह भला आदमी मुसलमान

था और जाली सिक्का बनाने के मामले मे गिरफ्तार था। मेरे पजाबी और भगतसिंह का साथी क्रान्तिकारी होने के कारण वह मुझसे गले लगकर मिला और बोला, "तुम्हें बचाने के लिये जान तक देने के लिये तैयार हूँ।" उसने बडे यत्न से मूँछें पाल रखी थी और उन्हे मरोड कर बिच्छू के डको की तरह चढाये था। मैंने अनुरोध किया—"यह मूँछें छँटवा कर तितली की तरह छोटी-छोटी करवा लो।" उसने तुरन्त यह कुर्बानी कर डाली।

मेरे अनुरोध पर मैजिस्ट्रेट ने इशारा कर सकने वाले जेल के लोगों को दूर-दूर हट जाने के लिये कह दिया और मुझसे पूछा अब तो कोई एतराज नही है। एतराज के लिये गुजाइश न रही। इससे मन की आशका तो मिट नही गयी थी। हम लोग शिनाख्त परेड के लिये खडे हो गये। पहचानने के लिय आये एक सिपाही को पुकारा गया। उसके सामने आते ही मैंने उसे पहचान लिया परन्तु पहचान लिये जाने की कोई घबराहट प्रकट न कर शात खडा रहा। पहले से मत्रणा के अनुसार गौतम जी और पजाबी भाई ने कुछ घबराहट प्रकट की। सिपाही ने हम सब लोगो को कई बार देखा। वह स्वय बौखलाया हुआ जान पड रहा था। आखिर उसने गौतम जी का हाथ पकड लिया।

दूसरे सिपाही को बुलाया गया। वह भी पथराई सी आँखो से हम सबको कुछ देर देखता रहा और अन्त मे उसने पजाबी सज्जन का हाथ थाम कर कहा, "यह आदमी था।"

तीसरे सिपाही ने, जो मुझे दिल्ली चावडी बाजार मे दूसरी बार भी मिला था हम सब को ध्यान से देखा। उसके शरीर मे पुराने भय के कारण कँपकँपी अब भी दिखाई पड रही थी। सब को खूब अच्छी तरह देख कर कहा, "हुजूर, वह आदमी यहाँ नही है।"

इसके बाद बिहारीलाल नेहरू मुलाकात करने आये और शिनाख्त परेड का परिणाम सुन कर उन्होने याद दिलाई, "तुम तो कहते थे पहचाना न जाना असम्भव है।" अस्तु, कानपुर घटना के मुकदमे से छुट्टी मिली।

दूसरे-तीसरे दिन फिर दफ्तर मे बुलाया गया और पुलिस की एक गारद के हवाले कर दिया गया। जेल के नियम के अनुसार कैदी को एक जेल से दूसरी जेल मे बदली होने की खबर पहले नही होने दी जाती। आशका रहती है कि कैदी भाग जाने का इन्तजाम न कर ले पर पुराने कैदियो को ऐसी खबरें कई दिन पहले ही मिल जाती है। मैं उस समय तक नया था मेरा अनुमान था कि मुझे देहली या लाहौर ले जाया जा रहा है। श्यामकुमारी प्राय तीसरे-चौथे मिलने आती रहती थी। उनसे मालूम हो चुका था कि दिल्ली और लाहौर के मुकदमो मे सफाई के वकील मुझे मुकदमो मे पेश

करने की माँगें कर रहे थे। वहाँ मुझे पेश करने का मतलब उन मुकदमो का नये सिरे से जारी किया जाना होता। सरकार उन मुकदमो पर उस समय चौदह-चौदह पन्द्रह-पन्द्रह लाख रुपये खर्च कर चुकी थी। दिल्ली या लाहौर भेजे जाने पर मैं पुराने साथियो से मिलने का अवसर तो पाता परन्तु मुझ पर कालेपानी या फाँसी की सजा दिये जा सकने योग्य अभियोग भी चल सकता था।

पुलिस ने मुझे रेलवे स्टेशन न पहुँचाकर इलाहाबाद के नैनी सेन्ट्रल जेल मे पहुँचा दिया। यहाँ मुझे गोरा बारक (यूरोपियन बारक) की एक कोठरी मे बन्द किया गया। बारक से बाहर निकलने की आज्ञा नही थी। मेरी कोठरी के पीछे हर समय एक जमादार खडा यह देखता रहता था कि मैं कोठरी मे मौजूद हूँ या नही, मुझ से कोई मिलने तो नही आता। वास्तव मे तो यूरोपियन बारक के सभी कैदी मेरे लिये पहरेदार थे क्योंकि वहाँ अधिकाश गोरे फौजी सिपाही थे, दो-तीन यूरोपियन होने का दावा करने वाले एग्लो-इडियन, एक एग्लो-इडियन होने का दम भरने वाला देसी ईसाई। ये सब लोग मुझे अपना व्यक्तिगत शत्रु समझते थे। यहाँ भोजन कपडे का दर्जा 'बी' क्लास के राजनैतिक कैदियो से भी कुछ ऊँचा था। मक्खन, डबल रोटी, दूध, चाय, अच्छा चावल, दाल, मास, एक आध पाव फल सभी कुछ मिलता था। सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर गगाराम ओबेराय ने मुझे भद्रजन समझ कर या स्वास्थ्य के विचार से मेरे लिये कुछ अधिक दूध और अडे की भी व्यवस्था कर दी थी।

श्यामकुमारी और दूसरे वकील नैनी मे भी मिलने आते थे। श्यामकुमारी मेरी बहुत सहायता करती थी। उनसे मैं अपनी निजी जरूरत की या राजनैतिक सदेश भेजने की बात भी बेतकल्लुफी से कर सकता था। जितनी या जिन पुस्तको या दूसरी चीजो के लिये उनसे कहा उन्होंने लाकर दी। यह भी कहा कि जब जैसी जरूरत हो सदेश भेज दूँ। सदेश भेजने के सुझाव पर मैंने कठिनाई प्रकट की—"मलाका मे तो कुछ परिचय हो चला था। यहाँ तो अभी किसी को जानता नही। इस 'बडी' जेल मे कडाई भी 'बडी' है।"

जवाहरलालजी और नेहरू परिवार के लोग नैनी जेल मे काफी रह चुके थे। श्यामकुमारी का वहाँ काफी आना-जाना रहा था। उन्होंने सान्त्वना दी, "घबराओ नही, जितनी बडी जेल उतनी अधिक सहूलियत। कुछ दिन मे चाहोगे तो गुप्त चिट्ठी-पत्री भी भेज सकोगे।" उन्होंने एक विश्वासपात्र वार्डर का नाम बता कर कहा, "जवाहर भाई और रणजीत भाई विजयलक्ष्मी पडित के पति जब जरूरत होती थी उसी के हाथ हमारे यहाँ चिट्ठी भेज देते थे। तुम परवाह न करना उसे हम इनाम दे देंगे। जरूरत हो तो दस-पाच रुपये अपने पास रख लो।" जेल कानून से पैसा पास रखना बडा भारी जुर्म था। लेकिन सभी कैदी छिपाकर पैसा रखते ही थे। जेल अफसर भी

बहुत द्रवित स्वर में योग्य सेवा कर सकने की इच्छा प्रकट की। "सब ठीक है।" मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया। नहीं चाहता था कि पुलिस वाले उन्हें मुझ से आन्तरिकता से बात करते देखें और उनके पीछे पड़ जायें।

हाईकोर्ट के फैसले की तारीख लगभग महीने भर बाद पड़ी थी इसलिये वकीलों का आना-जाना जारी रहा। फैसले के दिन श्यामकुमारी हाईकोर्ट से सीधे जेल आयीं और मुझे बधाई दी कि हाईकोर्ट ने बिना लाइसेंस शस्त्र रखने की धारा में मुझे अपराधी तो माना है परन्तु हानि कोई नहीं हुई। इस धारा में सात वर्ष जेल की सजा दी गयी है और जैसी आशा थी क्योंकि दोनों कानून एक ही धारा से सम्बन्ध रखते थे— दोनों सजाएँ एक साथ चलेंगी। सजा वास्तव में सात वर्ष की हुई है। सब कुछ कर गुजर के केवल सात वर्ष की सजा! जान पड़ा यों ही छूट गया हूँ। अध्ययन करने के लिये सात वर्ष का समय सरकार ने दे दिया है।

श्यामकुमारी दूसरे दिन सध्या फिर आयीं। उस दिन उनका मुंह लटका हुआ था। बताया कि कल अंग्रेज जज ने दोनों सजाएँ साथ-साथ चलाने का फैसला तो सुना दिया था परन्तु फैसला टाइप न हो सकने के कारण उस पर हस्ताक्षर नहीं हुये थे। जान पड़ता है रात क्लब में दूसरे अंग्रेज अफसरों से बातचीत में उसका विचार बदल गया और सुबह फैसले पर दस्तखत करते समय उसने 'एक साथ' (Concurrent) शब्द काट कर 'क्रमश' (Consecutive) शब्द कर दिया। सजा चौदह वर्ष हो गयी, एक शब्द के हेर-फेर से। सजा चौदह वर्ष हो जाने पर ही वह चौदह वर्ष नहीं हो जाती बल्कि निश्चित नियमों के अनुसार वह उम्रकैद मान ली जाती है अर्थात चौदह वर्ष पूरे हो जाने पर भी अपराधी के छोड़े जाने के लिये सरकारी स्वीकृति की आवश्यकता होती है। अवसरवश जिस समय श्यामकुमारी नेहरू यह समाचार लेकर आईं मेरठ केस के अभियुक्त, इलाहाबाद हाईकोर्ट में पेशी के लिये नैनी सेन्ट्रल जेल में आये हुये थे। दफ्तर में इन लोगों से भी मुलाकात हो गयी। इन में लाहौर के लाला केदार नाथ सहगल भी थे, उन्होंने चौदह वर्ष की सजा सुन कर भी मुझे बधाई दी, "फांसी नहीं हुई यह ही क्या कम है!" मैंने भी सात और चौदह को कोई महत्व न देने की कोशिश की। अभी लाहौर और देहली के असली मुकद्दमे तो शेष ही थे। आशा थी इलाहाबाद में फैसला हो जाने पर उन मुकद्दमों का नम्बर आयेगा।

दिल्ली या लाहौर भेजे जाने की प्रतीक्षा में जो पुस्तक हाथ लग जाती पढ़ कर समय बिताया करता था। एक दिन दफ्तर से बुलावा आया। कैदी के लिये दफ्तर से बुलावा सदा ही खास बात होती है। साधारणत जब जेल में किये अपराध की सजा के लिये सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने पेश होना हो, जेल से तबादला हो या कोई मुलाकात के लिये आये तभी दफ्तर से बुलावा आता है। जाकर पता चला—मिलने

वाला कोई नही आया था। जेलर ने मुझे एक जमादार के साथ ऊपर की मजिल मे भेज दिया। देखा तो फिर वही पुराने डि० मु० पुलिस बनर्जी महाशय।

बनर्जी इस बार भी मेरे लिये कुछ बढ़िया आम लेकर आये थे। सोचा अब तो मुकदमे मे मजा भी हो गयी। अब ये मुझ से क्या आशा करते है पर अभी लाहौर और दिल्ली के मुकदमे तो बाकी थे। बनर्जी ने बताया कि उन्हे मेरी चिन्ता के कारण चैन नही आ सका। इलाहाबाद का मुकदमा तो हो गया पर दिल्ली और लाहौर के तो शेष है। अब भी यत्न करने पर बहुत कुछ किया जा सकता है। चौदह वर्ष जेल में काटना मामूली बात नही है। यश लेटी के भविष्य की बात सोचनी चाहिये। उन्होंने मुझे लाल रंग के कागज पर हिन्दी म छपा एक पर्चा दिखाया। बहुत छोटा सा पर्चा था जिसमे विदेशी सरकार के विरुद्ध बगावत आरम्भ कर देने की पुकार थी और नीचे छपा हुआ था, हस्ताक्षर प्रकाशवती—कमान्डर-इन-चीफ।

प्रकाशवती के नाम से बगावत की पुकार के लिये छपा पर्चा लाकर मुझे दिखाने मे बैनर्जी का अभिप्राय मुझे यह बताना था कि प्रकाशवती अपने आप को कितने भयंकर संकट मे डाल रही है। शायद मैं यह देखकर उन्हे बचाने के लिये व्याकुल हो उठूंगा। मैंने किसी भी प्रकार की उत्तेजना या चिन्ता न दिखाकर उत्तर दिया, "मैं अढ़ाई-तीन महीने से जेल मे हूँ। इस पर्चे के बारे मे आप मेरी क्या जिम्मेदारी या ध्येय समझ सकते हैं। मैं इस बारे मे कोई सूचना या राय नही दे सकता हूँ न इसके बारे मे सोचना चाहता हूँ।" मन ही मन मुझे यह सन्तोष हुआ कि हमारे उद्देश्यों के लिये प्रयत्न अब तक जारी है। यह भी शंका हुई कि बनर्जी मुझे आतंकित करने के लिये जाली पर्चा ही छपवा कर न ले आयें हो।

बाद मे प्रकाशवती से मैंने पुरानी बातो के सिलसिले मे इस पर्चे की बाबत पूछा तो उन्होंने बताया कि मेरी गिरफ्तारी के बाद राजेन्द्रसिंह आदि साथियो ने कमाण्डर-इन-चीफ के स्थान पर उनका नाम उपयोग करने की अनुमति माँगी थी और उन्होने स्वीकार कर लिया था।

बैनर्जी से निवेदन किया, "आप जानते है मैं जेल मे हूँ। बाहर क्या हो रहा है मुझे नही मालूम। चौदह वर्ष की जेल हुई है, उसे भुगतने के लिये तैयार हूँ। लाहौर और दिल्ली के मुकदमों मे जो हो उसके लिये भी तैयार हूँ। मैं आपकी कोई बात नही मान सकता और न सहायता चाहता हूँ। आपकी भावना के लिये धन्यवाद है।"

बैनर्जी ने और भी लम्बी बात की, "नौकरी का समय पूरा कर मेरे रिटायर हो जाने का समय आ गया है। चाहता हूँ, इससे पहले तुम्हारा कुछ भला कर जाऊं। तुम्हें क्या मुझ पर भरोसा नही है? तुम्हे यदि मुझ पर भरोसा नहीं है कि मैं अपनी

यात पूरी करूगा या सन्देह है कि बात से फिर जाऊगा या तुम किसी बडे अफसर से बात करके आश्वासन चाहते हो तो मैं इसका भी प्रबन्ध कर सकता हूँ। मि० पिल्डिच पर तो तुम्हे विश्वास है। देखा ही है, कितने सच्चे आदमी हैं। उनस बात करोगे ?"

कुछ मजाक सा सूझा। उत्तर दिया, "यदि वे चाहे तो मैं बात कर लूगा।"

बैनर्जी अपने सिर पर हाथ फेर कर बोले, "मेरे सफेद बालो का खयाल रखना। यह न हो कि उनके आने पर तुम उल्टी-पुल्टी बात करने लगो। वे इस समय नैनीताल मे है। उन्हे वहाँ से बुलाना होगा।"

"आप स्वय सोच लीजिये।" मैंने जिम्मेवारी टाली—"मैं कोई वायदा नही कर रहा हू। वे आयेंगे तो मैं बात करने से इन्कार नही करूगा लेकिन आप भविष्य में कष्ट न करे। अब मुझे सजा हो चुकी है। बाहर से आयी खाने की वस्तु लेना जेल कानून के विरुद्ध है इसलिये मैं आप के लाये आम स्वीकारने म भी असमर्थ हू।"

तीसरे ही दिन फिर दफ्तर से सुबह-सुबह बुलावा आया। मुझे सीधे सुपरिन्टेन्डेन्ट के कमरे मे पहुचा दिया गया। देखा मि० पिल्डिच और मि० मार्श, दो पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट बैठे थे। पिल्डिच ने मुस्कराकर हाथ मिला कर स्वागत किया और बोले —"मैं नैनीताल म था। मुझे परसो मि० बनर्जी का फोन मिला कि आप मुझ से बात करना चाहत है। मैं सीधा चला आ रहा हू।'

'मुझे अफसोस है, मेरे कारण आप को कष्ट हुआ।" मैंने उत्तर दिया।

"कोई कष्ट नही है। मैं तो बहुत प्रसन्न हू कि आप मुझ स बात करना चाहते हैं। हमारी पहली मुलाकात अजीब परिस्थितियो म हुई थी परन्तु तब भी मिलकर प्रसन्नता हुई थी। हाँ, तो क्या बात है ? अगर अकेले मे बात करना चाहो तो मार्श हट जायें।"

मैंने कहा, "नही, कैदी का अकेले किसी से बात करना जेल कानून के विरुद्ध है बल्कि हमारी बातचीत के समय नियमानुसार किसी जेल अफसर का रहना भी आवश्यक है।"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने का समाचार सुनकर मेजर ओबेराय अपने बगले से दौड़ते हुये आये होंग। हम लोगो को एक साथ देख कर ठिठके, "आप लोग बात कीजिये।" वे लौट रहे थे कि मैं बोला, "जेल के नियमो के अनुसार कैदी का किसी से भी जेल अफसरो की मौजूदगी मे ही मिलना चाहिये।"

"कोई बात नही, सब ठीक है।" कहकर ओबेराय चले जा रहे थ।

मैंने आग्रह किया, "पर मैं जेल का नियम तोडना नही चाहता।'

पिल्डिच और ओबेराय ने एक दूसरे की ओर देखा। पिल्डिच ने अनुमान प्रकट किया, "शायद मि० यशपाल चाहते है कि हम लोगो मे जो बातचीत या समझौता

हो उसका कोई भरोसे लायक गवाह रहे। मुझे इस बात में कोई एतराज नहीं है। मेजर ओबेराय, आप भी बैठिये। यह निश्चित है कि हम तीनों में जो बात होगी गुप्त रहेगी।"

ओबेराय कुछ अनिच्छा से बैठ गये। पिल्डिच ने मुझे सम्बोधन किया—"आपको क्या कहना है ?

मैंने कहा, "आपको इतनी दूर से आने का कष्ट हुआ। उसके लिये मुझे खेद है। मुझे यही कहना है कि मि० बनर्जी मुझसे मिलने न आया करें। सी० आई० डी० के अफसर मुझसे मिलने आते रहेंगे तो लोगों को मेरे सम्बन्ध में अच्छी धारणा नहीं होगी।"

"बस ?" पिल्डिच ने विस्मय से पूछा।

"जी हां, अपनी ओर से तो मुझे यही निवेदन करना है। शेष आप जो पूछें उस का उत्तर दूंगा। आप बताइये, मैं आप के लिये क्या कर सकता हूं ?"

पिल्डिच सोच कर बोले, "मैं तो यह अनुरोध करूंगा कि आप अपने बीते जीवन की घटनाओं की एक सच्ची और स्पष्ट कहानी लिख डालें। इसके लिये आप जो कहेंगे हम आप का अनुरोध पूरा करेंगे।"

"अपने जीवन की कहानी महापुरुष लिखा करते हैं।" मैंने उत्तर दिया, "मैं इस योग्य नहीं हूं। इससे किसी को लाभ भी नहीं होगा।"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।" पिल्डिच ने आग्रह किया, "आपने एक आंदोलन में महत्वपूर्ण भाग लिया है। आप के जीवन का और आपके संगठन का इतिहास भविष्य में बहुत से लोगों की जानें बरबाद होने से बचाने में सहायक हो सकता है।"

प्रसंग का तार तोड़ कर एक बात कह दूं। संस्मरण लिखने के लिये पिल्डिच के अनुरोध का मुझ पर यह प्रभाव पड़ा कि १९३८ में जेल से मुक्त हो जाने पर भी मैंने संस्मरण लिखने की जल्दी नहीं की। बहुत से साथियों ने 'आपबीतियां' और 'क्रान्तिकारी प्रयत्नों का इतिहास' लिखे पर मैं जानता था कि पूर्ण स्वराज्य से पूर्व अपने तत्कालीन सहायकों को संकट में डाले बिना सब सच्ची बातें लिखी नहीं जा सकती थीं। सच्ची बातें लिख देने से अपने पक्ष की अपेक्षा अंग्रेज सरकार का ही लाभ होने की सम्भावना समझता रहा। १९४७ के बाद ही मैंने संस्मरण लिखना निरापद समझा।

मैंने पिल्डिच को उत्तर दिया, "आप का अर्थ यह है कि मैंने जिन लोगों के साथ मिलकर काम किया था, उनकी जानें आप के हाथ में दे दूं।"

पिल्डिच ने आश्वासन दिया, "मैं इस बात का विश्वास दिलाता हूं कि जिन लोगों ने हत्या या डकैती में भाग नहीं लिया है उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जायगी।

उन्हें केवल ऐसा करने से रोका जायगा। जो लोग ऐसी घटनाओं में भाग ले चुके हैं, उनके साथ कानूनन जितनी रियायत उचित होगी, करने की कोशिश की जायगी। उद्देश्य प्रतिहिंसा नहीं है बल्कि इस प्रवृत्ति को समाप्त करना है।"

पिल्डिच बहुत स्पष्ट बात कह रहे थे इसलिये मैंने भी स्पष्ट बात करना ही उचित समझा। पूछा, "आप मुझे आपबीती और अपने साथियों का पूरा सच्चा हाल आप के लिये लिख डालने की सलाह दे रहे हैं लेकिन यदि कोई ब्रिटिश भद्र पुरुष, उदाहरणत आप ही मेरी स्थिति में होते तो आप यह सब लिख कर दे देते ?"

पिल्डिच के चेहरे पर सुर्खी आ गयी, "हरगिज नहीं। किसी भी हालत में नहीं।"

"तो मुझे भी ऐसा ही करने दीजिये।"

पिल्डिच चुप रह गया और क्षण भर बाद बोला, "अब मैं आपका और भी आदर करता हूँ। अस्तु, इस बात को जाने दीजिये। मोल-तोल की बात नहीं है। मैं कुछ पूछना नहीं चाहता। एक मित्र के तौर पर मैं आप की क्या सहायता कर सकता हूं ?"

"धन्यवाद, क्या सहायता हो सकती है। सब ठीक है।" उत्तर दिया।

"नहीं, जेल में चौदह वर्ष काटना मामूली बात नहीं है। जेल में ऊँची श्रेणी का प्रबन्ध हो सकता है। क्यों मेजर ओबेराय ?"

मैंने धन्यवाद, दकर कहा, " मैं बी० श्रेणी में हू। हिंसा के लिये अभियुक्त लोगो को 'ए' श्रेणी तो कानूनन मिल नही सकती।"

"नहीं, ऐसी क्या बात है। सरकारी हुक्म से सब कुछ हो सकता है।'

"धन्यवाद, उसे जाने दीजिये। मैं सतुष्ट हू। लिहाज के लिये कहते अच्छा नहीं लगता।"

'बहुत अच्छी बात। लेकिन मित्र के तौर पर सलाह द रहा हू कि जेल मे अकेले समय काटना बहुत दूभर हो जाता है। मैं पिछले युद्ध मे युद्धवन्दी रह चुका हू। मुझे अनुभव है। ऐसी अवस्था में विदेशी भाषा सीखने क प्रयत्न मे समय बहुत सुविधा से बीत जाता है। 'हा् गो' के प्रकाशनो मे सभी भाषाओ की स्वयं-शिक्षक पुस्तके मिलती हैं। आप भी यह काम कर सकते है।'

"एक सुविधा अवश्य चाहता हू।"मैने कहा।

'क्या ?"

'मुझे कलम कागज रखने दिया जाये। कागज गिन कर दे दिये जायें। मैं कुछ कहानियाँ या निवन्ध लिखता चाहता हू। यह चीजें बाहर भेजूं तो पुलिस उन्ह पढ कर देख ले। यदि उन्हे निरापद समझे तो वह चीजें मेर मित्रो या सम्वन्धियो को दे दी जायें। "

'मि० ओंत्रेराय, यह तो नाजायज माग नहीं है।" पिन्डिच ने कहा और ओत्रेराय भी हामी भर ली। बहुत सौजन्यता से हाथ मिला कर हम लोगों ने विदा ली।

जेल की लम्बी मियाद मे मैंने फ्रेंच और इटालियन भाषा का अभ्यास कर लिया था। इस सुझाव के लिये मैं मि० पिन्डिच का आभारी रहा हू।

मई का आरम्भ होगा। दफ्तर से बुलावा आया। सन्देश लाने वाले ने सामान साथ ले चलने के लिये कहा। इस का अर्थ था इस जेल से तबादला। मैं दिल्ली या लाहौर भेजे जाने की प्रतीक्षा मे था ही। जेल से तबादला बहुत असुविधाजनक होता है। सजा तीन वर्ष से अधिक की होने पर तबादले के नियमानुसार बेडिया भी जरूर पहनायी जाती है। एक जेल मे आदमी रम-बस जाता है कुछ परिचय हो जाता है। नयी जगह जाने पर अफसर अपना रोब कायम करने के लिये शुरू मे सख्ती भी जरूर दिखाते है। कहावत है, बिल्ली को पहली बार देखते ही मारना चाहिये ताकि वह फिर आने से डरे। जेल अधिकारी इस कहावत पर बहुत विश्वास करते हैं। परन्तु दूसरी ओर लगातार एक कोठरी या बारक मे रहने के बाद बाहर निकल कर कैदी वर्दी से भिन्न पोशाक मे स्त्री-पुरुषो, बच्चो और पशुओ को देखने का अवसर मिलता है, बाजार, रेल स्टेशन, मैदानो और जगलो की झलक भी आकर्षित करती है। जेल की भाषा मे इसे 'दुनिया देखना' कहा जाता है। कैदी इस के लिये भी लालायित रहते है। शायद काकतालीय न्याय से कोई परिचित स्थान या चेहरा भी दिखाई दे जाये। हथकड़ी-बेडी मे जकडे और सशस्त्र पुलिस की गारद से घिरे कैदी को सर्वसाधारण लोग चोर, डाकू, हत्यारा या महाभयकर आदमी समझ कर जिस दृष्टि से देखते है, वह भी अद्भुत अनुभव होता है। कोई घृणा से मुँह फेर लेते हैं और कोई बेमतलब घूसा-थप्पड दिखा कर क्रोध और घृणा प्रकट कर देते है। इलाहाबाद स्टेशन पर एक काली मेम साहिब ने ऐसा ही व्यवहार मुझे देख कर किया था। मै मुस्करा कर रह गया। जेल दफ्तर मे ही मालूम हो गया था कि मैं दिल्ली जा रहा हू।

दिल्ली जेल मैं पहुचते ही जिस अफसर डिप्टी जेलर से सब से पहले भेंट हुई, वे मुझे देख कर सकपका गये। यह थे मि० चावला। बात यह थी दिल्ली मे रहते समय प्रभुदत्त शर्मा के साथ एक जवान मि० चावला भी हवाई जहाज चलाने की शिक्षा लेता था इस जवान चावला के एक सम्बन्धी या बडे भाई जेल मे अफसर थे। चावला इनके साथ ही रहता था, प्रभुदत्त के साथ इस अफसर के यहाँ मैं दो-तीन बार आया-गया था। परिचय की इच्छा का प्रयोजन था कि कभी बातचीत मे इस अफसर से दिल्ली जेल मे बन्द अपने साथियो का कुछ समाचार मिल सकेगा। वह उस समय मुझे क्या पहचानते ? मैंने उन्हे पहचान कर भी दूसरो के सामने पुराना परिचय प्रकट नहीं किया। इसे उन्होंने मेरी भलमनसाहत ही समझा होगा। दिल्ली जेल मे

मुझे एक पान कोठरी में बन्द कर दिया गया। लेटने के लिये चटाई-कम्बल। भोजन, जल की दाल रोटी।

मैंने इस व्यवहार का विरोध किया, "मैं भी बनाम का राजनैतिक बंदी हूं।" पहला उत्तर यही मिला— हम बात इत्तला नहीं है।' चार दिन उपवास कर लेने के बाद उन्हें—जल अफसरों को इत्तला हो गयी और व्यवहार ठीक हो गया। उस के दो-तीन दिन बाद चौथे पहर मुझे अदालत में पहुंचाया गया।

दिल्ली केस के लिये खास अदालत पुराने केन्द्रीय सेक्रेटरियट में कायम की गयी थी। वहाँ मुझे अलग एक कमरे में बैठा दिया गया। दूसरे कमरे में अदालती कारवाई की आवाज़ आ रही थी। उत्सुक प्रतीक्षा थी कि अब अपने साथियों को देख पाऊंगा। खिड़की से दिखाई दे रहा था कि दिन ढलकर छायाएं लम्बी हो रही थीं। सोचा, क्या अदालत रात सात-आठ बजे तक चलेगी?

मुझे अदालत के सामने हाजिर किया गया तो अपना कोई साथी मौजूद नहीं था। जज थे, सरकारी वकील थे और मेरी सफाई के लिये दिल्ली के एडवोकेट मि० बनर्जी थे। सरकारी वकील ने कहा, अभियुक्त यशपाल अदालत में हाजिर है लेकिन अदालत में यह मामला बहुत दूर तक आगे बढ़ चुका है। मुकदमा नये सिरे से शुरू करने में व्यय की असुविधा और व्यय होगा। क्योंकि यशपाल को एक दूसरे अभियोग में चौदह वर्ष कठोर कारावास की सजा दी जा चुकी है इसलिये सरकार दिल्ली केस के अन्तर्गत अभियोग उस पर से खारिज कर देना चाहती है।

मेरे वकील मि० बैनर्जी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। मुकदमा समाप्त हो गया। अगले दिन मुझे इलाहाबाद लौटा दिया गया। दिल्ली में गाड़ी की प्रतीक्षा के लिये मुझे रेल स्टेशन की हवालात में बैठा दिया गया था। हवालात में देखा दिल्ली परिवार के बाबा श्रीकृष्ण को। हवालात में बन्द वह एक अनार के टुकड़े से दाने निकाल निकाल कर खा रहा था। देख कर भी मैंने परिचय और विस्मय प्रकट नहीं किया लेकिन वह मुझे पहचान कर कुछ द्रवित-सा हो गया था। उस ने हवालात के मुन्शी से एक मिनिट के लिये बाहर आने की इजाजत मांगी। मुन्शी मान भी गया। सूरी ने कुछ क्षण मुझे देखा और फिर भीतर बन्द हो गया। फरवरी के दिनों में उन के यहाँ मैं कई बार ठहरा था। बाबा का गला बहुत अच्छा था। उसे याद आ गया कि मैं बहादुरशाह की एक गज़ल बहुत दर्द भरे स्वर में गाने लगा, "लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में।"

लाहौर षड्यन्त्र का मुकदमा तो मुझे लाहौर अदालत में पेश किये बिना ही मुझ पर से खारिज कर दिया गया। कारण वही रहे होंगे जो दिल्ली अदालत में सरकारी वकील ने पेश किये थे।

नैनी जेल लौट कर फिर गोरा बारक की वही कोठरी। जेल का यह अजीब कानून है कि अभियुक्त के साथ सख्ती बरती जाती है और उस के अपराधी प्रमाणित हो जाने और सजा पा जाने पर उसे जेल की नियमित सीमाओ मे अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता और सुविधा मिल जाती है। यही मेरे साथ भी हुआ। मेरे जेल टिकट पर लिखा हुआ था—"Specially dangerous but not amounting to personal assault" इस का अभिप्राय हुआ कि 'मारपीट की आशका तो नही है परन्तु इस की गतिविधि पर विशेष सावधानी चाहिये।' इसलिये मेरे प्रति कुछ विशेष चौकसी बरती जाती थी। सभी क्रान्तिकारियो के टिकटो पर 'खतरनाक' लिखा रहता था। जेल मे मैं चौदह वर्ष नही रहा। १९३७ मे प्रान्तीय स्वायत्त शासन आरम्भ हो जाने के कारण २ मार्च १९३८ तक ही जेल मे रहा। जेल जीवन की कहानी में कोई विशेष वैचित्र्य न जान पड़ेगा क्योकि काग्रेस के आन्दोलन म लाखो से अधिक व्यक्ति जेल काट आये हैं। पर कुछ अनुभव दूसरो से भिन्न भी हुये हैं। मानव स्वभाव का अध्ययन करने वालो की जेल जीवन के प्रति रुचि हो सकती है।

गोरा बारक मे मुझे काफी दिन रहना पड़ा। यूरोपियन कैदियो को प्राय बी क्लास की सुविधाए दे दी जाती थी। कुछ सुविधाए बी क्लास से भी अधिक थी और कुछ कमिया भी थी। गोरे सिपाही कैदी या इस बारक मे रखे जाने वाले अपराधी कुछ विचित्र जीव थे। कानूनन जेल मे पैसा रखने की सख्त मनाही होने पर भी किसी भी सेन्ट्रल जेल मे हजार-दो-हजार रुपये से अधिक मौजूद रहते ही थे। सेन्ट्रल जेल की आबादी भी दो अढाई हजार होती थी। जेल मे अपने ढग से व्यापार भी खूब चलता था अब भी वैसा ही होगा।

उन दिनो जेल में बीड़ी-तम्बाकू की सख्त मुमानियत थी। परन्तु कैदी अफसरो की दृष्टि बचा कर इन चीजा का मनचाहा व्यवहार करते ही थे। छोटे-मोटे अफसरो की परवाह भी नही की जाती थी। सी क्लास के या सामान्य हिन्दुस्तानी कैदी तो जमादारो की मार्फत अपने घर के लोगो से पैसा मगवा लेते थे। इस तरह पैसा मगवाने का कमीशन निश्चित और बधा हुआ था, 'रुपये मे चार आना।' इस मामले मे प्राय बेईमानी नही होती थी। कानून से लडने वाले लोग प्राय आपसी व्यवहार मे अपनी नैतिकता का पालन दृढता से करते है। गोरे कैदी तो कही से पैसा मगा नही सकते थे। वे अपनी डबल रोटी, मक्खन की टिकिया, शकर या मास का राशन बेच कर बीडी खरीदते थे। दर बधा हुआ था, एक पूरी डबल रोटी, छटाक के लगभग मक्खन, शकर या साढे तीन छटाक मास, इन मे किसी भी चीज का मोल जेल मे एक बडल बीडी था। जेल का अनुभव न रखने वाले लोगो को इस भाव या दर से आश्चर्य होगा परन्तु आश्चर्य की बात कुछ न थी। डबल रोटी, मक्खन, मास आदि सरकारी

तौर पर दिये जाते थे और बीडी का बंडल जेल मे जोखिम और खतरा झेल कर लाया जाता था। उसका आयात कम और माग अधिक थी। सोना या जवाहरात जीवन के लिये आवश्यक नही है परन्तु हमारे समाज मे जीवन के लिये अनिवार्य तथा आवश्यक वस्तुओ से इनका मोल कही अधिक है क्योकि यह कम मात्रा मे और कठिनाई से पाये जाते है। जेल के बाजार मे क्रय-विक्रय का माध्यम या सिक्का बीडी का बण्डल ही चालू था। उसी से दूसरी चीजो की कीमत निश्चित होती थी। उन दिनो बाजार मे बीडी के वण्डल की कीमत तत्कालीन दो पैसे थी। गोरे अपने राशन मे से कोई न कोई चीज बेच कर बीडी का वण्डल ले लेते थे। गोरे कैदी साधारणत एक बण्डल बीडी तो पीते ही थे कोई अधिक भी।

जिन लोगो की आदतें बीडी, तम्बाकू से ऊंचे नशो अफीम, गांजा, चरस की थी उन्हे कुछ तकलीफ होती थी। इन चीजो के दाम अधिक थे। गोरो का ऐसा शौक पूरा करने के लिये अपने राशन की तीन चार चीजें बेच देनी पडती थी यानी डबल रोटी मक्खन, शक्कर सब कुछ। कुछ ऐसे भी थे जो अपना सभी कुछ बेच देते थे और बिना दूध शक्कर की काली चाय पीकर और जेल की साधारण दाल-रोटी माग कर निर्वाह कर लेते थे। मैं आत्मसम्मान के विचार से जेल मे बीडी या तम्बाकू का व्यवहार नही करता था। यही खयाल था कि इतनी सी बात के लिये जेल के अफसरो के सामने क्यो आखें नीची करनी पडें। खास आदत भी न थी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बन जाने पर जब हम लोगो के अपने खर्च पर तम्बाकू पी सकने की इजाजत मिल गई तो बात दूसरी थी।

गोरे सिपाही प्राय छोटी मोटी चोरियो के अपराध मे आते थे। सजा समाप्त होने पर उन्हे ब्रिटेन लौटा दिया जाता था। कुछ ऐसे ऐंग्लो इण्डियन थे जो कई बार जेल काट चुके थे। ग्राट भी ऐसा ही आदमी था। उसे चरस पीने की आदत थी। साधारणत गोरो का खयाल था कि मैं बहुत धनी आदमी हू इसीलिये मुझे बी क्लास की सुविधा दी गयी है और सुपरिन्टेन्डेन्ट मेरा लिहाज करता है। यह भी उन्हे मालूम था कि मै अग्रेज सरकार का दुश्मन हू। एक दिन ग्राट ने आकर मुझ से बात की। जेल मे पैसे के अभाव मे चरस न मिलने के कष्ट का जिक्र करते हुये उसने कहा—"यदि तुम मेरे लिये जेल मे अढाई वर्ष तक चरस-गाजा मिल सकने लायक रुपये का प्रबन्ध कर दो तो मैं ब्रिटिश साम्राज्य की जडें काट सकता हू। केवल पाच सौ रुपये का खर्च है।

ग्राट की बात से विस्मित होकर पूछा—"ऐसा कौन सा उपाय है कि अकेला आदमी किस साम्राज्य की जडें काट डाले ?"

ग्राट ने उत्तर दिया, "बहुत सरल उपाय है। बस पैसा चाहिये। वह भी केवल पाच सौ रुपया। मैंने यहा जेल मे आकर कई गोरे सैनिको को चरस पीना सिखा दिया है। चरस पीने वाला आदमी किसी काम का नही रह जाता। तुम मेरी ही अवस्था

दख लो !" ग्राट वास्तव मे ही हड्डियो का ढाचा मात्र रह गया था, बोला "मेरे पास पैसा हो तो पूरी ब्रिटिश फौज के सैनिको को गाजे की एकाध मुफ्त फूक पिला-पिला कर यह रोग फैला दू। जहाँ दो बार चरस का दम चढाया, उनको आदत पड जायेगी और सिपाहियो को चरस की आदत पडी नही कि वे लोग किसी काम के न रहेंगे। जब सेना ही नही रहेगी तो साम्राज्य क्या खाक रहेगा !'

इस बारक मे हमारे देश पर शासन करने वाली जाति के लोगो की सिधाई या मूर्खता के भी विचित्र उदाहरण मिलते थे। बारक मे हर मगलवार की सुबह एक मेजर के पद का पादरी छावनी से गोरों को धर्मोपदेश देने आता था। ब्रिटिश साम्राज्य को अपनी सेना का धर्म विश्वास बनाये रखने की बहुत चिंता थी। पादरी महादय गारो के मनोरजन के लिये लन्दन से आने वाले सप्ताह भर पुराने पत्र या कुछ सचित्र पत्रिकायें भी ले आते थे। सब लोग अपना-अपना स्टूल लेकर कोठरियो के बीच के चौडे गलियारे मे बैठ जाते थे। पादरी साहब बाइबिल मे से कुछ भजन गवाने और निष्कलक कुमारी के गर्भ से उत्पन्न भगवान के बेटे मे अटूट विश्वास रखने का उपदेश दे जाते। ऐसे उपदेश का प्रभाव दो-तीन घटे रहता था। पादरी साहब को मेरी आत्मा के प्रति भी करुणा अनुभव हुई। उन्होंने मुझे भी बाइबिल पढने और धर्मोपदेश में साथ बैठने का सुझाव दिया। मैं भी सगत मे बैठने लगा।

एक मगलवार दूसरे लोग तो नयी आयी पत्रिकाओं के चित्र देखने मे व्यस्त थे। सिपाही डन मेरे पास बैठा ईश्वर की असीम शक्ति और दया के सम्बन्ध मे धार्मिक बातचीत कर रहा था। यो ही कही पढा हुआ एक मजाक उससे कर बैठा। पूछा, "क्या ईश्वर सर्वशक्तिमान है ?"

डन ने हामी भरी, "अवश्य"।"

"अच्छा बताओ, क्या ईश्वर इतना बडा पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वय न उठा सके ?" मैंने प्रश्न किया।

डन ने आखे फाड कर मेरी ओर देखा, "क्यों नही बना सकता !"

प्रश्न को दोहराकर मैंने व्याख्या की, 'यदि ईश्वर ऐसा पत्थर बना सकता है तो उसमें उस पत्थर को उठाने की शक्ति नही होगी और यदि इतना बडा पत्थर बना नही सकता तो इतना बडा पत्थर बनाने की शक्ति न होगी। तुम कहते हो, ईश्वर सर्वशक्तिमान है।

डन को इस तर्क से परेशान होते देख कर मैंने आगे बात की, "प्रकृति के नियम किस ने बनाये हैं !"

डन ने बताया, "ईश्वर ने।"

मैंने पूछा, "तो ईश्वर प्रकृति के नियम को क्यो तोडेगा ? यदि वही तोडेगा तो

कुमारी के गर्भ से ईसा का जन्म कैसे हो गया ?"

इन ने बहुत सोच कर बताया कि स्त्री-पुरुषों के सामान्य यौन सम्बन्ध से भगवान के पुत्र का जन्म इसलिये नहीं हुआ कि वह अपवित्र व्यवहार है। मैंने जिज्ञासा की, "प्रकृति में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध किसने बनाया है ?"

उसका उत्तर था, "ईश्वर ने।"

मैंने पूछा, "ईश्वर क्या पापी है जो अपवित्र वस्तु बनायेगा ?"

इन सप्ताह भर उस समस्या में उलझा रहा। मंगलवार के दिन पादरी के आने पर उसने यह प्रश्न पादरी से पूछ डाले। पादरी ने उसे शांति से सुनने का उपदेश देकर पूछा—"तुम्हारा विश्वास है कि ईश्वर है और उसने संसार को बनाया है और वह सर्वशक्तिमान है ?"

इन के हामी भरने पर पादरी ने कहा, "सर्वशक्तिमान ईश्वर चमत्कार कर सकता है। उसी चमत्कार से उसने निष्कलंक कुमारी के गर्भ से अपने पुत्र को जन्म दिया। व्यर्थ का तर्क नहीं करना चाहिये। उससे पाप होता है।"

इन का समाधान हो गया। पादरी ने इन से पूछा, "आखिर यह तर्क तुम्हारे दिमाग में आया कहाँ से?" इन ने मेरा नाम बता दिया।

पादरी ने मुझ से एकान्त में बात की, "ये सिपाही अनपढ़ हैं। इनसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहियें। विश्वास ही तो एक चीज है जो इनकी आत्मा को शान्ति दे सकती है। उसे तोड़ना नहीं चाहिये।"

गोरा बारक के समीप ही छोटी सी जगह दीवार से घेर कर पाकिस्तान के वर्तमान (१६५३) यातायात मंत्री डाक्टर खां साहब को रखा गया था। उन दिनों खां साहब नजरबन्द थे। उन्हें उस समय के दस-बारह रुपये रोज सरकार से व्यय के लिये मिलते थे। आज-कल (१६५३) के हिसाब से पचास-साठ रुपये समझिये। उनसे कभी-कभी चोरी छिपे बात हो जाती थी। उनके यहाँ प्रचुर मात्रा में बेहिसाब फल इत्यादि आते रहते थे और वे गोरों को भी बाटते रहते थे इसलिये गोरे हमारे मिलने-जुलने की शिकायत नहीं करते थे। वैसे कोई जाकर चुगली खाता हो तो जेल वालों ने परवाह न की। खां साहब मेरे लिये भी सब कुछ भेजने के लिये तैयार थे पर मैं विनयपूर्वक इन्कार ही कर देता। हां, पुस्तकों की बात दूसरी थी। एक बहुत अच्छी पुस्तक (Historical Materialism by Bukharin) उन्हें पंडित जवाहरलाल नेहरू दे गये थे। वह खां साहब ने मुझे दे दी थी।

हैड जेलर मि० टैनी समझदार, अनुभवी आदमी थे। ऐसी शिकायतें टाल जाते, बात कर लेंगे तो क्या है, जेल की दीवारें तो नहीं गिरा देंगे। टैनी साहब प्रौढ़ गृहस्थ थे। परिवार बड़ा था। जवानी के उबाल के दिनों में दो परिवार बना बैठे थे। अब

निबाह रहे थे। सुना था, कुछ भैंसे भी रखी हुई थी जिन का दूध वेचते थे। भैंसे कैंदियो के राशन के गल्ले और जेल के पशुओ के भूसे पर पलती थी। इसलिये वे कैंदियो को व्यर्थ चिढाना नही चाहते थे। कभी कोई जमादार या छोटा अफसर कैंदियो की तलाशी लेकर कैंदियो का रुपया पैसा निकालकर सजा के लिये पेश कर देता तो छोटे अफसर को समझा देते, "क्या फायदा झगडे से ? रखने दो साले को। जब्त पैसा सरकार के पास चला जायगा। कैंदी के पास रहेगा तो तुम्हे भी देगा।" उन से कैंदी बहुत प्रसन्न थे। वे छोटी-मोटी रिश्वत लेकर भी काम कर देते थे। कैंदी इन्हे आत्मीयता और आदर से 'टैंनी बाबा' सम्बोधन करते थे। टैंनी रिश्वत के लिये तग भी नही करते थ। जिस की जैसी सामर्थ्य हो वैसी ही भेंट स्वीकार कर लेते थे। कुछ लोग तो उन के जूते मे चवन्नी डाल कर ही हाथ जोड देते थे।

गोरा बारक मे छ महीने गुजार चुका था मन मे दबी आपसी घृणा को कब तक दबा कर रखा जा सकता था। चाहता था अफसरों से कोई शिकायत या माग न करू। आखिर कहनी ही पडी कि मैं असभ्य गोरे सिपाहियों के साथ नही रहना चाहता। मुझे गोरा बारक से हटा कर दूसरे वी क्लास के कैंदियो के साथ तो नही रखा गया, अलग एकान्त मे रखा दिया गया।

नैंनी जेल मे एक ओर दो कमरे, बराण्डे, गुसलखानो सहित बने हुये है। यह जगह खूब ऊची गोल दीवार से घिरी हुई थी। नाम तो इस जगह का जाने क्यो 'कुत्ताघर' था पर जगह अच्छी थी। पडित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद आदि को यही रखा गया था। वे उन दिनो इस जेल मे नही थे। शायद देहरादून भेज दिये गये थे। उसी जगह मुझे बन्द कर दिया गया। अन्तर यह था कि पडित नेहरू 'ए' श्रेणी के कैंदी थे। वे वहाँ रहते समय सुबह-शाम व्यायाम के लिये जेल की चार दिवारी के साथ घूमने जा सकते थे या दौड लगा सकते थे। मुझे ऐसी इजाजत नही थी। बिल्कुल अकेला पड जाने से मैं दिन भर पढा करता था। यहाँ ही मैंने 'स्वय शिक्षक' की सहायता से फ्रेंच का अभ्यास शुरू किया था। खाली समय मे कहानिया भी लिखता रहता। प्राय साल भर ऐसे ही गुजरा।

मेरे टिकट पर मुझे मोजे बुनने का श्रम या काम दिया गया था। परन्तु टैंनी साहब ने न तो कभी मोजा बुनने की सलाइयाँ और न सूत या ऊन ही मेरे यहाँ भिजवाया। इसलिये मेरे जेल का श्रम पूरा करने का प्रश्न उठा ही नही। दिन भर पढना-लिखना ही समय बिताने का उपाय था। पहले अंग्रेजी मे लिखने का अभ्यास शुरू किया। कई कापिया भर डाली। फिर सोचा, मेरी अपनी भाषा है, मैं उस मे ही क्यो न लिखू। यदि मैं कोई काम की बात—साहित्यिक दृष्टि से ही सही, लिख सकू तो मेरा कर्तव्य उससे अंग्रेजी साहित्य को समृद्ध करना है या अपनी भाषा हिन्दी को। यह

युक्ति ऐसी चुभी थी कि केवल हिन्दी में ही लिखने का प्रण कर लिया। अपनी लिखी चीजों को कठिन परीक्षक या आलोचक की दृष्टि से देखता और फिर लिखता। समय प्रचुर था।

नैनी जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट का तबादला हो गया। मेजर ओ'नेराय के स्थान पर मेजर हाजी सलामतउल्ला आ गये। ओ'नेराय तो कुछ नम्र प्रकृति के थे। न अनुशासन के कर्तव्य निबाहने पर बड़ी निगरानी रखते थे और न बंदियों के प्रति सख्ती ही। हाजी साहब की कड़ाई की बहुत प्रसिद्धि थी। लेकिन मुझे उनकी कड़ाई प्राय: अनुशासन के प्रति ही अधिक अनुभव हुई। वे कुछ न कुछ करते रहना चाहते थे। उन्होंने स्वयं पूछा 'तुम्हें यहाँ अकेला रहना अच्छा लगता है?'' मैंने उत्तर दिया, ''मजबूरी है। रखा गया हूँ। नहीं मालूम किस आज्ञा से या किस प्रयोजन से मुझे इतने दिन से अकेले रखा जा रहा है।'' मेजर हाजी ने मुझे गोरा बारक की बगल में की बारक में रहने के लिये भेज दिया।

की बलाम की बारक में चार बंदियों में दो राजनैतिक थे। एक काकोरी डकैती षड्यन्त्र के गोविन्दचरण कार और दूसरे बरेली गोलीकांड के ठाकुर टीकमसिंह। हम लोगों की अच्छी निभने लगी। कार दादा ने बंगला पढ़ने के प्रति मेरा उत्साह देखा तो शौक से पढ़ाने लगे। महीने दो महीने में बंगला सुविधा से पढ़ने लगा। उन्हें मुझे बंगला सिखा देने का इतना उत्साह था कि जब मुझे फतेहगढ़ सेण्ट्रल भेजा गया तो उन्होंने रवि बाबू की अनेक पुस्तकें और वसुमति पत्रिका की फाइलों की बहुत-सी जिल्दें भेंट में दे दीं कि मेरा बंगला का अभ्यास छूट न जाये।

ठाकुर टीकमसिंह जैसे शरीर से विशाल थे वैसे ही स्वभाव और व्यवहार में भी। १९३२ में वे लगभग ग्यारह वर्ष जेल में काट चुके थे। उनका मामला भी ब्रिटिश नौकरशाही के न्याय का एक अच्छा उदाहरण था। उन्हें बरेली में राजनैतिक कारण से जिला मजिस्ट्रेट पर गोली चलाने के अपराध में बारह वर्ष कठोर कारावास की सजा मिली थी। राजनैतिक बंदियों और दूसरे बंदियों में प्राय: एक अन्तर रहता है। कैदी के अपराध की बात पूछने पर दूसरे कैदी अक्सर स्वयं को निर्दोष बताते हैं। यही सुनने को मिलता है कि उन के दुश्मनों और पुलिस ने उन के विरुद्ध अदालत में झूठी गवाही खड़ी करके उन्हें सजा दिला दी। साधारण बंदियों को मिथ्या आशा बनी रहती है कि ऐसा कहते रहने से शायद किसी माध्यम से उन के मामले पर असर पड़ जाय और उन की सजा में कमी हो जाये या वे जेल से छूट जायें। काफी आन्तरिकता हो जाने पर सच्ची बात भी निकल आती थी। फिर भी अपना अपराध स्पष्टता से स्वीकार कर लेने वाले कैदी प्रतिशत कम ही मिलेंगे। राजनैतिक कैदी इस से ठीक उलटा अपनी करनी को गर्व से बखानते थे इस में अतिशयोक्ति की भी सम्भावना रहती थी। प्रयोजन

दूसरो का साहस बढाना या अपना महत्व बढाकर सतोष पाना दोनों ही हो सकते थे।

टीकमसिह का कहना था कि उन्होने मैजिस्ट्रेट पर गोली नही चलायी थी, न उनका उस मामले से सम्बन्ध था। उन के विचार जरूर राजनैतिक थे। पुलिस यह पता नही लगा सकी कि अपराधी कौन था। अपनी ऐसी अयोग्यता पुलिस कैसे स्वीकार कर लेती! टीकमसिह बरेली के हाईस्कूल में पढते थे। शरीर अच्छा था और निर्भीक, इसलिये उन्हे ही फसा दिया गया। मैजिस्ट्रेट को गोली मारने का साहस करने वाले युवक का सशक्त शरीर और साहसी समझा जाना तो आवश्यक था। टीकमसिह झूठ नही बोलते थे। साफ कहते थे सजा तो काट ही चुका हूँ। अब छिपाने मे क्या फायदा परन्तु यह काम मैंने दरअसल नही किया। अग्रेज सरकार ने जब बी क्लास का नियम बनाया तो टीकमसिह को यह सुविधा देने के लिये भी तैयार न थी। इसके लिये उन्हे साठ दिन का अनशन व्रत करना पडा। उनके मेदे में नाक की राह रबड की नली से दूध पहुँचाया कर उन्हे जिन्दा रखा गया था। वे बी क्लास ले कर ही रहे। शरीर उनका अब भी सहीम-शहीम था परन्तु साठ दिन के उपवास से सेहत बरबाद हो चुकी थी। कोई आध्यात्मिक शक्ति पा लेने का भी सतोष उन्हे न था।

आदर पाने की इच्छा मनुष्य स्वभाव का अग है। मनुष्य के जैसे विचार और आदर्श होते है, उसी के अनुसार आदर की भी उसकी कल्पना होती है। जेलो मे आदर की भी विचित्र धारणाए अनुभव मे आती है। जेल मे अपने आप का गरीब घर-बार का बताने वाला तो शायद ही कोई मिलेगा। अपने घर की समृद्धि की डीग हाक कर आदर पाने के प्रयत्न का ऐसा चलन रहता है कि जेल मे कहावत बन गयी थी कि 'गाव घर मे तो सभी की छत पर बावन बीघे पोदीना रहता है।' डाके के अपराध मे सजा पाये लोगों से पूछिये कि जब इतनी समृद्धि थी तो डाका डालने क्यो गये थे? उत्तर मिलेगा—'कोई पैसे के लिये थाडे ही गये थे, सोहबत से शौक लग गया।'

जेल मे कुछ करके आदर और सम्मान पाना तो सहल नही होता। अमीर घर का समझे जाकर आदर पाने की लालसा बहुत स्वाभाविक हो सकती है। अमीर बन जाने की भी जरूरत नही, केवल दम्भ-मात्र होना चाहिये। कभी राजनैतिक कैदी भी ऐसी धारणा का शिकार बन जाते थे। अपने एक बगाली क्रातिकारी साथी थे। मीठे का लोभ सवरण न कर सकने के कारण उन्होने तिकडम से कुछ गुड मगवाने का यत्न किया। जेल से बाहर काम पर जाने वाला कैदी छिपा कर गुड ला रहा था तो पकडा गया। उस ने बक भी दिया कि गुड अमुक व्यक्ति के लिये ले जा रहा था। हमारे साथी को इस घटना से अपने अपमान की आशका हुई। अपमान अधिक इसलिये कि उन्होने 'गुड' मगवाया था 'चीनी' नही। उन्होने तिकडम की। अधिक पैसा खर्च करके

समाज के न्याय क रक्षक अपनी शक्ति स अपराधिया म वदला नेत हैं और अपराधी उस विकट परिस्थिति म भी अपनी लत्त धत्त पूरी करते रहने या उन पर जकडे न्य नियमो का उलघन कर सकने क गव म रहते हैं।

न्याय की रक्षक शासक शक्ति का विश्वास है कि जेल के दण्ड का भय लागा को अपराध से रोकता है। अनक प्रकार क अपराधियो से वात करके भी एसा काई प्रमाण नही पाया कि दण्ड का भय अपराध को रोकता हो। राजनैतिक कैदी या ऐसे अपराधी जो अपनी आन की रक्षा क लिये आवश म कुछ कर गुजरते है वे परिणाम या दण्ड की बात साचते ही नही। सोचते ह ना दण्ड भुगतने क लिये भी तैयार रहत है। ऐसे लोगो को अपराधी वृत्ति का या असामाजिक समझा भी न जाना चाहिए। अपराधी वृत्ति क लागा को भी दण्ड का भय अपराध से नही रोकता। अपराध करने समय उन्ह पूरा विश्वास रहता है कि वे पकडे नही जायग। वास्तव म चार या पाच प्रतिशत से अधिक अपराधी पकडे भी नही जाते। अपराध पकडे लिया जान पर वे इस अपनी बदकिस्मती समझ लेत ह। जल काटते समय वे अपराध न करन का निश्चय नही करते बल्कि भविष्य म अपराध को अधिक चातुय से करन का ही निश्चय करते है। सहधर्मियो स अनुभवो का आदान प्रदान करके व *अपना आत्म विश्वास अनुभव और चातुय भी* बढाते रहते हैं।

भिन्न भिन्न जेलो म अनेक सम्प्रदायो के अनेक कैदिया स बात करने पर क्रान्तिकारियो क अतिरिक्त किसी का भी नास्तिक नही पाया। सभी लागो का अपने-अपने ढग म आस्तिक और ईश्वर की दया और न्याय म विश्वास रखन वाला ही पाया परन्तु यह विश्वास उन्ह असामाजिक कामो से न रोक सका था क्योकि वे अपराध का व्यक्ति और शासन के बीच की बात और ईश्वर भक्ति को अपनी निजी और भगवान क बीच की बात समझते थे। उन्ह पूरा विश्वास था कि शासन और समाज उन क प्रति अन्यायी है परन्तु भगवान सदय हागा। काग्रेसी रामराज्य म जलो की गाधीवादी आध्यात्मिकता का प्रभाव इस दिशा म क्या पडा है यह नही कह सकता। १६४६ म जब एक मास के लिय लखनऊ जेल म रहने का अवसर हुआ था तो उस समय जल अधिकारियो न ब्रिटिश राज की भक्ति के स्थान पर काग्रेसी राज क भक्ति प्रकट करन के सिवा जल म और कोई परिवतन दिखाई नही दिया था।

क्रान्तिकारी कैदियो को प्राय ही एक जेल म दो अढाई वष स अधिक नहा रहन दिया जाता था। सरकार को आशका रहती थी हमलोग अपन प्रभाव स चार बना कर भाग जान की तिकडम कर सकते थे। एसी आशका क लिय कुछ आधार भी जरूर था। जिन लोगो को उम्र कैद की सजा दी जाय और जो लोग सरकार स हार मान जाने के लिय तैयार न हो उन का ऐसा प्रयत्न करना अस्वाभाविक भी नहीं। हमार

साथी स्वर्गीय शचीन्द्रनाथ सान्याल ऐसी कोई न कोई योजना चलाते ही रहते थे। एक बार तो उन्होंने लोहे के जंगले काटने के लिये आरी वगैरा भी मंगवा ली थी पर यह चीजें पकड़ ली गयी। तब से उन पर और ज्यादा कड़ाई रखी जाने लगी थी। सान्याल दादा का मस्तिष्क निश्चल नहीं रह सकता था। एक ओर वे अध्यात्म दर्शन का अध्ययन करते दूसरी ओर जेल से भाग जाने की योजनाएं बनाते रहते तीसरी ओर सरकार में मुक्ति के लिये दया की प्रार्थना (मर्सी पेटीशन) भी करते रहते थे। साफ बात यह है कि जेल से भागने की चेष्टा करने में मुझे नैतिक आपत्ति तो कोई नहीं थी पर मैं ऐसा कोई काम न करना चाहता था जिस की सफलता का मुझे पूरा विश्वास न हो। असफल हो जाने पर मेरी खिल्ली उड़े। कुछ समय दिन बाद क्रान्तिकारियों का तबादला दूसरी जेल में कर देने के नियम के कारण मुझे नैनी जेल से फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया।

फतेहगढ़ जेल में उस समय सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर ओबेराय ही फिर मिले परन्तु हैड जेलर थे, सरकार भक्ति के लिये बहुत बदनाम सरदार गंडासिंह। अंग्रेज सरकार ने उन्हें राजभक्ति या राजनैतिक कैदियों के साथ सख्ती का व्यवहार करने के उपलक्ष में 'सरदार बहादुर' और 'आफिसर आफ ब्रिटिश एम्पायर' का खिताब दे दिया था। कुछ दिन बाद ओबेराय की जगह मेजर रामनारायण भंडारी सुपरिन्टेन्डेन्ट बन कर आ गये। भंडारी की सरकार भक्ति की कीर्ति गंडासिंह से भी कुछ ज्यादा ही थी। जेल में बात-बात पर कड़ी सजा देने में उन का बहुत नाम था। उन के जेल में कदम रखते ही जेल भर में ऐसे सन्नाटा छा जाता था मानो सब को सांप सूंघ गया हो। मेजर भंडारी और दूसरे भी कई सुपरिन्टेन्डेन्टों के रोब और तानाशाही की कई दंत-कथायें जेलों में प्रसिद्ध थीं। उदाहरणतः जेल के किसी पशु के सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने सिर हिला देने या रंभा देने पर पशु को बेंतों की या तनहाई कैद की सजा दे देना। भंडारी के लिये मशहूर था कि एक बार उन के सड़क पर जाते समय हवा से पीपल के पेड़ के पत्ते खड़-खड़ा गये। साहब ने पीपल को बारह बेंत लगा दिये जाने का आर्डर लिख दिया था।

ब्रिटिश अमलदारी में जितना रोब वायसराय का होता था, जेलों में सुपरिन्टेन्डेन्ट का रोब उस से कुछ अधिक ही था। अंग्रेज सरकार ने जेलों में सुपरिन्टेन्डेन्ट की सुरक्षा और सम्मान के कुछ ऐसे कायदे बना दिये थे कि सुपरिन्टेन्डेन्ट में रोब अनुभव करने-दिखाने का लोभ बढ़ता जाता था। इन कायदों में कांग्रेसी राज में कुछ कमी आ गयी है या नहीं, कह नहीं सकता। सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब जब भी जेल के मुआइने के लिये जेल में आते उन से पांच-छः कदम आगे-आगे जेल के दो सिपाही शरीर रक्षक के तौर पर चलते थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट के किसी हाते में प्रवेश करने से पहले पुकार से 'रपट बढ़' जाती थी—साहब आ रहे हैं। रपट होते ही सब कैदी सिमिट कर एक लाइन में बैठा दिये जाते

थे। बंदियों को लाइन में, विशेष मुद्रा में, घुटने जोड़ कर एड़ियों पर बैठना होता था और उन के दोनों हाथ सामने फैले खुले रहते थे ताकि विश्वास रहे कि बंदी के हाथ में हमले योग्य कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं है। किसी साहब के सामने पेश किया जाता था तो उसे दो सिपाहियों के बीच खड़ा होना पड़ता था। यूरोपियन बंदियों को या बी क्लास के बंदियों को साहब के सामने उस तरह नहीं बैठना पड़ता था परन्तु बिलकुल सीधे, निश्चल, दोनों हाथों में अपना रजिस्टर (टिकट) थाम कर खड़ा होना पड़ता था। क्रान्तिकारी या कुछ अन्य पढ़े-लिखे बंदी इसे अपना अपमान समझ कर यह कायदा न मानते थे। इस प्रश्न पर कई बार इस पर झगड़े हुए। आखिर जेल अधिकारी गश या जाने सुपरिन्टेन्डेन्ट की बगल में हेड जेलर रहता था। अगल-बगल और तीन चार सिपाही। पीछे असिस्टेंट जेलर, जेल का डाक्टर, दारोगा बाबू वगैरह। धूप या वर्षा होने पर एक बंदी जमादार सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब के सिर पर राजछत्र के आकार में बड़ा छत्र उठाये रहता था। जेल अधिकारियों की अपना रोब कायम रखने की इच्छा के कारण अधिकारियों और क्रान्तिकारियों में सदा ही तनातनी चलती रहती।

फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में मुझ से पहले दो क्रान्तिकारी बंदी मौजूद थे। मन्मथनाथ गुप्त और दूसरे मणीन्द्रनाथ बैनर्जी। मन्मथनाथ काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्त थे और मणीन्द्रनाथ सी० आई० डी० के डिपुटी सुपरिन्टेन्डेन्ट बैनर्जी (इनके पर्याप्त अनुभव ऊपर कह आया हूं) को गोली मारने के अभियुक्त थे। मणि रिश्ते में डिपुटी सुपरिन्टेन्डेन्ट बैनर्जी के भान्जे थे। यहां भी बदनाम क्रान्तिकारी बंदियों की बारक और हाता अलग बना था और उस में यह दो बंदी बंद थे। सरदार भगतसिंह के प्रबन्ध से हाते के दरवाजे पर लोहे की चादर जड़ी हुई थी। भीतर से बाहर और बाहर से भीतर कुछ देख पाने या कोई समाचार आने जाने की सम्भावना न रहने दी थी। मन्मथ और मणि मेरे आने से पहले ही आत्म-सम्मान के प्रश्न पर जेल अधिकारियों से काफी लम्बी लड़ चुके थे और लम्बी भूख हड़ताल के बाद समझौता हुआ था। प्रश्न थे जेल के नियम के अनुसार रस्सी बटने से इनकार करना और जेल नियम के अनुसार बी क्लास के बंदियों को मिलने वाली सुविधाएं उन्हें न दी जाना।

मैं नैनी सेन्ट्रल जेल से फतेहगढ़ मई-जून में आरम्भ में पहुंचा था। देखा, फतेहगढ़ में नैनी जेल की तरह बारक में रात के समय पंखों का प्रबन्ध नहीं था, न पलंग दिये गये थे। इस सम्बन्ध में शिकायत करने पर और नैनी की यूरोपियन बारक और बी क्लास बारक का उदाहरण देने पर उत्तर मिला, जेल मैनुअल (जेल विधान पुस्तक) में ऐसा कोई कायदा नहीं है। जेल में जेल मैनुअल ही 'वेद' समझा जाता था। मजे की बात यह थी कि जेल मैनुअल बंदियों को नहीं दिखाया जाता था, जैसे 'वेद' तक दास और शूद्र की पहुंच नहीं होती। वह शासक वर्ग के अधिकारों की रक्षा की सावधानी थी।

हम लोगों के ज़िद्द करने पर ही जेल मैनुअल हमें दिखाया गया।

जेल अधिकारियों का आग्रह था—जो जेल मैनुअल में नहीं लिखा वह हो नहीं सकता और जो लिखा है वह टल नहीं सकता। जेल मैनुअल तो इस ढंग से बना था कि उस का अक्षरशः पालन हो ही नहीं सकता था। यदि कोई अफसर उस का पूरा पालन करने का यत्न करता तो अपनी जान ही जोखिम में डालता। यही बात आज भी होगी। उदाहरणतः उन दिनों जेल मैनुअल के अनुसार कैदियों को गाने-बजाने का, एक साथ मिल कर हँसी-ठट्ठा करने का अथवा जेल की रसोई से मिली दाल-रोटी के अतिरिक्त कोई चीज राँध लेने का या रुपया-पैसा पास रखने का कड़ा निषेध था। परन्तु त्योहारों के अवसर पर कड़ाई से यह नियम लागू करने का साहस और क्षमता किसी अफसर में न थी। दिवाली की रात हर सेन्ट्रल जेल में हजारों रुपये का जुआ हो जाता था। नाच-गाना भी होता था। होली के अवसर पर तो नाच गाने का ऐसा भयंकर समारोह होता कि हम दो-दो सौ गज पर की बारकों से पाँव के धमाके और घुंघरुओं की झनकार सुन पाते। टैनी बाबा ऐसे जेलर होते तो उचित दक्षिणा देने पर एक-दो रात के लिये हारमोनियम तबला भी जेल में आ सकता था वर्ना तसले और घड़े की गमक से तो वातावरण गूंजा ही करता। फाग, लावनी, बिरहे और गजलों की उन्मुक्त तानें भी उठती रहतीं। जेल भर में कड़वे तेल के पूड़ी-पकवान बनते और बँटते। छोटे-मोटे अफसर इस समारोह का आनन्द उठाते थे। जेलर और सुपरिन्टेन्डेन्ट अनजान बनकर अनुपस्थिति से अपना रोब बनाये रहते।

नैनी जेल की कुत्ताघर बारक में यद्यपि मैं बिलकुल अकेला था और सुविधाएं अधिक थीं परन्तु समय का सद्-उपयोग फतहगढ़ जेल में ही अधिक हुआ। कारण यह कि मन्मथ और मणीन्द्र खूब आत्मानुशासन से चल रहे थे। जेल में आते समय दोनों की ही आयु बहुत कम थी। अभी विद्यार्थी ही थे। मणी की सजा तो केवल सात ही वर्ष की थी परन्तु मन्मथ को आजन्म कारावास का दण्ड था। दोनों ही दिन का अधिकांश भाग स्वाध्याय में लगाते थे। मन्मथ ने उस समय भी फ्रेंच का खूब अभ्यास कर लिया था। रशियन पढ़ रहे थे। हिन्दू-उर्दू की भी जो पुस्तकें मिल जातीं, चाट जाते। समय पर सोना, जागना और व्यायाम भी। उस समय मन्मथ को जेल से छूट जाने की कोई आशा नहीं थी, थी भी तो बीस वर्ष पूरे करके। इसलिये आत्मानुशासन के लिये बहुत दृढ़ निष्ठा की आवश्यकता थी।

जिस समय मैंने फतेहगढ़ जेल की बारक में कदम रखा, मन्मथ और मणी ने एक क्रान्तिकारी बंदी के नाते हाथ मिलाकर और अंग्रेजी में बोलकर मेरा स्वागत किया परन्तु मेरे सिर पर यूरोपियन बारक की वर्दी का हैट, वैसा ही सामान और कमांड वगैरा देख कर आपस में बंगला में छींटा कसा, 'ये बेटा तो साहब है।'' उन्हें मेरा

बगला समझ लेने की कोई आशंका न थी। मैं भी बात पी गया परन्तु ऐसे स्वागत का प्रभाव मन पर अच्छा न हुआ। बहुत अधिक आत्मीयता या बेतकल्लुफी हम लोगों में कभी नहीं हो सकी। जैसा गोविन्दचरण कार और टीकमसिंह में हो गयी थी। कुछ खिचाव-सा बना रहता, ऐसा कि आपसी व्यवहार में शिकायत का मौका न आने देने की सतर्कता बनी रहती। वे लोग आपस में गपबाजी करते तो बंगला में और मुझसे बातचीत अंग्रेजी में। मन्मथ हिन्दी क्या ठेठ बनारसी हिन्दी भी खूब अच्छी बोल लेते थे परन्तु मेरे पंजाबी होने या साहब होने के कारण अधिकांश में अंग्रेजी का ही व्यवहार करते। परिणाम यह हुआ, अधिक समय पढ़ाई-लिखाई में जाता। मन्मथ से फ्रेंच की कई पुस्तकें मिल गयीं। फ्रेंच का अच्छा अभ्यास हो गया। हम दोनों ने इटालियन पढ़ना शुरू कर दिया।

'पिंजरे की उड़ान' की अधिकांश कहानियां मैंने फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में ही लिखी थी। एक उपन्यास भी शुरू किया था जो न कभी पूरा हुआ न प्रकाशित हुआ। हममें कुछ आपसी खिचाव रहने पर भी जेल अधिकारियों के साथ व्यवहार में कभी भेद नहीं आया। राजनैतिक कैदियों के जेल जीवन में सबसे बड़ा संकट तभी आता था जब उन की जीवन शक्ति कोई निकास न पाकर आपसी मतभेदों से टकराने लगती थी। जेल के अधिकारी सदा ही ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे। राजनैतिक कैदियों के एक साथ रहने पर जेल अधिकारियों से उन का कोई न कोई संघर्ष चलते रहना ही अच्छा रहता था। फतेहगढ़ जेल में वैसा समय भी आया। मन्मनाथ गुप्त, मणीन्द्र बैनर्जी और मुझे तो कुछ उचित सुविधाएं न मिलने की शिकायत थी ही तिस पर हमें समाचार मिला कि जेल के दूसरे हाते में बन्द क्रान्तिकारी कैदी रमेशचन्द्र गुप्त ने अनशन कर दिया है।

रमेशचन्द्र गुप्त कानपुर का विद्यार्थी था। कानपुर में यह बात फैल जाने के कारण कि वीरभद्र ने आजाद के साथ विश्वासघात किया है वीरभद्र का शहर में रह सकना ही कठिन हो गया था। वह कानपुर छोड़कर उरई चला गया था। रमेश को विश्वास था कि वीरभद्र ने आजाद के साथ विश्वासघात किया है। उस ने रामलीला के अवसर पर उरई जाकर वीरभद्र पर गोली चला दी। वीरभद्र तो बच गया परन्तु रमेश गिरफ्तार हो गया। रमेश को सात वर्ष कठोर कारावास की सजा मिली थी। बहुत बार तकाजा करने पर भी उसे बी क्लास में न रखा गया था। तंग आकर उसने मांग पूरी कराने के लिये अनशन कर दिया था। यह मालूम होने पर कि एक क्रान्तिकारी कैदी उचित मांग के लिये अनशन कर रहा है, हम लोगों का भी कर्तव्य हो गया कि उस की सहानुभूति में अनशन करके उसे नैतिक सहायता दें। रमेश को सन्देश भेज दिया कि तुम डटे रहना, हम लोग भी अनशन कर रहे हैं। हम लोगों ने जेल

अधिकारियो को सूचना दे दी कि हम अपने साथ उचित व्यवहार न होने और रमेशचन्द्र गुप्त के साथ अन्याय के विरोध म अनशन कर रहे है। अनशन आरम्भ कर दिया।

क्रान्तिकारी लोग अनशन को आध्यात्मिक प्रभाव डालने का या भगवान की सहायता पाने का साधन नही समझते थे। अनशन का अर्थ था अपनी मागो के प्रति सार्वजनिक भावना की सहायता उत्पन्न करना और अपनी प्रतिद्वन्द्वी सरकार के प्रति जनता मे घृणा और विरोध पैदा करना। हमारे अनशन का प्रभाव जनता तक समाचार पहुचने स ही हो सकता था। फतेहगढ जेल मे ऐसा अवसर प्राय कम ही था। ऐसी अवस्था मे हमारा अभिप्राय सरकार पर यह व्यक्त करना था कि तुम जो चाहो कर लो, हम दबेंगे नहीं। जैसे-तैस सूचना बाहर चली ही गयी। जेल अधिकारियो के लिय यह ही बडी बात थी कि रमेश के अनशन की सूचना हमे मिल कैसे गयी। पहरे बदल दिये गये। पहरे मे भी अधिक कडाई हो गयी। जलो के अनेक अफसर नौकरी के लिये अनुशासन का बाना बनाये रख कर भी राष्ट्रीय भावना से सकट बचा कर क्रान्तिकारियो की सहायता करते रहते थे।

हमारा यह अनशन, जहाँ तक याद है, अठारह या उन्नीस दिन ही चला। क्रातिकारी लोग अनशन के समय गाधीवादियो की तरह पानी मे नीबू का रस या सोडाबाइकार्ब आदि डाल कर नही पीते थे। गाधी जी की तरह बादाम रोगन की मालिश नही कराते थे। क्रान्तिकारियो के जेल जीवन मे अठारह उन्नीस दिन के अनशन का कोई बहुत महत्व नही था। मन्मथ और मणी पहले भी लगभग एक एक मास का अनशन और मन्मथ उस से पहले किसी दूसरे जेल म साठ दिन का अनशन कर चुके थे। जोगेश चैटर्जी ने तो आगरा जेल म डेढ सौ दिन का अनशन किया था। अनशन के इक्कीस या चौबीस दिन गुजर जाने के बाद बलात् दूध देना (फोर्स फीडिंग) आरम्भ कर दिया जाता था ताकि बंदी के मर जाने से जनता मे अशान्ति न फैले। बलात् दूध देने का ढग बहुत पीडाजनक था। अनशनकारी की नाक से रबड की नली द्वारा पेट मे दूध पहुचा दिया जाता था। नाक की राह रबड की नली पेट मे पहुचाने की प्रक्रिया मे बहुत कष्ट होता था।

इस लम्बे अनशन या निराहार रहने से आत्मा के निर्मल या सबल हो जाने का कोई आभास न मुझे और न कभी हमारे किसी दूसरे साथी को हुआ। अनशन मे पहले तीन दिन बहुत कष्ट होता है फिर उस अवस्था का अभ्यास होने लगता है। निराहार अधिक दिन गुजर जाने पर उठने-बैठने या हाथ-पाव हिलाने मे भी कष्ट अनुभव होने लगता है। ध्यान केवल आता है आहार का। कल्पना मे तरह-तरह के भोजनो की गध और स्वाद अनुभव होने लगते हैं। अनशन के अनुभवों के बारे मे बहुत से साथियो ने बात की है। हम लोग तो तीनो ही निरीश्वरवादी थे परन्तु टीकमसिंह पूर्णत आस्तिक थे।

उन्हे भी साठ दिन के अनशन मे कभी कोई आध्यात्मिक प्रेरणा या सात्वना अनुभव न हुई थी। वे बचपन से और जेल मे भी निरामिषभोजी थे परन्तु बताते थे कि जाने क्यों अनशन के समय और वस्तुओ की अपेक्षा उनका मन उबले हुये अडे के लिये बहुत करता था। इस इच्छा को वे रोके ही रहे।

मन्मथ अपने पूर्व अनुभव के आधार पर बताते रहते कि मेजर भडारी अनशन करने वाले क्रातिकारियो को पीडा पहुचाने के लिये अपना चिकित्सा ज्ञान का भी पूरा उपयोग करता था। यह ठीक है कि अनशन के समय बलात् दूध पिलाने (फोर्स फीडिंग) से बहुत पीडा होती थी। क्रातिकारी बलात् दूध पिलाने का विरोध भी करते थे परन्तु विरोध करने पर भी जब फेंटे हुये अडे और सतरे का रस मिला हुआ दूध पेट में चला जाता था तो शरीर और मस्तिष्क को शाति अनुभव होती थी। यह प्राकृतिक या स्वाभाविक था कि अनशन करने वाले का शरीर बलात् भोजन दिया जाने की प्रतीक्षा करने लगे। भडारी अनशनकारी के सामने आज्ञा दे देता कि बलात् दूध पिलाने की तैयारी की जाये। अनशन करने वाले के समीप एक मेज पर दूध और रबड की नलिया रख दी जाती थी। अनशनकारी का अन्तरात्मा पीडा और विरोध के बावजूद दूध पेट मे पहुच जाने की सान्त्वना की कल्पना करने लगता। भडारी अपने अमले के साथ पुन आता। अनशनकारी की नब्ज देख कर उपेक्षा से कह देता, "अभी क्या जरूरत है फोर्स फीडिंग की। अभी तो इसके शरीर मे बहुत शक्ति है।" बलात् दूध देने का सामान हटा दिया जाता। उस समय अनशनकारी तात्कालिक पीडा से बच कर भी कितना निराश होता होगा। जीवित रहने की इच्छा और आशा का, जो कि जीवमात्र का स्वभाव है, कुण्ठित हो जाना कितना पीडाजनक होता होगा?

अठारहवे या उन्नीसवें दिन समाचार मिला कि कानपुर से रमेश के सम्बन्धी श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को लेकर आये थे। रमेश को बी क्लास दिये जाने का आश्वासन दे दिया गया है और उसने अनशन तोड दिया है। हमारे अनशन का मुख्य आधार समाप्त हो गया था इसलिये हमने भी अनशन समाप्त कर दिया परन्तु यह भी कह दिया कि हमारी असुविधाए दूर न की गयी तो हम फिर अनशन कर देंगे। अनशन के बाद हमारी सब मागें पूरी हो गयी परन्तु यह अनशन बहुत महगा पडा।

जेल में पहले किये हुये अनशनो के कारण मणी बैनर्जी का स्वास्थ्य यो भी बहुत निर्बल था। उसे हृदय रोग हो गया था। इस अनशन से उस की अवस्था और बिगड गयी। भडारी ने मणी को उचित इलाज के लिये हमारी बारक से हटा कर अस्पताल के समीप बने कमरो में भिजवा दिया। तीन-चार दिन बाद ही हम सूचना दी गयी कि बैनर्जी की अवस्था चिन्ताजनक है। हम चाहे तो उससे मिलने जा सकते है। भडारी के उस समय के व्यवहार की तुलना मे देखते यह असाधारण सौजन्य था।

हम लोग अस्पताल गये। मणी की अवस्था बहुत खराब थी। वह श्वास न आ सकने के कष्ट के कारण छटपटा रहा था। उसकी पीडा देख कर हम दोनो दहल गये। मणी के हाथ-पाव बहुत सूज गये थे। आखो पर सफेद झिल्ली-सी छा गयी थी। वह न लेट पाता था, न बैठ सकता था। उसकी जीवन शक्ति बनाये रखने के लिये उस आक्सीजन गैस दी जा रही थी। आक्सीजन देने वाला अस्पताल का डाक्टर इतना ज्ञानी था कि उसे यह भी मालूम न था कि सिलेंडर की चाबी किस ओर घुमाने से गैस बाहर आयेगी या सिलेण्डर से गैस आ रही है या नही, इतना भी जान सकें। मैंने उसे अपने परिमित ज्ञान से बताया कि नली के सामने दियासलाई जला कर देखो। गैस आने पर लौ बहुत बढ जानी चाहिये। मणी का गैस दिये जाने का प्रभाव अच्छा ही दिखाई दिया।

मणी को कुछ क्षण के लिये श्वास ठीक से आने लगता तो वह ठीक ढग और बहुत समझदारी से बात करने लगता था। इस सम्बन्ध मे मैं इस पुस्तक के दूसरे भाग म क्रान्तिकारियो की विचारधारा के प्रसग मे भी लिख चुका हू। पुनरावृत्ति न करने के लिये यहा सक्षेप में ही लिखूगा। यह स्पष्ट ही जान पड रहा था कि मणी कुछ ही मिनिट का मेहमान है। उसका कष्ट मृत्यु की सम्भावना से भी अधिक भयानक जान पड रहा था। मणी की अवस्था से मन्मथ बहुत ही व्याकुल हो गया। मणी को सान्त्वना दे सकने के लिये या उसकी पीडा कम कर सकने के लिये, सम्भव-असम्भव सभी कुछ करने की इच्छा से, मन्मथ ने मणी के समीप बैठ कर हाथ जोड कर प्रार्थना के ढग से कहा—"मैं तार्किक प्रवृत्ति के कारण नास्तिक हू। मुझे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं है। परन्तु आस्तिकों का विश्वास है कि अंतिम समय भगवान से साक्षात्कार होता है। आस्तिक भगवान को अत्यन्त दयालु और चमत्कारिक शक्ति-सम्पन्न मानते हैं। सम्भव है मेरा तर्क गलत रहा हो इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि यदि सचमुच भगवान का कोई अस्तित्व है तो वे इस समय तुम्हारा दुख दूर कर दें। यदि तुम्हारा दुख दूर हो जाय तो मैं भगवान पर विश्वास कर लेने के लिये तैयार हू।"

मन्मथ के यह प्रार्थना करते समय मणि श्वास के लिये अत्यन्त कष्टपूर्ण सघर्ष कर रहा था। उसके बाद उसकी श्वास की नली कुछ क्षण के लिये ठीक हो गयी। मणी खिन्नता से बोला—"डैम यौर गौड ऐंड डैम हिज मर्सी (भाड मे जाय तुम्हारा भगवान और भाड मे जाये उसकी दया)। लोग कहते हैं कि अन्तिम समय भगवान दिखाई देता है। मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा। मेरे अन्तिम श्वासों के समय मेरा मस्तिष्क धुधला न करो। मुझे कायर और कातर बनाने की चेष्टा न करो।" इतनी बात कह कर मणी का श्वास कष्ट चरम सीमा पर पहुच गया। उसे एक जबरदस्त हिचकी आयी। उस की श्वास की नाली सदा के लिये अटक गयी या हृदय उस

दबाव को सहार न सका। पीड़ा से ऐंठा हुआ उसका शरीर शिथिल और सीधा हो गया। मणी के इन शब्दों को परलोक के द्वार पर या भगवान के सम्मुख खड़े व्यक्ति के अन्तिम शब्द कहा जा सकता है। वह मृत्यु के सामने भी अपने विचार और विश्वास पर अटिग था।

मणी की मृत्यु यद्यपि अस्पताल के पलग पर हुई परन्तु उसका भाव या व्यवहार अपने विचारों और आदर्शों के लिये रणक्षेत्र में जूझ जाने से अधिक साहस और दृढ़ता का था। सैद्धान्तिक दृष्टि से मणी का व्यवहार हि०स०प्र०स० या तात्कालिक क्रान्तिकारियों के अध्यात्म सम्बन्धी विचारों का प्रतीक माना जा सकता है।

मणी की मृत्यु से हम लोग कुछ समय के लिये अवसन्न से रह गये थे। परन्तु सप्ताह भर के भीतर ही अनशन की लड़ाई में हमारी विजय के फलस्वरूप रमेशचन्द्र गुप्त को बी क्लास देकर हम लोगों के साथ रहने के लिये भेज दिया गया रमेश की आयु कम थी। वह मैट्रिक पास कर सकने से पहले ही जेल में पहुंच गया था। उस अरहड़ नौजवान का पिस्तौल लेकर वीरभद्र पर आक्रमण करना देशभक्ति की भावना से, देशद्रोह के काम का विरोध करने का प्रतीक था। मन्मथ और मेरे कहने से रमेश ने पढ़ने-लिखने में मन लगाना शुरू कर दिया। कुछ ही दिन बाद बी क्लास के एक कांग्रेसी सत्याग्रही कैदी, कानपुर के शिवराम पाडे को भी हमारे साथ ही रहने के लिये भेज दिया गया। पाडे जी बहुत ही विनोदी और सरल स्वभाव हैं, इलाहाबाद या आगरा यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट। वे आजकल (१६५२ के चुनाव में) उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य हैं। पाडे जी अपना अधिकांश समय सत्याग्रही बन्दियों की भांति सरसों की तेल से मालिश, कसरत और गीता पाठ में लगाते थे। उनकी सगति से हमारा कुछ समय हा-हा, हो-हो में भी बीतने लगा।

शिवराम जी पाडे को क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति और आदर था। यह सुनकर कि मैं भगतसिंह का सहपाठी और सहयोगी रहा हूं, उनका कौतूहल और बढ़ा। वे अपनी कई जिज्ञासाओं और शंकाओं का समाधान करने लगे। इसी प्रसंग में उन्होंने पूछा, "सुना है कि जब भगतसिंह जी और चन्द्रशेखर आजाद जी (वे आदर के लिये सदा जी शब्द का प्रयोग करते थे) विलायत से जहाज पर आ रहे थे, एक गोरे ने भारतमाता की शान में कुछ अपशब्द कह दिये। भगतसिंह जी ने गोरे को पिल्ले की तरह कान से पकड़ कर उठा लिया और समुद्र में फेंक दिया। क्या यह बात सच है ?" मुझे हंसी आ गयी। पाडे जी को बताया कि आजाद और भगतसिंह कभी विलायत नहीं गये थे। यह बात सच नहीं हो सकती। पाडे जी की इच्छा थी कि मुझ से समर्थन पाकर इस कहानी को अपने व्याख्यानों में सुनाकर देशभक्ति की भावना

को प्रोत्साहन देते। इनकार सुनकर उन्होंने कुछ निराशा और सन्देह से मेरी ओर देखा, मानो, यह बात तो सच ही होनी चाहिये, मैं भगतसिंह के महत्व से ईर्ष्या करके इस घटना से इन्कार कर रहा हूं। बाद मे भी अपने दल के नेताओ के बारे मे तथ्य की बातें कहने या अत्युक्ति से इनकार करने, उन्हे अपौरुषेय स्वीकार न करके मैने बहुत लोगों को निराश किया है परन्तु संस्मरणो मे तो जो देखा है वही लिखना होगा, यह उपन्यास या कल्पना की सामर्थ्य आजमाने का अवसर नही है।

अपनी गिरफ्तारी के बाद मुझे पहले लाहौर में दुर्गा भाभी और फिर दिल्ली मे सुशीला दीदी की गिरफ्तारी का समाचार पत्रों से मिल चुका था। हम लोगो के अनशन से कुछ ही पहले जून १६३४ में प्रकाशवती की गिरफ्तारी दिल्ली मे हो जाने का भी समाचार मिल गया था। यह चिन्ता जरूर थी कि अब उनका क्या होगा! इससे पहले वे अपनी फरारी के समय मेरे भाई के पत्रो मे या मुझे पत्र लिखने वाले दूसरे लोगों के पत्रो मे घुमा फिराकर अपनी बात लिख भेजती थी। मैं भी जो कुछ कहना होता घुमा फिराकर उपमा और व्यजना से लिख भेजता था। महीने में एक ही बार पत्र लिख सकने का नियम था इसलिये पत्र कभी-कभी दो-तीन ताव के आकार का भी हो जाता, कभी इससे भी बडा। हमारे लिये पत्र और हमारे नाम आये पत्र सब गुप्तचर विभाग के हाथो से गुजरते थे। गुप्तचर विभाग को भी सन्देह था कि हम लोग लक्षणा और व्यजना से कुछ गुप्त बातें करते है जिन्हे वे समझ नही पाते। उन्हे यह भी आशका थी कि हम जेल से ऐसा सन्देश न भेज दें जिससे कोई उथल-पुथल मच जाये या ऐसा सन्देश पत्र द्वारा न पा लें जिससे हम जेल तोडकर भाग जायें। गुप्तचर विभाग हमारे पत्र मे जिन पंक्तियों को समझ नही पाता था उन्हे तेल की स्याही फेर कर काला कर देता था। कभी ऐसा भी होता था कि पूरे पृष्ठ में कुछ ही शब्द शेष रह जाते थे।

इस समय तक जेल म दो-अढाई वर्ष बीत चुके थे। स्थिरता आ गयी थी। हमे स्टेट्समैन या हिन्दी का भारत आदि सरकार का समर्थन करने वाले पत्र दे दिये जाते थे। इन पत्रों मे से भी, जहां तक जेल अधिकारियो की चौकसी काम देती, क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाले समाचारो को काट लिया जाता या उन पर स्याही पोत कर अपाठ्य कर दिया जाता था। फिर भी यह मालूम हो गया था कि मेरठ, कानपुर देहरादून आदि मे कुछ हो ही रहा था। पुलिस एक देहरादून-कानपुर षडयंत्र केस चलाने की व्यवस्था कर रही थी। विश्वास था कि जितना हम जान पाते हैं उस से अधिक ही हो रहा होगा।

जेल मे प्राय पढने लिखने रहने और चुप सोचते रहने के समय यह भी खयाल आता कि जेल मे रह कर और जेल मे अभी बारह वर्ष और बिताने के बाद जेल से

रिहा होकर मैं क्या कर सकूगा, किस योग्य रहूगा। उस समय आयु चालीस से ऊपर होगी। चालीस से अधिक आयु मे जीवन आरम्भ करना होगा। शारीरिक रूप मे निष्क्रिय रहने के कारण स्वास्थ्य कुछ ठीक नही चल रहा था। जेल से रिहाई के चित्र की कल्पना जीवन के सध्या काल के पट पर ही हो सकती थी। केवल एक ही सम्भावना थी कि मैंने जीवन के लिये जो लक्ष्य स्वीकार किया है, उसके प्रति दूसरो को आकर्षित और उत्साहित करता रहू, राष्ट्रीय मुक्ति के सघर्ष की परम्परा कायम रहे। मेरा साधन केवल कलम ही हो सकेगा। यह समय उस साधन के लिए साधना करने का है। अपने भविष्य जीवन की कल्पना मैं उस अवस्था मे एक अकेले परिवारहीन व्यक्ति के रूप मे करता था।

दूर तक कल्पना कर लेने का स्वभाव होने के कारण अपनी प्रौढावस्था के जीवन की कल्पना बहुत ब्यौरे से कर ली थी। कोई पारिवारिक सम्पत्ति या जीविका का साधन न होने के कारण कल्पना थी कि किसी राष्ट्रीय पत्र मे वेतन पर काम करूगा। चालीस पार करके जब काम आरम्भ करूगा तो उन्नति करके प्रधान सम्पादक बनने का दिन क्या आयेगा। साठ-सत्तर रुपये का उप-सम्पादक ही हो सकूगा। पुस्तकें लिखकर निर्वाह करने की बात नही सोची थी। अपने जीवन का मार्ग बदल कर विश्राम करने की बात मन मे न आयी थी। उस कल्पना का कुछ अश ठीक ही हुआ। १६३८ मे रिहाई के बाद जीविका के लिये पहले 'कर्मयोगी' साप्ताहिक मे पचहत्तर रुपये मासिक पर नौकरी की थी। यदि सचालक महोदय निबाहने देते तो शायद निबाहता ही रहता परन्तु प्रकाशवती जी ने भी वैराग्य की उस कल्पना को निबाहने नही दिया।

फतेहगढ जेल मे अनशन के कुछ ही दिन बाद, जब अभी शरीर मे बहुत निर्बलता थी, एक दिन मेरे लिये दफ्तर से बुलावा आया। मेजर भडारी ने मुझे अपने कमरे मे बुलाकर कहा कि मुझसे मिलने के लिये कुछ व्यक्ति आये है। उनसे मिलने की आज्ञा इसी शर्त पर दी जा सकती है कि मैं अनशन के बारे मे कोई बात न करू। शर्त बहुत अपमानजनक लगी परन्तु सोचा, शायद मा किसी तरह अनशन का समाचार पाकर आयी है। सात-सौ मील का यह सफर उन्होने किस गरीबी और कठिनाई मे किया होगा, मुझसे भेंट न हो सकने से उन्हे कितनी निराशा होगी! अनशन तो समाप्त होकर उसका परिणाम भी सामने आ चुका था। उस विषय मे बात करने या न करने से क्या होता। अनशन के सम्बन्ध मे बात न करना स्वीकार कर लिया।

मिलने आने वालो के भीतर आने पर देखा कि मा नही, प्रकाशवती थी। बात हम लोग विशेष कुछ कर नही सके क्योंकि, मेजर भडारी की सावधानी के कारण पुलिस के एक आदमी को बुलाकर हम लोगो के बीच मे ऐसा बैठा दिया गया था कि हमारी

कही बातें उनके कानो पर से गुजर कर ही एक दूसरे तक जा सकती थी। अनशन के बाद अभी मैं बहुत निर्बल था। यह न बता सकने के कारण कि मेरी शारीरिक दुर्दशा का कारण अनशन था, प्रकाशवती ने समझा कि जेल मे मेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जा रहा था और जेल मे मेरा स्वास्थ्य वैसा ही रहता था। मुझसे मिलने के बाद उन्होंने यू० पी० सरकार के तत्कालीन होम मेम्बर सर महाराजसिंह से जाकर शिकायत की और केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यो तक खबर दी। समाचार-पत्रो मे भी मेरे स्वास्थ्य के बारे मे खूब चर्चा चल पडी। अनशन के बाद मुझे ज्वर भी रहने लग गया था।

जेल मे प्रकाशवती से मुलाकात होने के बाद उनकी समस्या के बारे मे और भी अधिक ध्यान आने लगा। उनकी कई समस्याए थी। उनका परिवार रूढिवादी था। वे क्रान्तिकारी काम मे सहयोग देने के लिये घर छोड कर आ गयी थी। परिवार के लोग उन्हे पुन अपना लेने के लिये कैसे तैयार होते ? प्राचीन धारणाओ के अनुसार प्रकाश जी के व्यवहार से उनके परिवार पर कलक लग गया था। हमारा क्रान्तिकारी दल प्राय बिखर गया था। राजनैतिक परिस्थितियाँ उस समय भी काफी तेजी से बदल चुकी थी। वे क्या करेंगी ? एक बडी समस्या मेरा जल मे होना भी था। मैं उम्र भर के लिये जेल मे था, कम से कम अभी और बारह वर्ष के लिये तो था ही। प्रकाशवती की समस्या का एक समाधान यह हो सकता था कि वे सामाजिक ढग से किसी भले आदमी से विवाह करके समाज मे अपना स्थान बनाकर साधारण जीवन आरम्भ कर दें और अपना जो कर्तव्य समझें उसके लिये भी सामर्थ्य भर यत्न करें।

प्रकाश जी के लिये मेरे इस विचार के मार्ग मे उनका मुझे अपना पति समझना रुकावट थी। उस समय मैं उनके लिये केवल एक भावना और स्मृतिमात्र ही तो था। मुझे जान पडता था कि मेरी याद या मेरे प्रति अनुराग की भावना उनके जीवन के स्वाभाविक और साधारणत उचित मार्ग में रुकावट बन रही है। मुझे यह बहुत बडा अन्याय जान पडता था कि मेरे प्रति एक भावुकतामात्र के लिये उनके या किसी के भी जीवन का स्वाभाविक क्रम निछावर हो जाय। मुझे यह न्याय और नैतिक कर्तव्य जान पडा कि मैं अपनी ओर से उन्हें ऐसे बधन से मुक्त कर दू। फरारी के जीवन मे हम दोनो ने एक दूसरे को पति-पत्नी के रूप मे स्वीकार किया था परन्तु उस सम्बन्ध पर सामाजिक घोषणा और स्वीकृति की मोहर तो नही थी। हम दोनो का उसे माने रहना या उसे भुला देना ही तो एकमात्र बन्धन था। मेरी स्मृतिमात्र ही उनके जीवन की बाधा क्यों बने ?

उपरोक्त विचार मन मे आते थे परन्तु पुलिस के अफसरो की मौजूदगी मे मुलाकात

के समय या पुलिस के हाथों से गुजर कर जाने वाले पत्रों में इस सम्बन्ध में कैसे लिखा जा सकता था। इस विषय में कुछ न कहना अपने अधिकार को व्यर्थ में जमाये रखने का अन्याय जान पड़ता था। आखिर पत्र द्वारा संकेत दिया, "जीवन को व्यावहारिक और वास्तविक दृष्टिकोण से ही देखना चाहिये। व्यक्ति का मूल्य उससे समाज या दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले सतोष और उपयोग में ही होता है। जिस व्यक्ति की उपस्थिति या स्मृति केवल अभाव या निरन्तर दुख का कारण बने, उससे मुक्ति पा लेना ही अपने प्रति न्याय है। जो दात सदा पीड़ा ही दे उसे निकलवा कर उसकी जगह दूसरा दात लगवा लेना ही न्याय और कर्तव्य है आदि आदि।" अभी कम से कम बारह वर्ष की जेल सामने थी। बारह वर्ष बाद जेल से छूटकर जैसा जीवन सम्भव जान पड़ता था उसका संकेत पूर्व प्रसग में दे चुका हू।

शिवराम जी पाडे सत्याग्रह आन्दोलन में शेष कांग्रेसियों की तरह छह या नौ मास के लिये जेल आये थे। कुछ सजा दूसरी जगह काट कर आये थे। जल्दी ही छट कर चले गये। मन्मथ गुप्त और रमेश भी बदली आगरा सेन्ट्रल जेल में हो गयी। बी क्लास के एक नैतिक कैदी, यू० पी० के किसी छोटे-मोटे जमींदार अकबर मुहम्मद खा को मेरे साथ रहने के लिये भेज दिया गया। मुहम्मद खां डकैती या कत्ल के अपराध में उम्र भर की सजा पाये था। उस पर उतनी कड़ी निगरानी भी नहीं थी। वह हाते में कुछ ऐसी हरकतें करता था कि हम क्रान्तिकारियों ने बी क्लास का जो दबदबा कायम किया हुआ था, उस पर आंच आती थी। समझाने पर वह मूछों पर ताव देने लगता, 'हम क्या तुम्हारे बम-पिस्तौल से डरते हैं!' क्रान्तिकारियों के लिये नैतिक कैदियों के साथ (खास तौर पर बी क्लास के नैतिक कैदियों के साथ) रहना सदा ही सकट का कारण होता था। वे लोग क्रान्तिकारी बन्दियों की झूठी-सच्ची चुगली खाकर या उनसे झगड़ा करके अपनी राजभक्ति प्रमाणित करके कुछ दया और लिहाज पा सकने की आशा में रहते थे। सी क्लास के गरीब कैदियों में भी कुछ लोग ऐसे जरूर थे परन्तु ऐसे भी थे जो राजनैतिक कैदियों को आदरणीय मानकर उनके लिये जोखिम उठाने को भी तैयार हो जाते थे।

परिस्थितिया कुछ ऐसी हो गयी कि मन खिन्न रहने लगा। स्वास्थ्य कुछ खराब था, और भी खराब हो गया। प्रकाशवती ने बाहर इस विषय में हलचल मचा ही रखी थी। मुझे फतेहगढ़ जेल से सुल्तानपुर के सैनिटोरियम जेल भेज देने का हुक्म हो गया। सुल्तानपुर सैनिटोरियम जेल में केवल तपेदिक के मरीज ही भेजे जाते थे। अनुमान किया कि डाक्टर और सुपरिन्टेडेंट मुझे बताना उचित नहीं समझते परन्तु उन्होंने सरकार को सूचना दी होगी कि मुझे तपेदिक हो गया है तभी मुझे सुल्तानपुर

भेजा जा रहा है। किसी दिन जेल से छूट जाने की कल्पना भी व्यर्थ ही है इसलिये प्रकाशवती को एक और पत्र लिखा। उसमें व्यंजना से समझाने का यत्न किया कि तुम्हें मुझसे कोई आशा नही करनी चाहिये। यह भी कि मैं पिछले सम्बन्धो और जिम्मेवारियो को भूल गया हू। यदि जेल से कभी छूट भी गया तो अपने लिये जीवन का कोई नया ही रास्ता और नये ही सम्बन्ध चुन लूगा। अभिप्राय यही था कि वे स्वयं को स्वतन्त्र अनुभव कर सकें। मा को यही लिखता रहा कि मैं जेल में खूब मजे मे समय काट रहा हू और जो नैतिक उपदेश उन्होंने बचपन में दिये थे, उनके अनुसार चलने का प्रयत्न करता हू।

जेल की कानूनी सख्तियो के बावजूद कुछ दिन बाद जेल के कर्मचारियो का व्यवहार सहानुभूति का हो जाता था। सुल्तानपुर के लिये मेरा चालान किया जाने से आठ-दस दिन पहले ही मुझे उसकी सूचना मिल गयी थी। जेल के एक कर्मचारी से अनुरोध किया कि वह कानपुर से 'प्रताप' साप्ताहिक के पते से बालकृष्ण जी शर्मा नवीन को सूचना दे दे कि अमुक तारीख को कानपुर स्टेशन से होकर सुल्तानपुर जाऊगा। सम्भव हो तो मुझसे स्टेशन पर मिल ले। फतेहगढ से मेरा चालान भी कुछ अजीब सी परिस्थिति में हुआ। मुझे इतना बीमार समझा गया कि जेल मे बिस्तर से फाटक तक भी चलना मना था। मुझे एक स्ट्रेचर पर उठा कर जेल फाटक तक पहुचाया गया। सफर में भी स्ट्रेचर साथ रहा कि गाडी बदलते समय मुझे पैदल न चलना पड़े और ऐसे ही सुल्तानपुर स्टेशन पर रेल से सवारी तक भी पैदल न चलू। परन्तु मेरे भागने का यत्न करने की आशका से मेरे पांवो मे भारी-भारी बेडिया भी जरूर डाल दी गयी।

बालकृष्ण जी शर्मा नवीन से मेरा उस समय तक व्यक्तिगत परिचय नहीं था परन्तु मेरा सन्देश पाकर वे स्टेशन पर आये। पुलिस की गारद मे घिरे बीमार कैदी को पहचान लेना कोई बडी बात नहीं थी। वे इतनी आत्मीयता और सहृदयता से मिले मानो सगे से अधिक अपने हों। उनके शब्द भी अभी तक याद हैं —"my whole heart goes to you" इस आत्मीयता का आधार उनका क्रान्तिकारियो में विश्वास था जिसका श्रेय उनके भगतसिंह और आजाद से परिचय को ही दिया जा सकता था। उन्होंने पूछा भी, "मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हू? किसी चीज की आवश्यकता हो तो कहो।" उन्हें प्रकाशवती का पता देकर अपनी बदली हो जाने की सूचना दे देने के लिये अनुरोध किया।

उन दिनों सुल्तानपुर सैनिटोरियम जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट (तपेदिक के विशेषज्ञ) डाक्टर मथुरालाल गुप्त थे। डाक्टर गुप्त अफसर कम और डाक्टर अधिक थे। जेलो के अधिकांश डाक्टरों का व्यवहार ढग से ठीक उलटा होता है। डाक्टर गुप्त ने खूब

अच्छी तरह ठोक-बजा कर और जाच-पडताल करके मेरे शरीर की परीक्षा की और विश्वास दिलाया, "आपको तपेदिक हरगिज नही है। पुराना ज्वर है। मन की चिंताए छोडिये। यहा जेल मे ऐसा कोई काम न कीजिये कि मुझ पर कोई बात आये और जो चाहे कीजिये।" डाक्टर गुप्ता को साहित्य का भी खूब शौक था। उन्होंने अनेक पुस्तकें पढने के लिये दी। उन्हे फूलो और बागवानी मे भी बहुत रुचि थी। उनके शौक के कारण सुल्तानपुर जेल मे अनेक तरह के गुलाबो और दूसरे फूलो का सुव्यवस्थित उपवन सा बना हुआ था। जिधर देखिये फूल। उनका प्रयत्न यही रहता था कि कैदी सुल्तानपुर जेल को अस्पताल ही समझें। जल्दी ही मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा।

मेरे सुल्तानपुर तपेदिक जेल मे भेज दिये जाने के समाचार से प्रकाशवती बहुत घबरायी। जल्दी-जल्दी मिलने आने लगी। उस समय मिलने आना उनके लिये आसान इसलिये भी हो गया था कि उनकी गिरफ्तारी के बाद सरकार ने देहली और लाहौर मे एक वर्ष तक न रहने की पाबन्दी लगा दी थी। वे समय का सदुपयोग करने के लिये बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे आकर पढने लगी थीं। बनारस से सुल्तानपुर कुछ घटे की ही रेल-यात्रा थी। प्राय पाच छ मास बाद, मेरे स्वस्थ हो जाने पर मुझे सुल्तानपुर से बरेली केन्द्रीय जेल मे भेज दिया गया।

सन् १९३५ का कुछ भाग और १९३६ बरेली केन्द्रीय जेल मे बीते। जेल जीवन की सबसे बडी परेशानी एकरसता होती है परन्तु यहा कुछ घटनाए हुई। बरेली जेल मे आते ही सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर रोजेयर से वास्ता पडा। मेजर रोजेयर एंग्लोइडियन था। उसे यूरोपियन समझे जाने और अपने रोब का बहुत खयाल रहता था। दूसरे समझदार सुपरिन्टेन्डेन्ट का कायदा दूसरा था। वे प्राय क्रातिकारी बन्दियो के हाते मे न जाते थे। न अधिक सामना होता न उनके रोब और हम लोगो के आत्मसम्मान की भावना मे रगड होती। रोजेयर दिखाना चाहता था कि उस के बारक मे आने पर हमे भी खडे हो जाना पडता है। इसके अलावा जेल के श्रम के सम्बन्ध मे बेमतलब नोक-झोक करते थे। काम क्यो नही किया? ये क्या है वह क्या है जेल का कानून तो सदा ही अधिकारियो के पक्ष म रहता था। यो रोजेयर मन का बुरा नही था। प्रतीक्षा मे रहता था कि हम लोग विनय दिखायें तो वह लिहाज करे, उसकी प्रभुता और अधिकार का प्रदर्शन हो सके। रोजेयर के व्यवहार से मन मे सदा ही एक कचोट सी अनुभव होती रहती थी, विशेष कर जेल के श्रम के बारे मे। श्रम कठिन न होने पर भी श्रम न करना कठिन हमारी हेकडी तो थी ही।

एक दिन रोजेयर से भिड जाने का निश्चय कर लिया। पाक्षिक परेड का दिन था। रोजेयर अपने अमले के साथ बारक मे पधारा। सब लोगो को सुना कर उस ने

उपदेश देना आरम्भ किया, "श्रम करने मे मानहानि समझना गलती है। हम भी तो दिन भर श्रम करते है। जेल के नियमो का पूरा पालन होना चाहिये।' एम० एन० राय भी इस जेल मे रह गये है। वे हमेशा अपना श्रम पूरा करते थे ।"

बातें करते-करते रोजेयर ने अपना जूता पहना पाव मेरे पलग के पैताने तहा कर रखे हुये कम्बल पर रख दिया। इतना तो मैं भी समझता था कि यूरोपियन आचार-व्यवहार के अनुसार ऐसा करना अशिष्टता नही समझी जाती परन्तु मुझे अवसर मिल गया। अपनी जगह से आगे बढ कर मैने कम्बल को पलग से उठा कर फेंक दिया और बहुत क्रोध दिखाया, "मैं इस कम्बल को लेकर सोता हू, आप उस पर जूता रख कर मेरा अपमान कर रहे है ?"

जेल के पूरे अमले की आखें विस्मय मे फैल गयी। रोजेयर का चेहरा भी कागज की तरह पीला। इस भयकर अपमान से तडप कर वह बोला, "अच्छा, अच्छा ! तुम्हें इसकी उचित सजा मिलेगी !" पाव पटकता बारक से लौट गया। उस दिन रोजेयर के लिये जेल के निरीक्षण की परेड पूरी करना कठिन हो गया। यही सोचता रहा होगा कि सबके सामने हुए अपमान का क्या उपाय करे। मैं स्वय भी सोच रहा था, यह आदमी चिढ कर जाने क्या बदला ले ? पर अब तो कदम उठ ही चुका था।

घण्टे भर बाद रपट बढी कि साहब फिर हमारी बारक मे आ रहा है। सोचा, इस बार बदला लेने ही आ रहा है परन्तु रोजेयर भीतर आया तो मुस्करा रहा था। बोला, "तुम्हारे स्वास्थ्य की परीक्षा करना चाहता हू।"

डाक्टर के साथ एक जमादार रक्तचाप की परीक्षा का यत्र लिये था। मुझे लिटा दिया गया। खूब परीक्षा ली गयी और रोजेयर साहब ने घोषणा कर दी कि मेरा रक्तचाप बहुत कम है इसलिये मेरा बौखला उठना कोई विस्मय की बात नहीं। मैं क्या खाना-पीता हू ? मुझे भोजन ठीक मे मिलता है या नही ? बहुत लम्बी तहकीकात हुई। रोजेयर न विज्ञ डाक्टर की हैसियत से समझाया, "रक्तचाप नीचा होना कोई बहुत आपत्ति की बात नही है, वैसे जार्ज पचम की मृत्यु इसी रोग से हुई थी" इस घटना के बाद आये दिन की नोक-झोक से छुट्टी मिल गयी।

बरेली सेन्ट्रल जेल मे भाई चन्द्रसिंह गढवाली से परिचय हुआ। १९३० मे पशावर में जिस गढवाली पल्टन ने सरकारी हुक्म से जनता पर गोली चलाने मे इनकार कर दिया था, चन्द्रसिंह उस पल्टन मे हवलदार थे। गोली चलाने का हुक्म मिलने पर इन्होंने ही आगे बढ कर आज्ञा का विरोध किया था। उनके साथ ही इनके एक और साथी भी थे। दोनो सज्जन पाच-पाच, छ-छ साल जेल मे काट चुके थे और अब साधारण नियम से कैदी जमादार बन गये थे और जेल के भीतर घूम-फिर सकते थे। प्राय. ही मिलने

आते रहते। उन दिनो चन्द्रसिंह देश सुधार के विचार से कैदियो मे आर्यसमाज का प्रचार या कहिये मिथ्या-संस्कारो से मुक्त होने का प्रचार किया करते थे। कांग्रेसी स्वराज्य की माग का समर्थन तो वे करते ही थे। मैने उन्हे अपने दल का या समाजवादी दृष्टिकोण समझाना शुरु किया। बात उन्हे जचने भी लगी। वे मुझे 'गुरु' सम्बोधन करने लगे और मैं उन्हे 'बडे भाई'। बरेली जेल मे उस समय चौरीचौरा केस के बन्दी भी थे। चौरीचौरा की घटना निर्विवाद रूप से राजनैतिक थी परन्तु उन लोगो को बी क्लास दिलाने का प्रयत्न कांग्रेस वालो ने कभी नही किया। वे लोग भी मुझसे मिलने या सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करते रहते थे।

मेजर रोजेयर की बदली हो गयी और उनकी जगह आ गये मेजर मल्होत्रा। मेजर मल्होत्रा भले आदमी थे। स्वभाव से तो दयालु और भावुक थे परन्तु रोब और राजभक्ति दिखाने के लिये खामुखा सख्ती का दम्भ करते रहते थे पर वह बहुत निबहता नही था। साधारणतः लोगो को दयालुता या सौजन्य का दम्भ करते देखा जाता है। यह एक अच्छा विद्रूप था कि जेल के भारतीय अफसर अपनी सज्जनता छिपा कर निर्दयता दिखाते थे। उन दिनो बरेली जेल म हैड जेलर एक एंग्लोइंडियन, विलियम्स था। बहुत कमीना और स्वभाव का चुगलखोर। वह अंग्रेज गवर्नरो को अपने सगे मामा स कम नही समझता था। प्राय ही हम लोगो स पूछता, तुम्हारी आयु क्या है? जन्म की तिथि कौन है? और फिर बताता, सम्राट एडवर्ड अष्टम की और मेरी जन्मतिथि एक ही है। मानो वह भी उसी वश का या माते का राजा हो। मेजर मल्होत्रा को यह आशका भी रहती होगी कि विलियम्स उसके विरुद्ध गुप्त रिपोर्ट न कर दे कि वे क्रान्तिकारी राजनैतिक बन्दियो से सहानुभूति रखता है इसलिये यह बमतलब कुछ नोक-झोक करते रहना आवश्यक समझते थे। अकेले आने का अवसर होता तो दूसरी तरह बात कर जाते।

जेल मे विवाह

एक दिन बारक बन्द हो जाने के बाद मेजर मल्होत्रा अकस्मात निरीक्षण के तौर पर हमारी बारक की ओर चले आये। जेलर विलियम्स साथ नहीं था। जेल के दो शरीर रक्षक जमादार ही साथ थे। अंग्रेजी मे हाल-चाल पूछ कर पजाबी मे बोले, "यह तो बताओ मिस प्रकाशवती कपूर कौन है? तुम जानते हो?"

"कहिये, क्या बात है?" मैने उल्टे प्रश्न किया।

मेजर बोले, "अभी किसी से जिक्र करने की जरूरत नही है। मिस प्रकाशवती कपूर ने डिप्टी कमिश्नर की मार्फत दरख्वास्त दी है कि वह तुमसे जेल में ही विवाह

करना चाहती है।" कहते-कहते वे भावुकता में आ गये, "मैं यह सोचता रहा कि तुम्हें तो अभी दस-ग्यारह साल जेल में रहना है, भगवान करे तुम छूट जाओ तो अच्छा ही है पर इस लड़की का त्याग देखो। त्याग और धर्म की ऐसी भावना हिन्दू नारी के अतिरिक्त संसार में कहीं सम्भव नहीं है। मैं मानता हूं कि तुम भी असाधारण देशभक्त और वीर आदमी हो। तुमने अपना जीवन देश के लिये बलिदान किया है। तुम्हारी गिरफ्तारी के समय मैं बड़े ध्यान से पत्रों में सब समाचार पढ़ता रहता था। मैं नेहरू परिवार के लोगों, विजयलक्ष्मी और श्यामकुमारी को भी जानता हूं परन्तु मैं सोचता हूं, इस लड़की को तुमसे शादी करने से मिलेगा क्या? उसका तो यह असाधारण त्याग आदर्श है। हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान आज भी जो मर नहीं गया तो ऐसी ही देवियों के धर्म और आचारबल से। मुझे तो यही संतोष है कि मुझे ऐसी देवी के दर्शन करने का अवसर मिलेगा।" इस बात का मैं क्या उत्तर देता।

अगले दिन डि० मजिस्ट्रेट के यहाँ से आया सरकारी पत्र मुझे दिखाया गया, "लाहौर निवासी मिस प्रकाशवती कपूर, बरेली केन्द्रीय जेल में बन्द आतंकवादी कैदी यशपाल से विवाह करना चाहती हैं। कैदी यशपाल विवाह करना चाहता है या नहीं?" मैंने स्वीकृति लिख दी। विवाह के लिये सात अगस्त १९३६ तारीख निश्चित हो जाने की सूचना मुझे दे दी गयी।

कुछ दिन पहले रमेश गुप्त बदली होकर बरेली जेल में आ गया था। उसे बड़ा उत्साह अनुभव हो रहा था कि भैया की शादी हो रही है। जेल में जो भी सुनता हैरान होता कि कैदी की शादी हो रही है। ऐसा अभी तक देश की किसी भी जेल में सुना भी नहीं गया था। कुछ लोगों का अनुमान था, शादी हो रही है तो कुछ दिन घर हो आने की छुट्टी भी मिल सकेगी।

विवाह के लिये निश्चित तारीख के दिन सुबह मेरे लिये आठ बजे के लगभग दफ्तर में बुलावा आया। कारण तो पहले से मालूम था। जेल से मिले सफेद दुसूती के कोट-पैंट पहले से धुलवाकर इस्त्री कराकर रखे हुये थे। उन्हें पहन कर चल दिया। शादी के लिये डिप्टी कमिश्नर की अदालत में जाना था। दफ्तर में पहुंचने पर आदेश मिला कि बेड़ियां पहन लूं।

"क्यों?" मैंने विस्मय प्रकट किया।

"जेल से बाहर जा रहे हो। ऐसी अवस्था में बेड़ियां पहनायी जाती हैं।" उत्तर मिला।

"पर मैं तो शादी के लिये जा रहा हूं। शादी बेड़ियां पहन कर करायी जाती है? बेड़ियां पहन कर शादी के लिए मैं नहीं जाऊंगा। शादी हो या न हो।"

मुझे अदालत में ले जाने के लिये सिपाही लेकर आया हुआ सब-इन्स्पेक्टर मुझे

बेडिया पहनाये बिना बाहर ले जाने की जोखिम उठाने के लिये तैयार नही था।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर मल्होत्रा परेशानी मे पड गये। उसने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को फोन किया कि पुलिस गार्ड कैदी को बेडिया पहनाये बिना अदालत ले जाने के लिये तैयार नही है और कैदी बेडिया पहनकर शादी कराने के लिये तैयार नहीं है। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने भी मुझे बिना बेडिया पहनाये जेल से बाहर ले जाने की जिम्मेवारी लेना स्वीकार नही किया।

मैंने शादी के लिये बेडिया पहनने से इन्कार कर दिया। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को टेलीफोन कर के कठिन परिस्थिति की सूचना दी।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० पैंडले सकट मे पड गये। उनके पत्र के आधार पर प्रकाशवती और मेरी माता शादी के लिये दो और गवाहो को लेकर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की अदालत मे पहुची हुई थी। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने मेजर मल्होत्रा को उत्तर दिया, "पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट और कैदी दोनो की ही बात ठीक है। मैं दुल्हन को लेकर जेल मे आ रहा हू। वहा ही विवाह होगा।"

अवसरवश उस दिन बरेली मे एक और सकट था। किसी कारण तागो, इक्को की हडताल थी उन दिनो। शहर काग्रेस के प्रधान सतसिंह ने मेरी माता, प्रकाशवती और उनके साथ आये हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के मैनेजर देवीप्रसाद जी शर्मा और श्रीकृष्ण सूरी को डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की अदालत मे तो पहुचा दिया था। अब उन्हें जेल तक पहुचाने के लिये सवारी का प्रबन्ध उनके बस की बात न थी। मि० पैंडले ने इसका भी उपाय किया। मा और प्रकाशवती को तो वे अपनी कार मे ले आये। शर्मा जी और सूरी को भी किसी भद्र पुरुष की गाडी मिल गयी। प्रकाशवती और माता जी के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की गाडी मे, उसके साथ ही आने से एक गलतफहमी पैदा हो गयी। वह बात जरा ठहर कर।

मि० पैंडले ने आज्ञा दी कि विवाह के अवसर के लिये जेल के दफ्तर को अदालत मान लिया जाये। सिविल मैरेज या अदालती विवाह की कार्यवाही शुरु हुई। वर और वधू को जो-जो प्रतिज्ञाएँ करनी पडती है, हम दोनो ने की। पुरोहित के रूप मे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के प्रश्न के उत्तर मे प्रकाशवती ने अपने आप को सनातन धर्मी हिन्दू बता दिया परन्तु मैंने अपना धर्म बताया, 'रेशनलिज्म'। हिन्दी मे इस शब्द का अनुवाद बुद्धिवाद ही हो सकता है।

मि० पैंडले बोले, "यह नया इज्म (वाद) तो कभी सुना नही। नास्तिक लिख द या बौद्ध लिख दू।

"नही, जो मैं कहता हू वही लिखिये।" मैंने आग्रह किया।

साहब ने चिढ़ कर वही लिख दिया और उन्होंने कानूनी अदालती फीस सवा रुपया माग ली। देवीप्रसाद शर्मा और सूरी ने प्रकाशवती की ओर से गवाही में हस्ताक्षर किये। मेरी ओर से गवाही मे रमेशचन्द्र गुप्त और मेजर मल्होत्रा ने हस्ताक्षर किये। सूरी पाच-छ सेर मिठाई भी ले आये थे। मिठाई भी बाटी गयी। जो काम जेल मे कभी नही हुआ था, वह हो गया। विवाह की खुशी मे मेजर मल्होत्रा ने मुझे माता जी, प्रकाशवती, शर्मा और सूरी के साथ एक घण्टे तक बातचीत करने का अवसर दे दिया। उसके बाद वे लोग जेल फाटक के बाहर और मैं भीतर की ओर चला गया।

विवाह के दूसरे-तीसरे दिन ही दूसरे हाते मे रहने वाले सी क्लास के राजनैतिक और चौरीचौरा के मामले के बन्दियो का एक पेंसिल से लिखा पूरे ताव का गुप्त पत्र मिला। इस पत्र म उन्होंने अपने एक क्रान्तिकारी नेता के नैतिक पतन पर शोक प्रकट करके मुझसे क्रान्तिकारियो का नाम कलकित न करने की अपील की थी। पत्र का अभिप्राय था—आपने जेल से मुक्ति पाने के लिये अग्रेज डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की बेटी से विवाह कर लिया है। बहुत से राजनैतिक कैदी तो सी क्लास मे उम्र कैद काट रहे हैं। आप तो बी क्लास की सुविधाए पा रहे है। क्या आप इतना भी नही सह सकते ? इत्यादि-इत्यादि।

जेल के भिन्न-भिन्न भागो और हातो मे घूमने वाले कैदी जमादारो से सुना कि जेल में अफवाह थी, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब अपनी बेटी को साडी पहना कर मोटर में लाये और बी क्लास वाले साहब से (अर्थात् मुझ से) ब्याह कर गये। अब साहब (यशपाल) जेल से छूट जायेंगे। साहब और सरकार मे सुलह हो गयी है। इस भ्रान्ति या कल्पना का कारण टागा हडताल के कारण प्रकाशवती का डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की मोटर मे आना ही था। पजाबी लडकियो का रग यो भी अच्छा गोरा होता है तिस पर ब्याह की तैयारी में कुछ पाउडर भी पोता ही होगा। प्रकाशवती अग्रेज की बेटी समझ ली गयी।

जेल मे रोमाचकारी अफवाह उडाने से कैदियो को सतोष मिलता है। जीवन म स्फूर्ति और वैचित्र्य अनुभव करने का यही तो एकमात्र साधन उनके हाथ मे रहता है। पत्र लिखने वाले लोगों को जितनी भी सही बात बतायी जा सकती थी, बता कर उनका भ्रम और आशका दूर करने की चेष्टा की। जेल मे पहली बार विवाह होना असाधारण नयी बात थी इसलिये सभी अखबारो ने 'स्टेटसमैन' आदि ने भी इस समाचार को महत्त्व देकर मोटे अक्षरो मे प्रकाशित किया।

जेल मे विवाह हो जाने के समाचार से, चाहे वह खुश्क दफ्तरी ढग से ही सम्पन्न

हुआ हो, सरकार की दृष्टि में जेल के वातावरण की रुद्र गम्भीरता का आतंक कमजोर हो गया। जाच-पड़ताल के लिये सरकार से कागज दौड़ने लगे कि जेल में यह नयी बात क्यों और कैसे हो गयी? मेजर मल्होत्रा ने एक रोज बताया कि उनसे पूछ-ताछ होने पर उसने निधड़क उत्तर दे दिया, "विवाह डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की स्वीकृति और आज्ञा से हुआ है। जेल के जिस कमरे में विवाह सम्पन्न हुआ, वह कमरा उस समय डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की आज्ञा से अदालत में परिणत कर दिया गया था और वह स्थान जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के नियन्त्रण में नहीं डी० एम० के नियन्त्रण में था। जेल सुपरिन्टेन्टेन्ट वहा दर्शक और गवाह की स्थिति में मौजूद था। जेल मैनुअल में कैदियों के विवाह के सम्बन्ध में स्वीकृति अथवा निषेध का कोई उल्लेख नहीं है। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने निर्णय डी० एम० के हाथ में छोड़ दिया था कि इस विषय में जेल सुपरिन्टेन्टेन्ट का कोई दायित्व नहीं है।"

जेल में विवाह हो जाने की बात यहीं नहीं रह गयी। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पैंडले से भी जवाब मांगा गया कि जेल में कैदी के विवाह की स्वीकृति उन्होंने कैसे दे दी? ब्रिटिश अफसर भारतीय अफसरों की तरह दब्बू नहीं होते थे। पैंडले का उत्तर था, जेल विधान अथवा परम्परा में कैदियों के विवाह या जेल में विवाह के सम्बन्ध में कहीं कोई निर्देश नहीं है। मिस प्रकाशवती ने विवाह के लिये दरख्वास्त दी। उस में कोई गैरकानूनी बात नहीं थी। उसकी इच्छापूर्ति में बाधा डालने का मेरे पास कोई कारण नहीं था इसलिये मैंने स्वीकृति देना ही उचित समझा। इतने पर भी विवाह की प्रतिक्रिया में आरम्भ हुई हलचल समाप्त नहीं हो गयी।

कुछ मास बाद, उत्तर प्रदेश की सरकार के तत्कालीन गृह-सदस्य (होम मेम्बर) सर महाराजसिंह स्वराज्य मिलने के बाद महाराष्ट्र के गवर्नर बरेली सेन्ट्रल जेल का निरीक्षण करने आये। हमारी बारिक में भी पधारे। मेरा परिचय पाकर बोले, "तुम्हें जेल में रख कर कोई न कोई मुसीबत होती ही रहनी चाहिये। जेल में शादी करके तुम्हें क्या फायदा हो गया? हमारे लिये एक समस्या जरूर खड़ी कर दी।" मैंने उत्तर दिया, 'आप स्वयं देख रहे हैं कि मुझे कोई फायदा नहीं हुआ। मैं तो आप की सरकार के पिंजरे में बन्द हूं। जो कुछ हुआ आप की सरकार और आप के अफसरों की अनुमति से हुआ।"

महाराजसिंह बोले, "हुआ यह कि हमें जेल मैनुअल में एक और धारा बढ़ानी पड़ गयी कि जेल में कैदियों का विवाह नहीं हो सकता।"

मैं मुस्करा दिया, "चलिये एक ऐसी बात हो गयी जो कभी नहीं हुई थी और हो भी नहीं सकेगी।"

जेल में मेरे विवाह से उस समय चाहे कोई लाभ न हुआ हो, यह घटना अंग्रेजी

ासन की जाम्नेदारी का अच्छा उदाहरण बन गयी ।

नैनी जेल मे समारोह

१९३३ और १९३४ मे गाधी जी ने काग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप मे अपने कुछ चुने हुये सत्याग्रही साथियो को लेकर सत्याग्रह के शस्त्र को खूब आजमाया । बम्बई म १९३४ अक्तूबर के काग्रेस अधिवेशन मे गाधी जी ने अपनी नीति और अपने कार्यक्रम की असफलता का एक नया आध्यात्मिक कारण बता दिया। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह का आध्यात्मिक सदेश जनता तक प्रचार के आधुनिक, अपवित्र मशीनी साधनो द्वारा पहुचने से निर्बल हो जाता है । काग्रेस के नेता चुनावों की वैधानिक लडाई मे ही विश्वास रखते थे । चुनाव न लड कर ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेने पर आदोलन का रूप अवैधानिक और गाधी जी की दृष्टि मे हिंसात्मक हुए बिना नही रह सकता था । आन्दोलन को वैधानिक और अहिंसा की सीमाओ मे सीमित रखने का उपाय, आन्दोलन को चुनाव के क्षेत्र मे ले आना ही था । गाधी जी और पटेल आदि काग्रेस के नेताओ म एक समझौता हुआ । गाधी जी ने काग्रेस की सदस्यता छोड दी । नेताओ ने भविष्य म अनुकूल अवसर आने पर गाधी जी का अपना डिक्टेटर बनाकर आन्दोलन चलाने का निश्चय कर लिया । तब तक चुनावो की वैधानिक लडाई का ही कार्यक्रम रहा । १९३५ के नये कानून के अनुसार विधान सभाओ के और निर्वाचित मत्रियों के अधिकार पूर्वापेक्षा बहुत बढा दिये गये थे परन्तु गवर्नरो और वायसराय को उनके काम मे दखल देने का अधिकार तब भी था । इस पर भी काग्रेस ने चुनाव लडे । जनमत काग्रेस के साथ था । विधान सभाओ मे काग्रेसी सदस्यो की बहुत बडी सख्या पहुच गयी ।

नये चुनावो और कानूनो के अनुसार मत्रिमडल बनाने का अवसर आया। काग्रेस की माग थी, गवर्नर और वायसराय आश्वासन दे कि वे मत्रिमण्डलो के कामो मे कम से कम दखल देंगे । जब तक यह आश्वासन न मिलेगा काग्रेसी सदस्य मत्रिमडल न बनाएग। विधान सभाओ मे काग्रेस की मागो की अवहेलना नही की जा सकती थी । वे जिस समय जिस प्रश्न पर चाहते, सरकार के विरुद्ध अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव पास कर सकते थे । ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन दे दिया । प्रदेशो की विधान सभाओ म काग्रेसी मत्रिमण्डल बन गये । इस स्थिति का प्रभाव शासन और जेलो मे व्यवस्था और व्यवहार पर भी पडा । क्रान्तिकारी कैदियो की पुरानी माग थी कि ऐसे सब बन्दियो को किसी एक जेल मे, एक साथ रखा जाये । १९३७ फरवरी या मार्च आरम्भ के दिन थे । एक दिन समाचार मिला कि मेरी और रमेशचन्द्र गुप्त की बदली नैनी केन्द्रीय जेल मे हो रही है वहा सभी क्रान्तिकारी बन्दियो को एक साथ रखा जायेगा ।

रमेश और मैं नैनी के स्टेशन से पुलकते हुये हृदय से नैनी सेन्ट्रल जेल पहुचे ।

क्रान्तिकारी दल के कई बडे-बडे नेताओ, शचीन्द्रनाथ सान्याल और जोगेशचन्द्र चैटर्जी आदि के नाम हम लोगो ने सुने थे। मुलाकात का अवसर कभी नही आया था। उन्हे कभी देख न पाने पर भी उनके प्रति हम लोगो मे बहुत श्रद्धा थी। सशस्त्र क्रान्ति की प्रेरणा और उत्साह पाने मे इन लोगो की कहानियो ने हम पर बहुत प्रभाव डाला था। सान्याल दादा की पुस्तक 'बन्दी जीवन' तो हम लोगो के लिये आरम्भिक पाठ्य पुस्तक सी रही थी।

एक खूब बडे हाते मे दो बडी बारकें थी। जिस समय रमेश और मैं इस हाते मे पहुँचे, सब सुनसान था। हमी सबसे पहले आ पहुच थे। बाद मे एक-एक, दो-दो व्यक्ति दूसरे-तीसरे दिन के अन्तर से आने लगे और बारक भर गयी। शचीन्द्र सान्याल, जोगेश चटर्जी, शचीन्द्र बख्शी मन्मथनाथ गुप्त, मुकुन्दीलाल तो काकोरी के मामले के थे। इसके अतिरिक्त सुविमलकुमार राय, शम्भूनाथ, रमेश गुप्त, बलराज और शिवराजसिंह राजेन्द्र निगम आदि और बाद के दूसरे मामलो के राजनैतिक अभियुक्त आये। काशीराम और मैं हि०स०प्र०स० के मुकदमो के बन्दी थे। इसके अतिरिक्त कम्युनिस्ट शिवसिंह और कानपुर की मजदूर सभा का एक कार्यकर्त्ता बैनर्जी भी आय। बारक मे अच्छी-खासी रौनक हो गयी।

इस जमघट मे अनक अनुभवी लोग थे। वे जानत थे कि बहुत से राजनैतिक या क्रान्तिकारी बन्दियो के एक साथ रहने से जहाँ अपनी सामूहिक सगठित शक्ति द्वारा जेल अधिकारियो का मुकाबला करने का अवसर रहता है वहा जरा-जरा सी बात पर आपसी स्पर्धा के फूट पडने की भी बहुत आशका रहती है। अपने समय को जहा तक सम्भव हो, ठाली नही रहने देना चाहिये। सयुक्त अध्ययन की व्यवस्था की गयी। और यह अनुशासन भी बना लिया गया कि हममे से कोई भी बन्दी जेल अधिकारियो से किसी भी किस्म का व्यक्तिगत सम्पर्क न बनाये या व्यक्तिगत रूप से कोई माग आदि न करे। सब बातें पूरी बारक की ओर से सयुक्त रूप से हो। बारक से एक स्पोक्समैन या प्रवक्ता चुन लिया जाये। बारक के प्रवक्ता का काम सौपा गया मुझे। किसी भी समाज के प्रवक्ता को थोडी-बहुत पचायत भी करनी ही पडेगी। ऐसे सब महारथियो के समुदाय की पचायत और प्रवक्तापन निबाहना विनोद मात्र तो हो नही सकता था। उसे उन्ही के सहयोग से ही निबाहा जा सकता था।

मुझसे कही अधिक अनुभवी साथियो के बारक मे रहते समय यह अहकार कर लेने का कोई आधार नही था कि मैं सबसे विज्ञ अथवा बुद्धिमान हू, इसलिये मुझे प्रवक्ता मान लिया गया है। यह सब विशेष परिस्थितिया के ही कारण था। सान्याल दादा बगाल के अनुशीलन क्रान्तिकारी दल के प्रतिनिधि थे और जोगेश दादा युगान्तर

क्रान्तिकारी दल के। इन दोनो दलो की प्रतिद्वन्द्विता प्रख्यात रही है। उसका प्रभाव इन दानो नेताओ के आपसी व्यक्तिगत भावो और व्यवहार मे भी वर्तमान था। इसके अतिरिक्त इन लोगो मे दार्शनिक और राजनैतिक आदर्शों का भेद भी था।

सान्याल दादा अध्यात्मवादी आदर्शों में विश्वास रखते थे। उन के अध्यात्मवाद का गाधीवाद के स्थूल और भक्तिवादी अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नही था। वे अरविन्द की ज्ञानयोगी विचारधारा के अनुयायी थे। उसी विचारधारा के आधार पर वे भारत के लिये अध्यात्म-निर्देशित स्वतन्त्र शासन की कल्पना करते थे। जोगेश दादा का आदर्श शायद कुछ पहले ही से, कुछ जेल के स्वाध्याय और मनन से मार्क्सवाद की ओर झुक चुका था। शेप लोगो मे और कोई भी अध्यात्मवाद या आदर्शवाद म आस्था रखने वाला नही रहा था। हम लोगो के एक साथ रहन पर विचारो और सिद्धान्तो के विलोडन और छानबीन का खूब अवसर आता और नयी-नयी पुस्तकें पढने की प्रवृत्ति भी होती। हम लोग साहित्यिक दृष्टिकोण से भी गोष्ठियाँ और विचार-विनिमय करते रहते थे। साथियो के अनुरोध पर यहा मैंने फतहगढ जेल में लिखी अपनी कुछ कहानिया सुनायी। सान्याल दादा, जोगश दादा, बख्शी और मन्मथ आदि ने उनकी जो प्रशसा की उससे मेरा उत्साह और आत्म-विश्वास खूब बढा। फतहगढ जेल में भी मैं और मन्मथ साहित्यिक चर्चा किया करते थे। मन्मथ तब भी बगला म कविता, कहानी आदि लिखते रहते थे और मैं हिन्दी मे। एक बार मन्मथ का ध्यान मैंने अनातोल फ्रास की एक पुस्तक से एक बहुत ही सुन्दर पैरे की ओर आकर्षित किया था। पुस्तक फ्रेंच मे थी। मन्मथ न शैली और विषय वस्तु की बहुत सराहना करके कहा, "इससे अच्छा लिखा ही नही जा सकता।"

मैंने सुझाव दिया, "पर इसी भाव को हिन्दी या बगला म ऐसे ही लिखा जा सकना चाहिये।" मन्मथ ने चुनौती दे दी, 'असम्भव। अनुवाद इतना अच्छा कभी हो ही नही सकेगा। अनुवाद तो अनुवाद।"

मैं चुपचाप उस अश का अनुवाद करने लगा। कुछ समय बाद मन्मथ से अनुरोध किया, "मौलिक फ्रेंच से वह पैरा एक बार फिर पढो। मेरा किया अनुवाद भी देखो। त्रुटि क्या है? यदि है तो फिर यत्न किया जाये।"

मन्मथ ने परीक्षक की सतर्कता से मौलिक को और अनुवाद को कई बार पढा और फिर बहुत स्पष्टता से कहा, 'मैं मानता हू, अनुवाद मौलिक से भी अधिक सरस हो गया है।" इस तरह की बातो से अभ्यास और आत्म-विश्वास बढता रहता था।

चुनावो म काग्रेस की भारी सफलता के बाद काग्रेस के मन्त्री पद स्वीकार कर लेने पर निकट भविष्य मे हम लोगो के जेल स छूट जाने की कल्पना अब दुराशामात्र नही कही जा सकती थी। उस समय हम सभी लोगो का विचार था कि जेल से छूट

कर हम लोग फिर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये काम करेंगे इसलिये हम लोगों के इकट्ठा हो जाने पर हम लोगों के लक्ष्य और भावी कार्यक्रम के स्पष्टीकरण का प्रश्न उठना आवश्यक था।

काकोरी के साथियों की गिरफ्तारी के बाद १९२८ में दल का नया संगठन बनाते समय भगतसिंह और दल के तत्कालीन नेताओं ने दल के नाम में समाजवादी शब्द जोड़ दिया था। यह परिवर्तन निष्प्रयोजन तो था नहीं। नैनी सेन्ट्रल जेल में इकट्ठे हुये सब साथियों में से केवल सान्याल दादा को ही यह नया शब्द जोड़ा जाना बहुत उपयोगी नहीं जान पड़ता था। सान्याल दादा को समाजवाद की भावना से या समाजवाद के सामाजिक और आर्थिक पक्ष से विरोध नहीं था। उन्हें विरोध था केवल समाजवादी दर्शन के नितान्त भौतिक आधार से। वे भारत के अध्यात्मनिष्ठ समाजवाद का प्रतिपादन चाहते थे। शेष साथियों की समझ में ऐसा समाजवाद इतिहास द्वारा अप्रमाणित केवल कल्पना-मात्र था। अन्य साथी देश के लिये समाजवादी व्यवस्था की कल्पना मार्क्सवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर ही कर सकते थे। आरम्भ में हमने समाजवाद के उद्देश्य को अपना लक्ष्य स्वीकार किया था। बाद में हम शनैः शनैः उसके आर्थिक और दार्शनिक पक्ष के समीप आने लगे। देश के क्रान्तिकारी लोगों की, विशेषकर हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ की यही सामूहिक प्रवृत्ति थी। इसका बहुत ठोस प्रमाण था अंदमान द्वीप की जेल में अधिकांश क्रान्तिकारियों का सामूहिक रूप से कम्युनिस्ट पार्टी में भरती हो जाना।

नैनी में हम लोगों ने ऐसा कार्यक्रम बना लिया था कि सुबह नाश्ता करने के बाद सामूहिक (क्लास लगाकर) अध्ययन के लिये बैठ जाते। जोगेश दादा इस अध्ययन में बहुत उत्साह से सहयोग देते थे। दोपहर में खाना खाने की छुट्टी होती और तीन बजे फिर मई की तपती दोपहरी में चाय पीकर अध्ययन के लिये बैठ जाते। सन्ध्या समय वालीबाल या बैडमिंटन खेल कर व्यायाम करते थे। रात में अपनी-अपनी स्वतन्त्र पढ़ाई करते रहते थे। अर्थात् दिन में अर्थशास्त्र, दर्शन, राजनीति और रात में साहित्य।

साथी शिवसिंह की मौजूदगी से इस अध्ययन का क्रम निश्चित करने में विशेष सहायता मिलती थी। यद्यपि शिवसिंह का क्रान्तिकारी दल से सम्बन्ध नहीं था परन्तु उसका जीवन अद्भुत अनुभवों की शृंखला थी। वह जवानी की पहली उमंग में सिख धर्म का प्रचार करने के लिये बर्मा पहुंचा था। बर्मा से सिंगापुर, मलाया होता हुआ आस्ट्रेलिया चला गया। आस्ट्रेलिया से अमेरिका। अमेरिका में उसकी प्रवृत्ति मार्क्सवाद या कम्युनिज्म की ओर हो गयी। अमरिका से स्पेन, फ्रांस और जर्मनी होता हुआ रूस पहुंच गया। रूस में उसने दो वर्ष तक नियमित रूप से अध्ययन किया। कुछ दिन मजदूर की तरह निर्वाह भी किया और फिर टर्की, ईरान आदि का चक्कर लगाता

हुआ मार्क्सवाद और कम्युनिज म के प्रचार के लिये भारत लौट आया। हम लोग बिना गुरु या निर्देशक के एकलव्य की भाति या मार्क्स के चित्र को ही गुरु मान कर अध्ययन करते रहते तो हमारे लिये अध्ययन उतना प्रभावी न होता।

हमारी इन स्वाध्याय की बैठको मे सभी लोग अनिवार्य रूप से भाग लेते हो ऐसा नियम नही था। सान्याल दादा तो इस अध्ययन को ही गलत राह पर या व्यर्थ समझते थे या यह उनके लिये अनावश्यक था। कुछ साथी अग्रेजी का या स्कूल-कालिज की शिक्षा का आधार न होने से उसमे भाग नही ले पाते थे। एक-आध को इसमे रुचि ही नही थी। उदाहरणत बनारस के सुविमलकुमार राय। राय ने बारक के भोजन का प्रबन्ध अपने जिम्मे ले लिया था। थोडा-सा कच्चा मास महीन-महीन काट कर, हाथ में लेकर अपनी खाट पर लेट जाते। मास के टुकडे इधर-उधर फेंक फेंक कर तीन-चार बिल्लियो को लडा-लडा कर विनोद करते रहते। राय पढते थे केवल 'स्टेट्समैन'। बारक मे समाचार पत्र आते ही यदि सबसे पहले उन्ह न मिलता तो वे कातर हो जाते। स्टेट्समैन मे भी एक ही बात देखना आवश्यक समझते थे, रेलवे टाइमटेबल में कोई परिवर्तन हुआ है या नही। उनका यह अभ्यास कुछ वर्ष से चल रहा था। उनका कहना था, क्या मालूम किसी सयोग से कब छूट जायें। ऐसी हालत मे रेल का टाइम मालूम न होने से बनारस की पहली गाडी छूट जा सकती है।

राय स्पष्ट कहते थे, राजनीति या क्रान्ति के प्रयत्न से उन का कोई सम्बध नही था। उनके अनजाने मे उनकी बहिन क्रान्तिकारियो को सहयोग और सहायता दे रही थी। बहिन ने एक दिन एक बम लाकर घर मे रख लिया था। बम का विस्फोट हो गया। बहिन गिरफ्तार हो कर थाने मे जायगी। पारिवारिक अपमान की आशका राय बाबू के सामने आ गयी। उपाय सोचा, व स्वय फरार हो जायें तो पुलिस उन्हे ढूँढती फिरेगी। बहिन पर सन्देह नही होगा। ऐसा ही किया परन्तु अगले ही दिन परास्त हो गये और जाकर पुलिस के हाथ आत्मसमर्पण कर दिया। फरारी में सबसे बडी कठिनाई राय को यह पेश आयी थी कि पाखाने कहाँ जायें? बेचारे बगाली भद्र लोक थे। अपने घर या शहर मे रहने वाले सम्बन्धियो के घर के अतिरिक्त देहात या जगल मे कभी रहे नही थे। खेतो मे या उजाड मे शौच के लिये जहाँ जाकर बैठते तो नीचे घास चुभने लगती। पहली बार तो एक पेड की डाल पर बैठ कर सकट से निवृत्ति पायी पर डर लगता था पेड से गिर जाने का। हार मान कर हवालात की सुरक्षा मे जा बैठे परन्तु अपने परिवार को महिला की इज्जत पर आच न आने दी। स्वय सात वर्ष की जेल का दड सह लिया। इसे भीरुता कहा जाय या साहस! हम लोग जितना मूल्य देश और मानवता के प्रति कर्तव्य की भावना से चुका रहे थे,

कर हम लोग फिर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये काम करेंगे इसलिये हम लोगों के इकट्ठे हो जाने पर हम लोगो के लक्ष्य और भावी कार्यक्रम के स्पष्टीकरण का प्रश्न उठना आवश्यक था।

काकोरी के साथियों की गिरफ्तारी के बाद १९२८ मे दल का नया सगठन बनाते समय भगतसिंह और दल के तत्कालीन नेताओ ने दल के नाम मे समाजवादी शब्द जोड दिया था। वह परिवर्तन निष्प्रयोजन तो था नही। नैनी सेन्ट्रल जेल मे इकट्ठे हुये सब साथियो मे से केवल सान्याल दादा का ही यह नया शब्द जोडा जाना बहुत उपयोगी नहीं जान पडता था। सान्याल दादा को समाजवाद की भावना से या समाजवाद के सामाजिक और आर्थिक पक्ष से विरोध नही था। उन्हे विरोध था केवल समाजवादी दर्शन के नितान्त भौतिक आधार से। वे भारत के अध्यात्मनिष्ठ समाजवाद का प्रतिपादन चाहते थे। शेष साथियो की समझ मे ऐसा समाजवाद इतिहास द्वारा अप्रमाणित केवल कल्पना-मात्र था। अन्य साथी देश के लिये समाजवादी व्यवस्था की कल्पना मार्क्सवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर ही कर सकते थे। आरम्भ मे हमने समाजवाद के उद्देश्य को अपना लक्ष्य स्वीकार किया था। बाद मे हम शनै शनै उसके आर्थिक और दार्शनिक पक्ष के समीप आने लगे। देश के क्रान्तिकारी लोगो की, विशेषकर हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सघ की यही सामूहिक प्रवृत्ति थी। इसका बहुत ठोस प्रमाण था अदमान द्वीप की जेल मे अधिकाश क्रान्तिकारियो का सामूहिक रूप स कम्युनिस्ट पार्टी मे भरती हो जाना।

नैनी मे हम लोगो ने ऐसा कार्यक्रम बना लिया था कि सुबह नाश्ता करने के बाद सामूहिक (क्लास लगाकर) अध्ययन के लिये बैठ जाते। जोगेश दादा इस अध्ययन मे बहुत उत्साह से सहयोग दते थे। दोपहर मे खाना खाने की छुट्टी होती और तीन बजे फिर मई की तपती दोपहरी मे चाय पीकर अध्ययन के लिये बैठ जाते। सध्या समय वालीबाल या बैडमिंटन खेल कर व्यायाम करते थे। रात मे अपनी-अपनी स्वतन्त्र पढाई करते रहते थे। अर्थात् दिन मे अर्थशास्त्र, दर्शन, राजनीति और रात मे साहित्य।

साथी शिवसिंह की मौजूदगी मे इस अध्ययन का क्रम निश्चित करने मे विशेष सहायता मिलती थी। यद्यपि शिवसिंह का क्रान्तिकारी दल से सम्बन्ध नही था परन्तु उसका जीवन अद्भुत अनुभवो की शृखला थी। वह जवानी की पहली उमग मे सिख धर्म का प्रचार करने के लिये बर्मा पहुचा था। बर्मा से सिंगापुर, मलाया होता हुआ आस्ट्रेलिया चला गया। आस्ट्रेलिया से अमेरिका। अमेरिका मे उसकी प्रवृत्ति मार्क्सवाद या कम्युनिज्म की ओर हो गयी। अमेरिका से स्पेन, फ्रास और जर्मनी होता हुआ रूस पहुच गया। रूस मे उसने दो वर्ष तक नियमित रूप से अध्ययन किया। कुछ दिन मजदूर की तरह निर्वाह भी किया और फिर टर्की, ईरान आदि का चक्कर लगाता

हुआ मार्क्सवाद और कम्युनिज म के प्रचार के लिये भारत लौट आया। हम लोग बिना गुरु या निर्देशक के एकलव्य की भाति या मार्क्स के चित्र को ही गुरु:मान कर अध्ययन करते रहते तो हमारे लिये अध्ययन उतना प्रभावी न होता।

हमारी इन स्वाध्याय की बैठको मे सभी लोग अनिवार्य रूप से भाग लेते हो ऐसा नियम नही था। सान्याल दादा तो इस अध्ययन को ही गलत राह पर या व्यर्थ समझते थे या यह उनके लिये अनावश्यक था। कुछ साथी अग्रेजी का या स्कूल-कालिज की शिक्षा का आधार न होने से उसमे भाग नही ले पाते थे। एक-आध को इसमे रुचि ही नही थी। उदाहरणत बनारस के सुविमलकुमार राय। राय ने बारक के भोजन का प्रबन्ध अपने जिम्मे ले लिया था। थोडा-सा कच्चा मास महीन-महीन काट कर, हाथ मे लेकर अपनी खाट पर लेट जाते। मास के टुकडे इधर-उधर फेंक-फेंक कर तीन-चार बिल्लियो को लडा-लडा कर विनोद करते रहते। राय पढते थे केवल 'स्टेट्समैन'। बारक मे समाचार पत्र आते ही यदि सबसे पहले उन्हे न मिलता तो वे कातर हो जाते। स्टेट्समैन मे भी एक ही बात देखना आवश्यक समझते थे, रेलवे टाइमटेबल म कोई परिवर्तन हुआ है या नही। उनका यह अभ्यास कुछ वर्ष से चल रहा था। उनका कहना था, क्या मालूम किसी सयोग से कब छूट जायें। ऐसी हालत मे रेल का टाइम मालूम न होने स बनारस की पहली गाडी छूट जा सकती है।

राय स्पष्ट कहते थे, राजनीति या क्रान्ति के प्रयत्न से उन का कोई सम्बध नही था। उनके अनजाने मे उनकी बहिन क्रान्तिकारियो को सहयोग और सहायता दे रही थी। बहिन ने एक दिन एक बम लाकर घर मे रख लिया था। बम का विस्फोट हो गया। बहिन गिरफ्तार हो कर थाने मे जायगी। पारिवारिक अपमान की आशका राय बाबू के सामने आ गयी। उपाय सोचा, वे स्वय फरार हो जायें तो पुलिस उन्हे ढूँढती फिरेगी। बहिन पर सन्देह नही होगा। ऐसा ही किया परन्तु अगले ही दिन परास्त हो गये और जाकर पुलिस के हाथ आत्मसमर्पण कर दिया। फरारी मे सबसे बडी कठिनाई राय को यह पेश आयी थी कि पाखाने कहाँ जायें? बेचारे बगाली भद्र लोक थे। अपने घर या शहर मे रहने वाले सम्बन्धियो के घर के अतिरिक्त देहात या जगल म कभी रहे नही थे। खेतो मे या उजाड मे शौच के लिये जहाँ जाकर बैठते तो नीचे घास चुभने लगती। पहली बार तो एक पेड की डाल पर बैठ कर सकट से निवृत्ति पायी पर डर लगता था पेड मे गिर जाने का। हार मान कर हवालात की सुरक्षा मे जा बैठे परन्तु अपने परिवार को महिला की इज्जत पर आच न आने दी। स्वय मात वर्ष की जेल का दड सह लिया। इसे भीरुता कहा जाय या साहस! हम लोग जितना मूल्य देश और मानवता के प्रति कर्तव्य की भावना से चुका रहे थे,

सुविमल बाबू उतना ही मूल्य भद्र परिवार की लड़की को बेपर्दा न होने देने के लिये चुका रहे थे। दूसरी ओर उन्ही दिनो देश के बहुत बड़े नेता (प० जवाहरलाल नेहरू) की बहिन और पत्नी डंके की चोट जेल जा रही थी। भिन्न-भिन्न लोगो के सम्मान की धारणाए भी परस्पर कितनी भिन्न होती हैं।

रिहाई के मार्ग मे अड़चनें

कांग्रेस को १९३७ के आरम्भ मे प्रान्तीय गवर्नरो और वायसराय से शासन कार्य मे कम से कम हस्तक्षेप का आश्वासन मिल गया था। देश के तत्कालीन ग्यारह प्रान्तो मे कांग्रेसी मत्रिमडलो ने सरकार की बागडोर सम्भाल ली थी। कांग्रेस ने चुनाव मे जनता मे समर्थन पाने के लिये जो घोषणापत्र निकाला था उसमे बिना किसी भेद के सभी राजनैतिक बन्दियो की रिहाई की प्रतिज्ञा भी थी। कांग्रेसी सत्याग्रह आन्दोलन के सब कैदी तो रिहा हो चुके थे इसलिये हमे भी जेल से मुक्ति की आशा के प्रभात की आभा क्षितिज पर दिखायी देने लगी। ठीक इसी समय दो साथियो के सिर पर शहीद बनने की इच्छा सवार हो गयी। उन्होने ऐलान किया कि वे सब साथियो की मुक्ति के लिये आमरण अनशन करना चाहते हैं। प्राय अन्य सभी साथियो को यह काम उचित नही जँच रहा था।

अनशन के प्रस्ताव पर बारक के प्रवक्ता की स्थिति कठिन हो गयी। यह कह देना कि अनशन करने वाले दो साथियो से हम कोई मतलब नही, उचित नही था और उनके साथ सहानुभूति मे अनशन आरम्भ कर देना और भी अनुचित जान पड़ता था। एक और सकट, उस समय नैनी जल मे सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर भडारी था। भडारी पूर्ववत् हमारी किसी भी भूल से लाभ उठा कर नयी सरकार से शाबाशी पा लेने के लिये अवसर की खोज मे था परन्तु सरकार या विधान सभा के अनेक सदस्या से क्रान्तिकारियो के व्यक्तिगत परिचय होने के कारण स्थिति अधिक खराब नही हो सकी।

काकोरी के मामले के रामकृष्ण खत्री अपनी सजा पूरी करके कुछ दिन पूर्व रिहा हो चुके थे। वे इस अवसर पर शेष क्रान्तिकारी कैदियो की रिहाई के प्रयत्न के लिये मत्रियो के चारो ओर घूमते रहते थे। खत्री जेल मे आकर हम भी आश्वसन दे जाते थे। वे नय कांग्रेसी राज के परिवर्तनो की बातें सुना जाते। सचिवालय और विधान सभा पर गांधी टोपी और खद्दर के कपड़ो का नया-नया प्रभुत्व कायम हुआ था। पहरे पर नियुक्त पुरान गोरे और एग्लोइडियन सार्जेन्ट मत्रियो तथा नेताओ के चेहरे पहचान नही पाते थे। खत्री ने बताया कि उनके मत्रियो से मिलने के लिये विधान सभा या सचिवालय मे जाने पर गोरा सार्जेन्ट एड़ी से एड़ी ठोक कर उन्हे पट्ट से सलूट मारता था। यह सुन कर हमारे कई नवयुवक साथियो को रोमाच हो आता था, अब और

क्या चाहिये था ?

लगभग अगस्त का महीना था। सुपरिन्टेन्डेन्ट से लेकर अदना वार्डर तक अपनी वर्दी के बटन माज कर चुस्त-दुरुस्त हो गया। जेल में कँपकँपी सी छा गयी थी—मुख्यमंत्री आ रहे हैं। हम लोग ऐसे निश्चिन्त और प्रसन्न थे मानो अपने बाप ही मिलने आ रहे हों। जेल के वार्डरों और सचिवालय के अर्दलियों की रक्षा म मुख्यमंत्री पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री वेंकटेशनारायण तिवारी के साथ आये। पहले वाली बात नहीं थी कि सुरक्षा या अदब के विचार से कैदी और आला अफसर के बीच दस कदम का फासला रहना ही चाहिये और बीच में वार्डर, अर्दली और जेल के अफसर मौजूद रहें और हम कैदियों में बुत की तरह निश्चल और सीधे खड़े रहने की आशा की जाती। पन्त जी शरीर रक्षकों की आड़ से आगे बढ़ कर हम लोगों की पीठों पर हाथ रख-रख कर मिले, हाल-चाल पूछा। बड़े साहब, छोटे साहब, सुपरिन्टेन्डेन्ट और जेलर और जेल के पूरे अमले को हाते से बाहर हटा दिया गया। पन्त जी और तिवारी जी हम लोगों के बीच रह गये। जेल के इतिहास में यह नयी अप्रत्याशित बात थी।

पन्त जी हम लोगों को आसपास बुलाकर बीच मे बैठ गये और बात शुरू की। उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा, "कांग्रेस अपने चुनाव के प्रतिज्ञापत्र में ही सब राजनैतिक बन्दियों को रिहा कर देने की अपनी नीति की घोषणा कर चुकी है। आप लोग भी जेल में नहीं रहेंगे, यह तो निश्चय ही है लेकिन सत्याग्रही अहिंसात्मक बन्दियों और शस्त्र और हिंसा के प्रयोग के लिये अभियुक्त बन्दियों में अन्तर रखा जाता रहा है। हमें तो पूरा विश्वास है कि बदली हुई परिस्थितियों में आप लोग हिंसा में विश्वास नहीं रखते। आप लोगों की रिहाई के लिये कोई शर्त नहीं रखी जा रही है। आप से कुछ लिख कर देने के लिये भी नहीं कहा जा रहा है। आप हमारे अपने ही हैं। हमसे कोई बात कहने में भी आप के स्वाभिमान का प्रश्न नहीं है तो गवर्नर से आप की रिहाई की बात करते समय हम साधिकार और बल से कह सकते हैं कि आपका विश्वास हिंसा में नहीं है। आप लोगों को जेल में रखने का कोई कारण नहीं है।" आदि-आदि।

हम लोग पन्त जी की बात सुनकर अभी चुप ही थे कि सान्याल दादा ने स्वाभाविक ढंग से बैठे-बैठे ही उत्तर दे दिया, "हिंसा तो हमारा ध्येय कभी भी नहीं था। आप के सामने हमारे यह कह देने से कि मौजूदा परिस्थितियों में हिंसा में हमारा विश्वास नहीं है। आपके हाथ मजबूत होते हैं तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है।"

पन्त जी ने सान्याल दादा की बात पर संतोष प्रकट किया। हमारे साथियों के चेहरों

पर भी सतोष ही दिखायी दे रहा था परन्तु मुझे यह सब अच्छा नही लग रहा था।

मैंने खडे होकर दो शब्द कहने की आज्ञा मागी और निवेदन किया, "आपने राजनैतिक बन्दियो की रिहाई के सम्बन्ध मे कांग्रेसी सरकार की नीति के विषय मे जो बात कही है उस पर हमे पूरा विश्वास है। आपके सामने कोई भी बात स्पष्ट रूप से कह देने मे भी हमे कोई सकोच नही है। परन्तु किसी भी बात का अभिप्राय स्थिति और समय के अनुसार हो जाता है। आप हम पर कोई शर्त नही लगा रहे हैं परन्तु जब हम अपनी रिहाई के सवाल पर कोई बात कहते है तो उस बात और रिहाई मे कार्य-कारण सम्बन्ध बन जायेगा। यदि हम आज कहे कि बदली हुई परिस्थितियो मे हमारा विश्वास हिंसा मे नही रहा तो इसका अर्थ हो जाता है कि पहले हमारा विश्वास हिंसा मे था। वास्तव मे हिंसा तो हमारा ध्येय कभी भी नही था। हम यह भी नही कहना चाहते कि हमे रिहा कर दिया जाये। हम आपसे कोई माग करके आपको परेशानी मे नही डालना चाहते। यदि आप की नीति ऐसी है और यह जनता की माग है तो हमे रिहा कर दीजिये वर्ना आपसे देश का जो भला होगा हमे उसी से सतोष हो जायेगा। आज अपनी रिहाई के प्रश्न पर हम जो कुछ कहेगे उसका अभिप्राय रिहाई के लिये प्रार्थना या शर्त हो जायेगा। हम लोगो ने अब तक जैसे आत्मसम्मान निबाहा है, हम आशा करते है आप भी चाहेगे कि वह निभता रहे। इस अवसर पर हमसे यह कहने की आशा करना कि 'हमे अब हिंसा मे विश्वास नही रहा' असगत है। हमे जो कुछ कहना था पहले कई बार कह चुके है। हमे सब प्रश्नो पर देश की जनता का निर्णय मजूर है। अन्त मे मैंने यह भी कह दिया, मैं यह बात बारक मे रहने वाले साथियो द्वारा नियुक्त प्रवक्ता के रूप मे सब की ओर से कह रहा हूँ परन्तु इस प्रश्न पर सयुक्त रूप से विचार करने का हमे कोई अवसर नही मिला इसलिये यदि साथी मुझसे सहमत न हो तो अपना विचार प्रकट कर सकते है।"

मेरे बैठ जाने पर सन्नाटा ही रहा। केवल जोगेश दादा ने खडे होकर दो शब्द कहे, "साथी यशपाल ने जो कुछ कहा है मै उसका समर्थन करता हूँ। दूसरे साथियों का भी भाव उनके चेहरो से स्पष्ट था। सान्याल दादा ने भी समर्थन किया, हाँ ठीक है।

पन्त जी ने सिर हिलाकर आश्वासन दिया, "बात तो ठीक है। यह कोई शर्त नही है। हमे जो करना है, हम करेंगे ही।"

इसके बाद वेंकटेशनारायण जी तिवारी हममे से एक-एक को लेकर कुछ देर टहलते रहे। मुझ से भी बात की कि यह तो केवल टेक्नीकल यानी औपचारिक बात है। मेरा आग्रह था कि लक्ष्य के बारे मे मतभेद तो कुछ है नही। प्रश्न तो यही है कि

सुरेन्द्र पांडे (सन् १९३१)
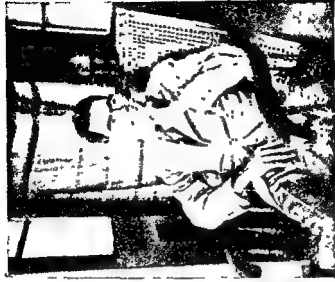
यशपाल जेल से रिहाई के समय

रूप क्या हो, सामने क्या आये। सामने तो ढग या वस्तु का औपचारिक रूप ही आता है।

उपरोक्त घटना के बाद तीन सप्ताह या एक मास बीता होगा, रामकृष्ण खत्री हम लोगों से मिलने आये। उन्होंने बताया कि हम लोगो को जेल से मुक्ति की आज्ञा हो गयी है। नैनी सेन्ट्रल जेल मे आज्ञा के पहुँचने मे दो-तीन दिन लग सकते है, ठीक तारीख बताना कठिन है। उनका अनुरोध था, जेल से छोड दिये जाने पर हम लोग जहाँ मन चाहे तहाँ या अपने-अपने घर न भाग जायें। सब लोग इलाहाबाद मे कांग्रेस के दफ्तर स्वराज्य भवन मे इकट्ठे हो ताकि क्रान्तिकारी वन्दियो की मुक्ति पर उनका उचित आदर किया जा सके, उनका जुलूम निकाला जा सके। यह प्रस्ताव प्राय सभी को अच्छा लगा परन्तु मैंने इस बन्धन से छूट चाही। निवेदन किया, "भाई ये जुलूम-वलूम ऊपनी प्रकृति और स्वभाव के अनुकूल नही है।"

रामकृष्ण खत्री ने डाँट दिया, "नही-नही, यह व्यक्तिगत मामला नही है। क्रान्तिकारियो का सामूहिक प्रश्न है। हम लोगो के विरुद्ध समय-समय पर गलत प्रचार किया गया है। जब सान्याल दादा, जोगेश दादा और दूसरे साथी जनता के सामने अपने विचार प्रकट करेंगे तो लोगो को पता लगेगा कि हम लोग क्या हैं।"

मैं खत्री से सहमत नही हो सका। मैंने आग्रह किया, "देखो भाई, हम छूट रहे हैं परिस्थितियो के कारण। मुझे तो ऐसा नही जान पडता कि हमने सग्राम मे विजय प्राप्त कर ली हो इसलिये विजेता की भाँति अपना जुलूम निकलवाने मे सकोच होता है। यह कांग्रेस की विजय है। हम कांग्रेसी नीति के कारण छोडे जा रहे है। हमारे लक्ष्य तो पूरे हुए नही हैं। खयाल है, हमे तो अपने लक्ष्यो के लिये प्रयत्न जारी रखना ही पडेगा।"

जोगेश दादा ने भी मेरी बात का समर्थन किया और जुलूम-वलूम मे शामिल होने के लिये अनिच्छा प्रकट कर दी। खत्री ने यह निश्चय किया, छूटने पर सब लोग स्वराज्य भवन मे एकत्र तो जरूर हो समय पर उचित-अनुचित देख लिया जायगा।

एक बार फिर हमारे हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातत्र सघ के लक्ष्यो के पूरा हो जाने या न हो जाने का प्रसग आ गया है। यह प्रश्न भी असगत नही है कि हमारे लक्ष्य पूरे नही हो गये तो हि०स०प्र०स० समाप्त क्यो हो गया और समाप्त नही हो गया तो उसका हुआ क्या? सस्था और सगठन के रूप मे हि०स०प्र०स० कायम क्यो नही रहा?

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातत्र सघ के लक्ष्य मूल रूप मे तो समाजवादी शब्द से प्रकट हो जाते हैं। इस सस्था ने अपने घोषणापत्र 'बम का दर्शन' मे अपना लक्ष्य यों स्पष्ट किया था, "क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार मे सघर्ष ही नही है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण व्यवस्था है। इस

क्रान्ति का उद्देश्य पूँजीवाद को समाप्त करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्त करके आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषको के हाथ से शासन शक्ति लेकर किसान-मजदूर श्रेणी के शासन की स्थापना ही है।' जहाँ तक विदेशी शासन से मुक्ति का प्रश्न था, लक्ष्य पूरा हो गया परन्तु हमारा श्रेणीहीन समाज का लक्ष्य तो पूरा नही हुआ। हमारे लक्ष्य युक्तिसगत थे या नहीं, इस विषय मे अब यह कहना अप्रासगिक न होगा कि १६५५ की मद्रास कांग्रेस मे पडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के वही लक्ष्य बताये हैं जिनकी हि०स०प्र०स० ने १६३० या उससे पूर्व घोषणा की थी। यह लक्ष्य अभी तक पूरे न होने पर हि०स०प्र०स० सस्था के रूप मे विलीन क्यो हो गया?

मेरे विचार मे इस प्रश्न का उत्तर हि०स०प्र०स० के सक्षिप्त से इतिहास मे ही समाहित है। क्रान्ति विचारो और भावनाओं के विकास की प्रक्रिया का परिणाम होती है। हिन्दुस्तान प्रजातत्र सघ ने अपने विकास के परिणाम मे हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातत्र सघ का रूप ले लिया था परन्तु विकास का क्रम बन्द तो हो नही जाना चाहिये था। जेल मे बन्द साथियो को जब अध्ययन और विचार का अवसर मिला, उन्होंने अनुभव किया कि उन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये अधिक व्यापक और उन की अपेक्षा अधिक विकसित और वैज्ञानिक ढग से चलने वाले सगठन का विकास कम्युनिस्ट पार्टी के रूप मे हो चुका है, अन्दमान म उन्होंने अपने आप को सामूहिक रूप से कम्युनिस्ट पार्टी मे खपा दिया था। मेरे विचार मे इन साथियो द्वारा अपनी सस्था और सगठन के अस्तित्व का मोह न करके लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये अधिक व्यापक सगठन म अपने आप को खपा देना उनकी निर्बलता और पराजय नही थी, बल्कि अपने वैयक्तिक और सामूहिक अहकार को लक्ष्य के लिये निछावर कर देना था।

इस प्रसग मे मेरी रिहाई के बाद की एक घटना का जिक्र भी अप्रासगिक नही होगा। मुझे बहुत बीमार रहने के बाद मार्च १६३८ मे जेल से मुक्त किया गया था। छूटते ही अड़तालीस घटे के भीतर भुवाली सेनीटोरियम के लिये चले जाने की भी आज्ञा थी। वहाँ से अगस्त मे लौट कर आया। रिहाई के बाद हम लोगो के अधिकांश साथी निर्वाह की चिन्ता मे और राजनैतिक परिस्थितियो के प्रभाव से अपने आप को जहाँ-तहाँ खपा बैठे थे परन्तु जोगेश दादा तब भी अपना जीवन जनता की मुक्ति के सघर्ष मे अपने ढग से लगाने की बात पर अडे हुये थे। जेल के परिचय से उन्हे मुझ पर काफी विश्वास था कि मैं भी इसी मार्ग पर डट सकूँगा। जेल मे वे मुझे अपना 'फ्रेंड, फिलासफर एंड गाइड' कहते थे। सितम्बर मे वे गणेशगज, लखनऊ मे मुझ से मिलने आये और उन्होंने कहा, "कुछ आरम्भ करने से पूर्व तुम से बात कर लेना

चाहता था।" प्रश्न सामने रखा, "अब हम लोगों का अर्थात् हि०स०प्र०स० का क्या कदम होना चाहिये ?"

मैंने हि०स०प्र०स० के लक्ष्यों की संक्षिप्त चर्चा करके पूछा, "कम्युनिस्ट पार्टी के लक्ष्यों और हमारे लक्ष्यों में क्या अन्तर है ?"

जोगेश दादा ने भेद कोई नहीं बताया। उन्होंने प्रश्न किया, "तो क्या हम अपने अस्तित्व को बिलकुल खो दें, उसे मटियामेट कर दें ?"

मेरा उत्तर था कि संस्था या संगठन के रूप में केवल अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये ही मैं प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओं का संगठन उचित नहीं समझता। उस क्षण के बाद से जोगेश दादा का मुझ पर भरोसा समाप्त हो गया। जोगेश दादा ने रेवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी का संगठन आरम्भ कर दिया। रेवोल्यूशनरी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के लक्ष्यों में अंतर कोई नहीं था। झंडा भी वे हँसिय-हथौड़े का ही रखते हैं पर उन का संगठनात्मक अस्तित्व पृथक् रहा। वे कहते रहे कि कम्युनिस्ट पार्टी की नीति विदेशी प्रभाव से निश्चित होती है और उनकी पार्टी स्वतंत्र भारतीय कम्युनिज्म की समर्थक है। विचारों की समता के नाते भारतीय कम्युनिस्टों का कम्युनिस्ट देशों से सहानुभूति रखना और उनके अनुभव से लाभ उठाने की इच्छा रखना उचित ही मानता है। किसी कम्युनिस्ट को स्पष्ट कहते नहीं सुना कि वे भारत का भाग्य किसी अन्य कम्युनिस्ट देश को सौंप देने के लिये तैयार है।

मेरे अधिकांश पाठकों और वैसे भी बहुत से लोगों का अनुमान रहा है कि मैं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर हूँ। यह जान कर कि मैं उस पार्टी का मेम्बर नहीं हूँ, कुछ लोगों को विस्मय भी होता है। १९४९ फरवरी में कम्युनिस्टों की व्यापक गिरफ्तारी के समय पुलिस ने मुझे भी गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया था। प्रकाशवती ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री पंत जी से गिला किया था, "यश-पाल तो कम्युनिस्ट पार्टी का या किसी ट्रेड यूनियन का भी मेम्बर नहीं है। उसे क्यों गिरफ्तार किया गया है ?' पंत जी का पहला उत्तर तो था कि उन्हें मेरी गिरफ्तारी के बारे में मालूम ही नहीं था परन्तु अपनी पुलिस की पीठ पर हाथ रखे रहने के लिये पंत जी ने क्रोध भी प्रकट किया, "यशपाल मेम्बर नहीं हैं तो क्या हुआ ! वह लिख लिख कर दूसरों को तो कम्युनिस्ट बनाता है।"

पंत जी द्वारा लगाये इस इलजाम के विरुद्ध कोई सफाई देना मैं आवश्यक नहीं समझता। पंत जी सदा कहते रहे हैं कि कांग्रेसी राज में विचारों की और विचारों के प्रचार की स्वतंत्रता है।

प्राय लोग पूछते हैं, मैं किसी भी राजनैतिक पार्टी का मेम्बर नहीं हूँ तो क्या मैंने राजनीति से सम्पर्क छोड़ दिया है ?

राजनीति से सम्पर्क छोड देने का मतलब अपने देश और समाज की वर्तमान अवस्था और भविष्य से कोई सम्पर्क न रखना है। ऐसा वैरागी मैं नही हूँ। जेल से छूटने के बाद से मेरे विद्यार्थी जीवन की ओर जेल मे दुबारा पोसी हुयी भावना फिर जाग उठी थी। निश्चय कर लिया था—मुझे जो कुछ भी करना है, साहित्य के साधन से ही करूँगा। विद्यार्थी जीवन के समय विदेशी शासन की उत्तेजक परिस्थितिया का प्रभाव कहिये या अपने तत्कालीन साथियो भगवतीचरण, भगतसिंह, सुखदेव आदि के बलिदान हो जाने के लिये आगे बढ जाने के निश्चय का मुझ पर प्रभाव मानिये कि वे मुझे खीच ही ले गये। मुझे सतोष है, उस समय उनकी सगति मे किये निश्चय को निबाहने का पूरा यत्न किया। जेल से मुक्ति के पश्चात जीवन का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ। जान पडता है, वैयक्तिक प्रकृति मे मेरा झुकाव, कई अन्य क्रान्तिकारी साथियों की तरह, पिस्तौल के बजाय कलम की ओर था। अब अपना काम साहित्य के माध्यम से कर रहा हूँ।

जेल से रिहाई की बात कह रहा था। रामकृष्ण खत्री के हमें समझा कर जाने के तीन-चार दिन बाद मुझे मामूली सा ज्वर और इनफ्लुएजा हो गया। ज्वर के तीसरे ही दिन से खाँसी मे खून आने लगा। मेरी उस अवस्था मे साथियो की रिहाई का हुक्म आ गया। काकोरी के तो सभी बन्दियों की रिहाई ही गयी। मैं और चार-पाँच साथी रह गये। इनमे से शिवसिंह, बैनर्जी, बलराज, शिवराज आदि की सजाएँ भी अधिक नही थी। आशा थी जल्दी ही हम लोगो की भी रिहाई हो जायगी। मेरी अवस्था गिरती ही जा रही थी। मेजर भण्डारी अपनी ताकत लगाये दे रहे थे पर खून का गिरना बढता ही जा रहा था। यह भी निश्चय नही हो पा रहा था कि खून फेफडो से आ रहा है या गले की नसो से। एक दिन इतना खून गिरा कि डाक्टर आपरेशन का विचार करने लगे। जेल और सरकार मे मेरी अवस्था के सम्बन्ध से बहुत जोर से लिखा-पढी चल रही थी। बाद मे मालूम हुआ कि उस समय का अंग्रेज गवर्नर हालेट और सबको रिहा कर देने के लिये तैयार था परन्तु मुझे नही।

हालेट को इस बात पर भी गुस्सा था कि हमारे जो साथी नैनी से छूटे थे उनका बहुत बडा जुलूस निकाला गया था और उन लोगो ने अपने व्याख्यानो मे घोषणा की थी कि ब्रिटिश छत्रछाया मे और असली शक्ति ब्रिटिश हाथ मे रहते जो कांग्रेसी सरकारें कायम की गयी है, इनसे उन्हे सतोष नही था। क्रान्तिकारी देश की पूर्ण आजादी के लिये लडते रहेगे।*

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमत्री पन्त जी और जेल मन्त्री रफी अहमद

*जिम्मेदार कांग्रेसी नेता पडित नेहरू आदि भी १६३७ के कांग्रेसी शासन को स्वराज्य नही कहते थे।

किदवई साहब जब मेरे स्वास्थ्य की चिन्ताजनक स्थिति के आधार पर मेरी रिहाई की माग करते तो गवर्नर को सन्देह होता, मेरी बीमारी जेल से मुक्ति के लिये बहानेबाजी है। गवर्नर ने इलाहाबाद के सिविल सर्जन मि० लाई, सरकारी तपेदिक विशेषज्ञ डाक्टर टण्डन और एक फौजी डाक्टर कर्नल बागू को मुझे देखने के लिये जेल मे भेजा। यह डाक्टर मेरे रोग के निदान मे सहमत न हो सके।

कुछ दिन बाद मेरे मुँह से खून गिरना बन्द हो गया। मेरी अवस्था सुधरने लगी। मैं अस्पताल मे अभी बिस्तर पर ही था कि शेष साथी भी छूट गये। काकोरी के बन्दियो को मुक्त हुये पाच मास बीत चुके थे। मैं अकेला रह गया था। एक दिन हुक्म आया कि मुझे नैनी सेन्ट्रल जेल से लखनऊ जिला जेल मे पहुँचा दिया जाय। जेल जीवन मे पहली बार पाव मे बेडी पहिने बिना तबादले की यात्रा की। अनुमान था, शायद लखनऊ मुक्त कर देने के लिये ही ले जाया जा रहा हूँ।

लखनऊ जिला जेल मे पहुचने पर रफी अहमद किदवई साहब मुझसे मिलने आये। उन्होंने साफ-साफ बात की, मेरी रिहाई के प्रश्न पर गवर्नर और काग्रेसी मन्त्रिमण्डल मे जबरदस्त तनातनी चल रही थी। गवर्नर ने आखिरी अडचन यह डाल दी थी कि यशपाल पजाबी है। जेल से छूटने पर वह पजाब जायगा। पजाब की सरकार शायद यह पसन्द न करे। उसे मुक्त करने से पूर्व पजाब की सरकार की राय ले लेनी चाहिये। उस समय पजाब मे काग्रेसी सरकार नही, ब्रिटिश भक्त सर सिकन्दर की यूनियनिस्ट सरकार थी। वे भला मेरे जैसे आदमी की रिहाई के लिये क्या स्वीकृति देते इसीलिये गवर्नर ने यह तर्क दिया था। गवर्नर का यह सुझाव मान लेने से मेरी रिहाई न हो सकती थी। लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्त शिव वर्मा, जयदेव कपूर और डा० गया प्रसाद आदि को सर सिकन्दर हयात की सरकार ने मेरी रिहाई के भी कई वर्ष बाद ही मुक्त किया था।

किदवई साहब चाहते थे कि मैं यह शर्त स्वीकार कर लू कि मैं रिहाई के बाद पजाब नही जाऊगा और वे गवर्नर का मुँह बन्द कर सकें।

किदवई साहब को उत्तर दिया—'रिहाई के लिये शर्त के नाम पर इतनी सी बात कह देना भी मुझे अच्छा नही लगता।"

स्वर्गीय रफी साहब बहुत गम्भीर, सहृदय व्यक्ति थे परन्तु मेरे इस इनकार पर वे कुछ झुंझला गये, "तुम्ह लिख कर कुछ नही देना। इस समय इतना कह देने मे भी तुम्हें आपत्ति है तो हमारे सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं। काग्रेस मन्त्रिमण्डल सब राजनैतिक बन्दियों को रिहा करने की प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने के कारण सरकार से त्याग-पत्र दे दे या पजाब के राजनैतिक कैदी को पजाब भेज दे।"

मेरे सामने विकट समस्या थी। कुछ सोच कर रफी साहब से निवेदन किया,

"शर्त से बचने का एक उपाय बता सकता हूं। मैं आप के नाम एक पत्र लिख दू जिसमें मेरे कोई शर्त न मानने पर भी गवर्नर के एतराज की काट हो जाये।"

रफी साहब ने जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट कर्नल जाफरी को आदेश दिया कि मैं जो भी पत्र लिख कर दू, वह तुरन्त सिपाही के हाथ उन्हे भिजवा दिया जाये।

अगले दिन मैंने जेल-मन्त्री के नाम इस आशय का पत्र लिखा —"मेरे साथ के सभी राजनैतिक बन्दियो की रिहाई हो गयी है। आशा है, कुछ दिन मे मेरी भी रिहाई हो जायगी। इस समय मेरा स्वास्थ्य चिन्ताजनक है। मेरी पत्नी का विचार रिहाई के बाद मुझे इलाज के लिये तुरन्त स्विट्जरलैंड ले जाने का है। उस यात्रा की तैयारी मे कुछ समय लगेगा। मेरा घर बहुत दूर, पजाब मे कागडा जिले के पहाडो मे है। ऐसे स्वास्थ्य मे इतनी दूर सफर करना उचित नही होगा। कागडा प्रदेश के देहात मे रहते समय इलाज की ठीक व्यवस्था भी नहीं हो सकेगी इसलिये मेरा अनुरोध है कि आप मेरी रिहाई के बाद मेरे स्विट्जरलैंड जा सकने के पहले मेरे ठहरने और इलाज का प्रबन्ध भुवाली के सैनीटोरियम मे करवा दे" पत्र लिख कर मैं उत्तर की प्रतीक्षा में था।

२ मार्च, १९३८ का दिन। सूर्य अस्त हो गया था। सध्या जल बन्द हो चुकी थी। तभी देखा कि हाते में दो जमादार दौडे चले आ रहे है। बारक और हाते मे मैं अकेला ही था। जमादारो के पीछे किदवई साहब और सुपरिन्टेन्डेन्ट आ रहे थे। बारक का ताला खोला गया। किदवई साहब अपना गरारानुमा पायजामा पहने धीमे धीमे आकर मेरे समीप खडे हो गये। उनकी मौन मुद्रा से समझा शायद मामला बिगड गया।

मैंने उन्हे सलाम कर बैठने के लिये कहा।

रफी साहब बोले, 'चलिये।'

'कहाँ?' मैंने पूछा।

"घर। कुछ साथ लेना है तो ले लीजिय, अपनी किताबें वगैरा।"

जमादारो ने मेरी किताबें उठा ली। जेल का बिस्तर जेल की सम्पत्ति थी।

जेल के फाटक से बाहर आये तो झुटपुटा सा अँधेरा हो चुका था। किदवई साहब ने अपनी गाडी मे बैठा लिया। गाडी चलते ही वे बोले, "अब तो छूट गये जेल से कैसा लग रहा है छूट कर?"

मैंने उत्तर दिया, "अनुमान तो था कि बहुत विचित्र लगेगा परन्तु अकस्मात नही छूटा हूँ। पूरी आशा और प्रतीक्षा थी इसलिये जान पड रहा है कि स्वाभाविक बात ही हुई है।'

'मैं तो शायद कल या परसों तुम्हें लेने आता," रफ़ी साहब मुस्कराये, "पर प्रकाशवती ने नाक में दम कर रखा है। सोचा, उसके फिर आकर कुछ पूछने-कहने से पहले ही तुम्हें जाकर ले आऊं।"

●

शेष कथा चौथे भाग में